योग विज्ञान के मूलतत्व

योग विज्ञान के मूलतत्व

मोहन लाल चढ़ार
नीलम श्रीवास्तव
श्याम सुन्दर पाल
संदीप ठाकरे

S.K. Book Agency
New Delhi - 110002

Published by

S.K. Book Agency

5A/12, Ansari Road, Daryaganj
New Delhi-110002, Ph. 011- 65842996
E-Mail: skbooksag@gmail.com

योग विज्ञान के मूलतत्व

© डॉ. मोहन लाल चढ़ार, डॉ. नीलम श्रीवास्तव, डॉ. श्याम सुन्दर पाल, डॉ. संदीप ठाकरे

सर्वाधिकार सुरक्षित। पुस्तक का कोई भी भाग लेखक की पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनर्प्रकाशित नहीं किया जा सकता है।

प्रथम संस्करण 2018

ISBN: 978-93-8315-880-5

Printed at New Delhi, India

इस पुस्तक में प्रकाशित आलेख, लेखकों के अपने विचार हैं, इन विचारों से सम्पादकगण प्रकाशक अथवा मुद्रक का सहमत होना अनिवार्य नही है

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकण्टक (म. प्र.)
(संसद के अधिनियम के अधीन स्थापित केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
INDIRA GANDHI NATIONAL TRIBAL UNIVERSITY
(A Central University established by an Act of Parliament)
AMARKANTAK, MADHYA PRADESH-484 886 INDIA

प्रो. टी. वी. कटटीमनी
कुलपति
Prof. T. V. Kattimani
Vice-Chancellor

आमुख

योग विद्या भारत वर्ष की प्राचीनतम् परम्परा मानी जाती है। इतिहास व पुरातत्व के अनुसार योग से सम्बधित सर्वाचीन प्रमाण पॉच हजार बर्ष पूर्व हडप्पा सभ्यता से मिले है। हडप्पा सभ्यता से योग मुद्रा युक्त मूर्तियॉ प्रकाश में आई है, जिनसे विविध योग आसनों की जानकारी मिलती है। इन अवशेषों के माध्यम से भारत में लगभग पॉच हजार बर्ष पूर्व योग विद्या की पुष्टी अनेक देशी व विदेशी विद्वानों ने की तथा सम्पूर्ण विश्व के लोगों ने इस तथ्य को एक मत से स्वीकार किया कि भारत योग विद्या का जनक है। वैदिक काल के महाऋषियों ने योग ध्यान के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण मंत्रो व ऋचाओं की रचना की तथा इन्ही ऋचाओ का संग्रह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद उपनिषदों, आरण्यकों, वेदांगों षड्दर्शनों में मिलता है। वैदिक ऋषियों में वामदेव ऋषि,, अगस्त ऋषि, कण्व ऋषि, विश्वामित्र ऋषि,, बशिष्ट ऋषि, भृगु ऋषि, अत्रि ऋषि, भारद्वाज ऋषि एवं विदुषी स्त्रियों में अपाला, घोषा एवं लोपामुद्रा इत्यादि ने वनाच्छादित क्षेत्रों में योग व ध्यान की अनुसंधान शालाएँ बनाकर अनेक महत्वपूर्ण गुप्त विद्याओं, मंत्रों व दर्शनों का ज्ञान प्राप्त किया था। छठवी शती ईसा पूर्व में महत्वपूर्ण धार्मिक क्रान्ति हुई इसके जनक योग साधना के पूर्ण साधक एवं बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध एवं जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी थे। पॉचवी शती ईसा पूर्व में रचित पाणिनी के अष्टाध्यायी में योग विद्या के प्रमाण मिलते है। सिकन्दर के आक्रमण के समय चौथी शती ईसा पूर्व में संसार के ख्याति प्राप्त तक्षशिला विश्वविद्यालय में योग शास्त्र की उत्तम शिक्षा प्रदान की जाती थी। विशाल मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला विश्वविद्यालय के अपने योग गुरुओं के सानिध्य में योग की उत्तम शिक्षा प्राप्त की थी। वह अपने जीवन में योग साधना को महत्व देते थे। इसी कारण चन्द्रगुप्त मौर्य अपने जीवन के अन्तिम चरण में जैन गुरु भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत जाकर कर्नाटक प्रान्त में स्थित श्रवणवेलगोला में योग साधना के माध्यम से समाधि प्राप्त की थी। बौद्ध धर्म के माध्यम से मौर्य शासक अशोक महान ने योग की एक विद्या पिपासना ध्यान के महत्व को समझा एवं इसके अनुसरण के बाद उसने भेरीघोष अर्थात युद्ध नीति को त्यागकर धम्म नीती को अपनाया था। भगवान शिव व हिरण्यगर्भ योग के जनक माने जाते है। राम, कृष्ण, हनुमान, बुद्ध, महावीर व पंतजली ने योग प्रविधियों का विस्तार किया था। योग का सिद्धपंथ, शैवपंथ, नाथपंथ वैष्णव और शाक्त पंथियों ने अपनी विभिन्न प्रविधियों के माध्यम से विस्तार किया। दूसरी शती ईसापूर्व में रचित महाभारत, रामायण, पुराण साहित्य में सूर्य उपासना व योग, ध्यान, प्राणायाम, अष्टांग योग, अष्टसिद्धि योग, भक्तियोग, मंत्रयोग, हठयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, लययोग, राजयोग व क्रियायोग इत्यादि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इसी समय महाऋषि पंतजली ने योग के महत्वपूर्ण ग्रन्थ "योग दर्शन" की रचना की इस ग्रन्थ में योग के व्यवहारिक पक्षों का सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया है। वेद, उपनिषद्, भगवद गीता, हठ योग प्रदीपिका, पतंजली का महाभाष्य योगसूत्र, शिव संहिता, घेरण्ड संहिता, सांख्य दर्शन, गोरक्षशतक, योग वशिष्ठ इत्यादि प्रमुख ग्रन्थ माने जाते हैं। इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय के योग विभाग द्वारा ***"योग विज्ञान के मूलतत्व"*** शीर्षक से भारत के योग विद्या में ख्याति प्राप्त प्रबुद्ध योग गुरु अय्यंगार –योग के संस्थापक व भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण व पद्म विभूषण से सम्मानित स्व. श्री बी के एस अय्यंगार जी की स्मृति में यह ग्रन्थ निकालने का श्रेष्ठ प्रयास किया जा रहा हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ योग के विद्यार्थियों के साथ साथ आमजनों को भी काफी उपयोगी सिद्ध होगा। इस योग ग्रन्थ के उत्तम सम्पादन हेतु योग विभाग के सम्पादक जनों को मैं बधाई व शुभकामनाएँ देता हूँ।

// योगःकर्मसु कौशलम् // अर्थात योग से कर्मो में कुशलता आती हैं....*भगवत गीता*

प्रो. टी. व्ही. कटटीमनी

Phone:+91-7629-269710, Telefax:+91-7629-269712, Mobile: +91-9425331399
E-mail: vc@igntu.ac.in, vcigntu@gmail.com; Website: www.igntu.ac.in, www.igntu.nic.in

बी के एस अय्यंगारजी एक महान व्यक्तित्व

अय्यंगार जी का जन्म कर्नाटक में बेंगलूर से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर कोलार जिले के बेल्लूर गांव के एक गरीब परिवार में **14 दिसंबर 1918** को हुआ था। उनके पिता एक स्कूल शिक्षक थे। लगभग 16 साल की उम्र में उन्होंने कृष्णमाचार्य से योग सीखना शुरू किया और उन्हें दो साल बाद ही योग का प्रचार करने के लिए पुणे भेज दिया गया। जब वह 25 साल के हुए तो उनकी शादी रमामणि से हुई जो उस वक्त 16 साल की थीं। रमामणि का निधन 1973 में ही हो गया लेकिन उन्होंने दूसरी शादी नहीं की। उनकी पांच बेटियों और एक बेटे में से उनकी बेटी गीता और बेटा प्रशांत आज भी योग सिखाते हैं। उन्होंने जिस योग की शिक्षा हासिल की वह अष्टांग योग की विभिन्न अवस्था पर आधारित था जो अब ' अय्यंगार योग' के नाम से जाना जाता है इसमें मूलतः मुद्रा पर जोर दिया जाता है और इसमें बेल्ट और रस्सी जैसे चीजों का अवलंब के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। योग की इसी शैली की वजह से अय्यंगार को अंतरराष्ट्रीय स्तर की ख्याति और शिष्य मिले और अभी सम्पूर्ण विश्व में में उनके 70 योग केंद्र हैं। योग पर उनकी कृति वर्ष 1966 में 'लाइट ऑन योग' शीर्षक के तहत प्रकाशित हुई जिसे योग का बाइबिल माना जाता है। इसमें करीब 600 चित्र और विस्तारपूर्वक 200 मुद्राएं करने का सूक्ष्म निर्देश दिये गये है। इस ग्रन्थ का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में किया गया है। उन्हें योग का प्रचार–प्रसार पश्चिमी देशों में करने और वहां इसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय दिया जाता है। अनेक देशों के समाज में अपना स्थान रखने वाले लोगों ने भी उनके मार्गदर्शन में योग सीखा। वायलिन के जाने माने उस्ताद येहुदी मेनुहिन ने इन्ही से योग सीख था। जिन्होंने मुंबई में वर्ष 1952 में उनसे मुलाकात की थी और फिर उन्होंने अय्यंगार जी का परिचय विदेश में अन्य लोगों से भी कराया। देश में उनके प्रशंसकों में समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण और भारत के पहले राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद भी थे। उनके जीवन काल में अय्यंगार जी को कई पुरस्कार भी मिले जिनमें भारत सरकार कें पद्म भूषण और पद्म विभूषण जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कार भी शामिल हैं। उन्होंने अपने जीवन के आखिरी दौर तक कठोर और अनुशासित दिनचर्या का पालन किया। वह हर रोज सुबह चार बजे उठ जाते हैं और डेढ़ घंटे तक प्रणायाम और फिर 9 बजे से वह तीन घंटे साधना करते हैं और इसी दौरान वह छात्रों को निर्देश भी देते थे। एक घंटे दोपहर में आराम करने के बाद वह लोगों से मुलाकात, करने के साथ साथ

छात्रों से संवाद करने का वक्त भी निकालते थे। शाम का वक्त वह परिवार के सदस्यों के साथ बिताते थे और संगीत सुनते थे। उनकी सनातन धर्म के प्रति गहरी आस्था थी। उन्होंने पुणे को योग की राजधानी बनाया था। उन्होने अय्यंगार योग को विश्वस्तर पर पहुचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।' उन्होने 20 अगस्त 2014 को अन्तिम सांस ली थी। कई लोगों ने उनको श्रद्धांजलि देते हुए भारतीय जनमानस में उन्हें 'भारतीय योग के महान व्यक्ति के रूप मे 'योग के क्षेत्र का चमकता सितारा'स्वीकार किया। इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय के योग विभाग द्वारा ''*योग विज्ञान के मूलतत्व*'' शीर्षक से भारत के योग विद्या में ख्याति प्राप्त प्रबुद्ध योग गुरु अय्यंगार –योग के संस्थापक व भारत के महत्वपूर्ण योग गुरु स्व. श्री बी.के.ए. अय्यंगार जी की स्मृति में यह सम्पादित ग्रन्थ निकालने का महत्वपूर्ण प्रयास किया जा रहा हैं। जो उनके प्रति अकादमिक जगत की ओर से महत्वपूर्ण श्रद्धाजंली है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ योग के विद्यार्थियों के साथ साथ आमजनों को भी काफी उपयोगी सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ के उत्तम सम्पादन हेतु योग विभाग के सम्पादक जनों को मैं बधाई व शुभकामनाऍ देता हॅू।

प्रो. एन.एस. हरी नारायण मूर्ति
संकायाध्यक्ष योग संकाय
इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकटंक (म.प्र.)

प्रस्तावना

योगविद्या भारतवर्ष की एक अमूल्य संपत्ति है। वही एक ऐसी विद्या है। जिमसें वाद–विवाद के लिये कहीं स्थान नहीं है। सृष्टि के आदिकाल से ही भारत के महान साथक गण इस सनातन साधना का युग–युग से अखण्ड रूप से अभ्यास करते आ रहे है। उन्होने योग को कैवल्य–मोक्ष की प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम साधन पद्धति के रूप में स्वीकार किया है। पाणिनीय संस्कृत व्याकरण के अनुसार गणपाठ में तीन "युज्धातु" है। तीनों ही धातुओं से योग शब्द निष्पन्न होता है, परन्तु तीनों का अर्थ थोड़ा–थोड़ा भिन्न हो जाता है। इनमें से दिवादिगणीय युज–समाधौ धातु से जो योग शब्द बनता है– उसका अर्थ समाधि है। रूध ादिगणीय युजिर–योगे धातु से जो योग शब्द बनता है– उसका अर्थ संयोग मेल या एकत्व होता है। चुरादिगणीय युज– संयम ने धातु से जो योग शब्द बनता है– उसका अर्थ संयमन या नियमन करना है। भाव्यकार महर्षि व्यासजी ने :– युज–समाधौ धातु का अर्थभूत तात्पर्य को लेकर – "योगः समाधिः" ऐसा योग का अर्थ किया है। अर्थात् समाधि का नाम योग है। योग और समाधि दोनों पर्याय शब्द होने के कारण एकार्थक है। अतः यम–नियम आदि योगांगों द्वारा समाधि को प्राप्त कर लेना और समाधि की पराकाष्ठा में पहुंचकर आत्मदर्शन पूर्वक स्वरूप व स्थिति को प्राप्त कर लेना ही योग है। अतः योग का विशेष अर्थ तो समाधि ही है। योगाशास्त्र का प्रारम्भ कब हुआ? अथवा इसके आदि प्रवर्त्तक कौन है? इस संबंध में प्रामाणिक रूप में कुछ भी कहना संभव नहीं है, क्योंकि अपने संबंध में कुछ, कहना अथवा समकालीन राजा, महाराजाओं का गुणगान करना भारतीय मनीषियों के स्वभाग में ही रहा है, तथापि विविध अन्य माध्यमों से जो संकेत प्राप्त होते है, उनके आधार पर योगशास्त्र के उद्भव का अथवा उसकी प्राचीनता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। वेदों, उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में भी योग विषयक पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। ऋग्वेद में कहा गया है कि ईश्वर की कृपा से ही योग हमें योग सिद्ध होकर विवेक ख्याति तथा ऋतम्थरा प्रज्ञा प्राप्त हो, वहीं ईश्वर अणिमा आदि सिद्धियों सहित हमारी ओर आवे। ऐसी प्रार्थना का उल्लेख प्राप्त होता है। (अथर्ववेद– 10.2.31) मे शरीर को अयोध्या पुरी बताते हुये उसका वर्णन इस प्रकार किया है – "इस शरीर रूपी आयोध्यापुरी में आठ चक्र है और उसके नवद्वार है। इसमें आत्मा निवास करता है। इस शरीर के माध्यम से योगविद्या द्वारा नवद्वारों को बन्द कर अष्टचक्रों का ज्ञान प्राप्त करते हुए उस आत्मा को जानना चाहिए। उपनिषदों मे वैदिक उपदेशों का विस्तार से वर्णन किया गया है। उपनिषदों में योग को सर्वाधिक महत्वपूर्ण

स्थान प्रदान किया गया है। उनमें से मुख्य नाम इस प्रकार है– अमृत बिन्दुपनिषद्, तोजोबिन्दूपनिषद्, ध्यानबिन्दुपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्, कठोपनिषद्, हंसोपनिषद्, योगतत्वोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, मुण्डाकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, ईषावास्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, कठोपनिषद्, श्वेताशवतरोपनिषद् आदि। इन सभी उपनिषदों में योग का विस्तृत वर्णन किया गया है। उपनिषदों में योग के अंगो का भी वर्णन किया गया है। (अमृतानादोपनिषद्) में कहा गया है कि– प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम धारणा, तर्क और समाधि योग के छः अंग है। (त्रिषिखब्राम्हणोपनिषद्) में पातन्जल योग की भांति– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के आठ अंग माने जाते है। उपनिषदों में ध्यानात्मक और व्यायात्मक दोनों प्रकार के आसनों का वर्णन प्राप्त होता है। उपनिषदों में प्राणायाम को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। प्राणायाम से पूर्व करने वाली नाड़ी शोधन क्रिया का भी उल्लेख किया गया है। नाड़ियों एवं चक्रों का विशिष्ट वर्णन भी उपनिषदों में प्राप्त होता है। गरूड़ पुराण में योग के एक विशिष्ट प्रकार ध्यान योग जिसे अन्यज लययोग भी कहा जाता है। का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। श्रीमद् भागवत् महापुराण में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग भेद से योग के तीन प्रकारों की चर्चा की गयी है। श्रीमद् भगवद्गीता में न केवल योग शब्द का अनेक बार (48) बार प्रयोग हुआ है। अपितु उसमें अनेक प्रकार के योगों की ओर संकेत भी मिलता है। साथ ही इसमें योगों शब्द का भी सत्ताइस बार प्रयोग हुआ है जिसके आधार पर यह स्वीकार करने में किन्चित् आपत्ति न होगी कि योग एक विशिष्ट साधना विधि के रूप में उस काल में सवीकृत हो चुका था। इसके अतिरिक्त वहां श्री कृष्ण को योगेश्वर नाम से संबोधित किया गया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है, कि महाभारत के रचनाकाल से पूर्व योग विद्या अत्यन्त प्रतिष्ठित होकर राजकुलों में प्रवेश कर चुकी थी। श्रीमद् भगवद्गीता में ही एक स्थल पर विवस्वान् मनु और इक्ष्वाकु को योग विद्या का ज्ञाता और उपदेष्टा कहा गया है।

प्राचीनतम बौद्ध ग्रन्थ त्रिपिटक में भी योग समाधि का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। पालित्रिपिटक के अनुसार बोध गया पहुंचने से पूर्व भगवान बुद्ध ने भी राजगिरि में रहकर पर्याप्त समय तक एक विशिष्ट प्रकार की साधना की थी। यह साधना योग विषयक ही थी। संस्कृत वाड़मय मे ंपतन्जलि के नाम से तीन ग्रन्थ प्रचलित है। योगसूत्र, पाणिनिकृत अष्टाध्यायी पर व्याख्यान ग्रन्थ महाकाव्य और आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक संहिता। अधिकांश भारतीय विद्वान तीनों ग्रन्थों के रचियता पतन्जलि एक ही है, ऐसा स्वीकार करते है। प्रसिद्ध दार्शनिक इतिहासकार सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता के अनुसार पतंजलि ने योग सूत्र में न केवल अपने समय मे प्रचलित योग साधना की प्रक्रियाओं को संकलित किया गया है, अपितु योग से संबंध अथवा संबंद्ध होने योग्य विविध विचारों की सूत्र में पिरोकर एकारूपता प्रदान की है। व्यासभाव्य के टीकाकार वाचस्पति मिश्र और विज्ञानभिक्षु भी उपर्युक्त तथ्य को स्वीकार करते है कि पतंजलि योग सिद्धांत के प्र्रवतक न होकर केवल संकलनकर्ता है। इस प्रकार सब कुछ होते हुए भी महर्षि पतजंलिकृत योगदर्शन योग का एक अद्वितीय ग्रन्थरत्न है। योगदर्शन में वर्णित योग मार्ग को ही राजयोग या अष्टांगयोग के नाम से कहा

गया है। पतंजलि योग दर्शन ही पुरातन काल से अब तक मानव के हृदय में योग साधना के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बना हुआ है।

पतंजलि योग दर्शन पर व्यास भाष्य के अतिरिक्त अब तक दस से अधिक टिकाओं का पता चला है। योगदर्शन को समझने के लिए वाचस्पति मिश्रकृत– तत्ववैषारदी टीका, विज्ञान भिक्षुकृत–योगवर्तिक टीका तथा भोजराजकृत राजमार्तण्डवृत्ति या भोजवषत्ति ही पर्याप्त है। योग दर्शन पर वे ही भाष्य एवं टीकांए प्रमुख है, शेष अन्य टीकाएं भी उपयोगी है। इन टीकाओं के नाम इस प्रकार है – भावगणेशवृत्ति, नागोजिवृत्ति, योगमणिप्रभा, सिद्धान्तचन्द्रिका वृत्ति, योगसुधारक वृत्ति आदि टीकाएं प्रमुख है।

शास्त्रों में अनेक प्रकार के योग बताये गये है। जैसे– कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, राज योग, हठ योग, मन्त्र योग, जप योग, भक्ति योग, लय योग, नाद योग, कुण्डलिनी योग, ध्यानयोग, समाधियोग, तंत्रयोग तथा ब्रह्मयोग आदि। यद्यपि वे सारे ही योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। और सभी अपने में पूर्ण है फिर भी क्रान्तदर्शी ऋषि–मुनियों ने अतिसरल सुगम तथा शीघ्र फलदायक चार प्रकार के योग बताये है। मन्त्रयोगः, हठश्चैवलययोगस्तृीयकः, चतुर्थी राज योगः,स्यात्सद्विधाथाववर्ज्जितः।। (शिवसंहिता –5/17) अर्थात मंत्रयोग, हठयोग, लययोग, और राजयोग ये चार प्रकार के योग ही नितान्त सरल सुगम और शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले है। अतः साधक को चाहिये कि श्रद्धा एंव विश्वास पूर्वक इनका यथाविधि अभ्यास करें। मंत्रयोग साधना द्वारा मन का इष्टदेव मे लय हो जाता है। मंत्रयोग सब से सरल और सुगम मार्ग है। संसार भर में साधकों मे से नब्बे प्रतिशत साधक इस मंत्रयोग के अनुयायी है। मंत्रयोग के अभ्यास से साधक को अभिष्ट सिद्धि को प्राप्ति होती है।

हठयोग, राजयोग का एक अभिन्न अंग है। इसे राजयोग से पृथक कदापि नहीं किया जा सकता है। हठयोग और राजयोग मिलकर ही एक पूर्णयोग या महायोग का निर्माण होता है। हठयोग का विशेष संबंध स्थूल शरीर के साथ है किन्तु प्राणमय शरीर, मनोमय शरीर, विज्ञानमय शरीर और आनन्दमय शरीर के साथ भी है। हठयोग से इन शरीरों का भी क्रमशः विकास होता जाता है। साधारणतः हठयोग का प्रभाव प्रथम स्थूल शरीर पर ही पड़ता है। और योग साधना का प्रारम्भ भी स्थूल शरीर से ही होता है। लययोग के द्वारा साधक को बीजभाव की प्राप्ति होती है। अव्यक्त प्रकृति को ब्रह्म में लयकर देना और ब्रम्ह की ही अनुभूति करना समष्टि लय है। और कुण्डलिनी शक्ति को परमशिव में लयकर ब्रम्ह का अनुभव करना व्यक्ति लययोग है। इन्हीं को लययोग की संज्ञा दी जाती है। लययोग के भेद योगशास्त्रों में असंख्य बताये गये है। परन्तु उनमें से अधिकांश आज लुप्त है, कहीं पर भी उनका सांगोपांग वर्णन नहीं मिलता है। धेरण्ड संहिता मे शाम्थवी मुद्रालय, खेचरीमुद्रालय, भ्रामरीमुद्रालय, और योनिमुद्रालय इन चार प्रकार के उपायों के द्वारा लययोग सिद्ध होने की बात कही गयी है।

राजयोग शब्द उपनिषदों मे प्राप्त होता है। राजयोग की सिद्धि होने पर साधक का चित्त मलों से रहित हो जाता है। राजयोग की साधना में संयम पर विशेष बल दिया गया है। संयम के पालन से ही चित्त पूर्णतः एकाग्र हो जाता है। अतः राजयोग वह साधना

प्रणाली है जिसे ध्यानयोग, समाधियोग आदि नामों से जाना जाता है। उपनिषदों में रजस् और रेतस् के योग को राजयोग होना बताया है। इस राजयोग की स्थिति में योगी अणिमादि अष्टसिद्धियों को प्राप्त कर राजा के समान शोभायमान होता है।

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांगयोग को ही स्वामी विवेकानंद राजयोग के नाम से संबोधित करते है। हिरण्यगर्भ ब्रम्हाजी को योग का आदिवक्ता बताया गया है। उसे प्रजापति ब्रम्हाजी से लेकर अबतक इस संसार में अनेकों सिद्ध योगवेत्ता योगीश्वर हो गये है। उनकी गणना करना एक कठिन कार्य है। अतः जिज्ञासुओं की निवृत्ति के लिए यहां पर कतिपय योगाचार्य का नाम जो पुराण आदि ग्रन्थों मे ंपाये जाते है उनका एक संक्षिप्त नामावलि पत्र नीचे दे रहे है । हिरण्यगर्भ–ब्रह्मा, रूद्र, मनु, मनुपुत्र, शुक, आत्रेय, आसित, देवल, आष्टिशेण, पटारार, व्यास, वामदेव, गौतम, अक्षपाद, जनक, आश्वलायन, कुशिक वत्य, इस्वाकू, विवस्वान और कणाद आदि–आदि। इस सूची में केवल योगाचार्यो का नामोल्लेख मात्र किया गया है। परम्परा क्रम इसमें नहीं है। गौतमबुद्ध के काल के आसपास एक और योगी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ था जो नाथ संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। नाथ संप्रदाय के योगीगण अपने को योगी संप्रदाय के नाम से ही परिचय देते है। नाथ संप्रदाय का प्रादुर्भाव आदिनाथ– भगवान शिव से ही माना जाता है। इस नाथ संप्रदाय में भी अनेक सिद्ध योगी हो गये जैसे– मत्स्यन्द्रेनाथ, गोरखनाथ, धेरण्डनाथ, गोपीचन्द्र, भृतेहरी तथा आत्मारामयोगी आदि प्रसिद्ध है।

आधुनिक युग में भारतीय मनीषियों के अथक प्रयत्न से देश–देशान्तर तथा सुदूर, यूरोप, अमेरिका आदि देशों मे ंभारतीय योग विद्या का प्रकाश पुनः फैला है। इन मनीषियों में प्रमुख रूप से स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी अभदानन्द , स्वामी दयानंद, स्वामी रामतीर्थ, परमहंस योगानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी सत्यानंद, महर्षि महेश योगी, स्वामी निरजंनान्द सरस्वती तथा योग गुरू बी.के.एस. अय्यंगारजी का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। प्रस्तुत सम्पादित ग्रन्थ में योग से सम्बधित महत्वपूर्ण तैतीस शोध परक शोध पत्रों को संकलित किया गया है। इनमें प्रथम शोध पत्र योग और मन पर नियन्त्रण शीर्षक से प्रो. आलोक श्रोत्रिय ने लिखा है इस पत्र में योग से मन नियन्त्रण के साथ साथ सुखमय मानव जीवन जीने के विविध तथ्यों की चर्चा की गई है। योग विज्ञान की अवधारणा एवं प्रमुख तत्व प्रोफेसर लाल अमरेन्द्र सिंह ने प्रस्तुत किया है इसमें योग विज्ञान के मूलतत्वों की गहन चर्चा की गई है। राकेश सोनी के योग, स्पंदन और आदिवासी जीवन पद्धति लेख में भारतीय मूल विचारधारा की चर्चा की गई है। अध्यात्म रामायण में भक्ति योग का विवेचन शोध पत्र में डॉ. ऊधमसिंह ने रामायण भक्ति योग की विशद व्याख्या की है। डॉ. मोहन लाल चढार ने प्राचीन भारतीय साहित्य में खानपान व योग साधना लेख में योग के साथ भोजन सम्बन्धी नियमों की चर्चा की है। श्रीमदभागवत गीता : एक अलौकिक दर्शन योग में डॉ संदीप ठाकरे ने भगवत गीता में योग पर प्रकाश डाला है। डॉ. श्याम सुन्दर पाल ने कर्मयोग तथा भक्तियोग के मनोचिकित्सात्मक महत्व पर लेख प्रस्तुत किया है। डॉ. जिनेन्द्र जैन ने जैन धर्म और योग नामक पत्र में जैन धर्म में योग साधना का विश्लेणात्मक

अध्ययन प्रस्तुत किया है। योग द्वारा मृत्युंजय साधना पर विषद व्याख्या प्रों. अमरेन्द्र सिंह ने की है।"आचार्य शंकर के अद्वैत चिन्तन में भक्ति निरुपण"पर सत्येन्द्र दत्त अमोली' ने शोध परक जानकारी प्रदान की है। डॉ. के. के त्रिपाठी ने प्राचीन साहित्य में चिकित्सा पर मौलिक शोध प्रस्तुत किया है। भावातीत ध्यान एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन में डॉ. नीलम श्रीवास्तव ने मनोवैज्ञानिक तथ्यो की जानकारी दी है। मंत्र योग की वैज्ञानिकता का विवेचनात्मक अध्ययन पर सुनील कुमार श्रीवास ने प्रकाश डाला है। महिलाओं पर योगनिद्रा व भ्रामरी प्राणायाम के प्रभाव शीर्षक से समरजीत सिंह ने लेख लिखा है। मानसिक स्वास्थ्य और यौगिक प्रबंधन युवाओं के परिप्रेक्ष्य में नंदलाल मिश्र रत्नेष पाण्डेय ने शोध पत्र में मौलिक तथ्यो पर प्रकाश डाला है। श्री हीरासिंह गौड ने प्राचीन भारतीय साहित्य मे योग शीर्षक से आलेख को मौलिक बनाने का पूर्ण प्रयास किया है। बगला तन्त्र योग प्रक्रिया का विवेचनात्मक अध्ययन में दिलीप कुमार तिवारी ने महत्वपूर्ण तथ्यो के साथ प्रकाश डाला है। वैदिक साहित्य में योग पर डॉ. मनोज कुमार कुर्मी ने आलेख प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होने वेदों में योग पर सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। सूर्य नमस्कार : एक अलौकिक योग साधना शोध पत्र में डॉ. नीलम श्रीवास्तव ने योग में सूर्य नमस्कार के विभिन्न आसन व उसके प्रभावों की चर्चा की है। साधकों की संजीवनी पातन्जल योगदर्शन की व्याख्या डॉ. संदीप ठाकरे ने की है। योग में मन का विश्लेषण पर डॉ. श्याम सुन्दर पाल ने मौलिक व्याख्या प्रस्तुत की है। डॉ. नीलम श्रीवास्तव ने महान साधकों की आधार भूमि एक ज्योतिश अध्ययन पर मौलिक पत्र ग्रन्थ में लिखा है। संत कबीर का साधनात्मक रहस्यवाद पर श्री योगेश कुमार ने विश्लेणात्मक तथ्यो को प्रस्तुत किया है। मानव जीवन में ब्रम्हचर्य योग–साधना पर डॉ. संदीप ठाकरे ने प्रकाश डाला है। इस पत्र में योग में ब्रह्मचर्य की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। योग का शिक्षा में महत्त्वः एक विवेचन पर रविन्द्र कुमार ठाकुर ने शोधपरक आलेख लिखा है। विनीता अवस्थी ने ग्रन्थ में तनाव प्रबंधन में योग की भूमिका पर महत्वपूर्ण लेख लिखा है। भारतीय इतिहास तथा पुरातत्व में योग परम्परा शीर्षक से तथ्यों के साथ शोधात्मक लेख डॉ. मोहन लाल ने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। डॉ. अमरेन्द्र सिंह ने एक पुरोकथाः देव वैद्य अश्वनी शीर्षक के माध्यम से चिकत्सा व योग को जोडने का महत्वपूर्ण प्रयास लेख में किया है। योग और मनोविज्ञान पर अस्था सोनी ने तथ्यात्मक आलेख का लेखन कार्य किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में योगी गोरखनाथ और कुण्डलिनी शक्ति पर डॉ. दीनानाथ राय ने विश्लेणात्मक जानकारी दी है। तांत्रिक, ओझा एवं योग शीर्षक से ममता भट्ट ने अपने शोधपत्र की प्रस्तुती दी है। डॉ. हरित मीणा ने भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में योग का विकास एवं विस्तार पर तथ्ययुक्त विश्लेणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अन्तिम शोध पत्र ध्यान साधना और मानव जीवन पर डा. मनीषा शर्मा ने लिखा है।

इस ग्रन्थ का आमुख इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक, मध्यप्रदेश के ओजस्वी कुलपति प्रो. टी. व्ही. कटटीमनी ने लिखकर हम सबको कृतज्ञ किया है। ग्रन्थ लेखन के दौरान पूज्यनीय गुरुदेव प्रों. आलोक श्रोत्रिय अकादमिक निदेशक ने अनेक शोधपरक सुझाव देकर ग्रन्थ की पूर्णतः में मदद की है। प्रो. एन.एस. हरी नारायण

मूर्ति संकायाध्यक्ष योग संकाय के सहयोग व नवीन सुझावों से यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है। इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से जिन विद्वानों ने सहायता दी है। हम उन सभी देवी व सज्जनों का ह्दय से अभार व्यक्त करते है। इस ग्रन्थ को अन्तिम रूप से जन सामान्य के लिए पुस्तक के रुप में प्रस्तुत करने वाले के एस. एस. डी. एन. प्रकाशन, नई दिल्ली के संचालक श्री सत्यप्रकाश काटला जी का में ह्रदय से आभारी हूँ । इस सम्पादित ग्रन्थ को मौलिकता प्रदान करने का यथा शक्ति प्रयास किया गया है सभी रचनात्मक कार्य में त्रुटिया होना स्वाभाविक है। आप सभी से प्रर्थना है कि जो भी ग्रन्थ में कमिया रह गई है उन्हें सम्पादक मण्डल को अवगत कराने की कृपा करे जिससे कि उन्हें अगामी संस्करण में सुधारा जा सके। अन्त में मॉ नर्मदा को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए यह ग्रन्थ आपके सामने प्रस्तुत है ।

मोहन लाल चढार
विभागाध्यक्ष योग विभाग
इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक, मध्यप्रदेश

अनुक्रमणिका

आमुख v

योग गुरु बी के एस अय्यंगारजी को श्रद्धांजली vii

प्रस्तावना ix

1. योग और मन पर नियन्त्रण 1
आलोक श्रोत्रिय

2. योग विज्ञान की अवधारणा एवं प्रमुख तत्व 8
लाल अमरेन्द्र सिंह

3. योग, स्पंदन और आदिवासी जीवन पद्धति 15
राकेश सोनी

4. अध्यात्म रामायण में भक्ति योग का विवेचन 26
ऊधमसिंह

5. प्राचीन साहित्य में खानपान और योग 32
मोहन लाल चढ़ार

6. श्रीमद् भागवत गीता : एक अलौकिक दर्शन – योग 45
संदीप ठाकरे

7. कर्मयोग तथा भक्तियोग के मनोचिकित्सात्मक महत्व 49
श्याम सुन्दर पाल

8. जैन धर्म और योग 56
जिनेन्द्र कुमार जैन

9. योग द्वारा मृत्युंजय साधना 69
लाल अमरेन्द्र सिंह

10. ''आचार्य शंकर के अद्वैत चिन्तन में भक्ति निरुपण'' 75
सत्येन्द्र दत्त अमोली[1]

11. प्राचीन साहित्य में चिकित्सा 83
कृष्णकुमार त्रिपाठी

12. भावातीत ध्यान एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन 89
नीलम श्रीवास्तव

13. मंत्र योग की वैज्ञानिकता का विवेचनात्मक अध्ययन 95
सुनील कुमार श्रीवास

14. महिलाओं पर योगनिद्रा व भ्रामरी प्राणायाम के प्रभाव 107
समर जीत सिंह

15. मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का यौगिक प्रबंधन (युवाओं के परिप्रेक्ष्य में) 112
नंदलाल मिश्र एवं रत्नेश पाण्डेय

16. प्राचीन भारतीय साहित्य मे योग 116
हीरा सिंह गोंड

17. बगला तन्त्र योग प्रक्रिया एवं परिणाम का विवेचनात्मक अध्ययन 121
दिलीप कुमार तिवारी

18. वैदिक साहित्य में योग 130
मनोज कुमार कुर्मी

19. सूर्य नमस्कार : एक अलौकिक योग साधना 133
नीलम श्रीवास्तव

20. साधकों की संजीवनी : पातन्जल योगदर्शन 140
संदीप ठाकरे

21. योग में मन का विश्लेषण 144
श्याम सुन्दर पाल

22. महान साधकों की आधार भूमि – एक ज्योतिष अध्ययन 148
नीलम श्रीवास्तव

23. संत कबीर का साधनात्मक रहस्यवाद 153
योगेश कुमार तिवारी

24. मानव जीवन में ब्रहमचर्य योग–साधना 159
संदीप ठाकरे

25. योग का शिक्षा में महत्त्व 163
रविन्द्र कुमार ठाकुर

26. तनाव प्रबंधन में योग की भूमिका 167
विनीता अवस्थी

27. भारतीय इतिहास तथा पुरातत्व में योग परम्परा 171
मोहन लाल चढ़ार

28. एक पुरोकथाः देव वैद्य अश्वनी 176
प्रोफेसर लाल अमरेन्द्र सिंह

29. योग और मनोविज्ञान 178
आस्था सोनी

30. योगी गोरखनाथ और कुण्डलिनी शक्ति 181
दीनानाथ राय

31. तांत्रिक, ओझा एवं योग 186
ममता भट्ट

32. भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में योग का विकास एवं विस्तार 192
हरित कुमार मीना

33. ध्यान साधना और मानव जीवन 198
मनीषा शर्मा

1

योग और मन पर नियन्त्रण

प्रो. आलोक श्रोत्रिय

सत्य की खोज हेतु विद्वानों, महापुरूषों और पन्थों ने अपने–अपने मार्ग बताए हैं। ये मार्ग अदर्शों विधि–निषेधों और आचार–व्यहार के नियमों को निर्दिष्ट करतें हैं। यह भी कहा गया है कि महाजनो येन गतः सः पन्थ अर्थात् महापुरूषों के दिखाए गये मार्ग का अनुसरण– करें यही मार्ग है। बुद्ध ने अप्प दीपो भव के माहम से अपना प्रकाश स्वंय बन कर मार्ग ढूढनें पर बल दिया। परन्तु मार्ग की जानकारी भर हो जाने से ही उस पर चलना नहीं हो जाता। मार्ग स्पष्ट हो लेकिन चलने के लिये शक्ति चाहिये, शारीरिक शक्ति और मानसिक शक्ति। चलना तो इस शरीर रूपी रथ के माध्यम से ही है। शरीर रूपी रथ मजबूत और कार्यशील होना चाहिए । इसमें इतनी शक्ति होना चाहिए कि यह बिना रूके, बिना थके लगातार चल सके और लम्बी दूरी तय कर सके। इस शरीर रूपी रथ में जीवात्मा बैठा है। इन्द्रियाँ घोड़े की तरह जुती हैं और मन सारथी है। यह सारथी बड़ा ही उद्दण्ड और प्रेय मार्गों पर भागने वाला है। जीवात्मा को या स्वयं मन को भी सही राह की जानकारी होने पर भी यह उस पर जाने की प्रवृत्ति नहीं रखता। इस सारथी पर नियन्त्रण बहुत कठिन काम है। आप संकल्प करके इसे एक राह पर जाने से रोकते हो तो यह दूसरी ही पगडण्डी पकड़ लेता है और वहीं पहुँच जाता है जहाँ जाने से उसे रोका था। इस सारथी की प्रवृत्ति रथ को ढ़लान पर उतारने की होती है क्योंकि यह पानी की तरह नीचे की ओर गति करने में रूचि और प्रवृत्ति रखता है। इसे इसी की मनमर्जी से रथ दौड़ाने दिया जाये तो यह रथ को ढ़लान पर ले जाकर कई बार गड्ढ़े में भी गिरा देता है। इसलिये इसे आवश्यक निर्दिष्ट मार्ग पर लगाये रखना आवश्यक होता है। इसके लिये इसे अपने वश में रखना जरूरी है। पर इसे वश में करना आसान नहीं है।

भारतीय मनीषयो ने अपने दीर्घकालीन अनुभव से यह जाना है कि इसका संबंध श्वास से है।[1] इसलिये श्वास पर नियन्त्रण करके बहुत हद तक इस पर नियन्त्रण हो सकता

है। दूसरा तरीका है ध्यान का जिसकी बहुत सी विधियाँ हैं जिन्हें प्रयोग में लाना चाहिये। इसलिये प्रतिदिन प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास करना मन पर नियन्त्रण स्थापित करने का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है।[1] भगवान कृष्ण गीता में कहते है कि हे पार्थ! इस मन पर नियन्त्रण बहुत कठिन काम है किन्तु अभ्यास और वैराग्य से इसे वश में किया जा सकता है।[2] अतः प्राणायाम, योग, ध्यान, वैराग्य एवं अन्य अनेकानेक विधियों से मन को साधने का निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये।[2] एक बार असफलता मिले तो दूसरी बार प्रयास करें, दूसरी बार असफलता मिले तो तीसरी बार प्रयास करें असफलता से निराश न हों एक बार असफल हो जाने पर पुनः उठकर खड़े हो जाओ और पुनः प्रयास करो, तुम्हारा महान गौरव कभी भी न गिरने में नहीं है बल्कि जब भी गिरो तुरन्त उठ पड़ने में है। बारम्बार प्रयासों से इसे अपने नियन्त्रण में लिया जा सकता है। यही अभ्यास है। वैराग्य है मन को वृत्तियों के विपरीत खींचना । दिन में कम से कम एक काम जरुर ऐसा करना चाहिए जिसे करने में मन की रूचि न हो, दूसरा ऐसा भी जरूर करें कि किसी काम को मन बहुत करना चाहे लेकिन आप उस काम से बिल्कुल अलग हट जाएं, उसे बिल्कुल न करें । ये दोनों ही काम मन के खिलाफ खड़े होने वाले काम हैं।[3] इन्हीं से वैराग्य सधता है । उदात्त वातावरण में रहने से भी अच्छे विचार,अच्छी आदतें, अच्छे संस्कार बनते हैं जो सहज ही मन को भटकने से बचाते हैं। उदात्त वातावरण (अच्छी किताबें, अच्छा संगीत, अच्छी संगति, अच्छे विचार, अच्छे भाव तथा ईश्वर प्रणिधान) में रहना भी मन के भटकाव से बचाव का उत्तम उपाय है। खाली न रहें,जो काम करें पूरा चित्त उसमें लगाए रखें, बुरें विचारों को मन में प्रवेश करते ही उन्हें बन न देकर इसरे कार्य में लगने का अश्भस करें। उदात्त वतावरण के अंतर्गत व्यस्त रहते हुए एक ही काम पर पूर्ण एकाग्र हो जाना मन पर नियंत्रण का तीसरा उपाय हैं । श्वास पर नियंत्रण, ध्यान, उदात्त वातावरण में व्यस्त रहते हुए एक ही काम पर पूर्ण एकाग्र हो जाना ,वैराग्य, अभ्यास माना जाता है।[3]

मन की शक्ति और वेग इतना अधिक है कि यह तुरन्त राह पर दौड़ कर बहुत दूर ले जाता है। इस पर यदि नियन्त्रण नहीं है तो न तो वाणी पर नियन्त्रण हो सकेगा और न काम पर। कार्यों के सम्पादन में भी एकाग्रता नहीं रहेगी और कुछ भी ठीक से नहीं होगा। मन पर अनियंत्रण का ही परिणाम होता है कि विद्यार्थी बैठा तो क्लास में होता है लेकिन उसका मन कहीं फिल्मों, खेलों या दोस्तों की यादों में कुलाँचे भर रहा होता है। कुल मिलाकर मन पर नियन्त्रण न हो तो कितना ही अच्छा टाइम टेबल बना लें, कितने ही उच्च आदर्श और नियम बना लें। कितनी ही शपथ ले लें, कितने ही संकल्प कर लें उन पर चलना और उनका पालन करना अधिक दिन नहीं चल पाता। किन्तु यदि मन पर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है तो इसकी यही तीव्रगामिता और शक्तिसंपन्नता वरदान बन जाती है। मन पर नियन्त्रण हो जाने पर इसे इच्छित तथा श्रेय मार्ग पर चलाया जा सकता है और जहाँ यह उचित मार्ग पर दौड़ना शुरु हुआ कि अल्प समय में ही अविश्वसनीय से कार्य कर डालता है। तब लोगों को लगता है कि– अरे यह तो अतिमानवीय कार्य है, इतने कम समय में इतना अधिक कार्य कैसे कर लिया, अद्‌भुत इत्यादि। परन्तु मन को वश में कर लेने पर सब कुछ संभव है क्योंकि

समय जरूर सीमित होता है पर मनुष्य (मन) की क्षमताएँ अनन्त हैं। समय उतना ही पर काम कई गुना होता है । मन पर नियंत्रण रखने वाले सीमित समय में ही कई गुना काम निबटा देते है क्योंकि तब वे Man नहीं बल्कि Superman बन जाते हैं । मन पर नियन्त्रण कर लेने से सब नियन्त्रित हो जाता है इसीलिये तो कहते हैं। मन के साधे सब सधे। वैराग्य विषयों से विरक्ति का नाम है। मन को इसकी वृत्तियों से खींचकर सही राह पर लगाने का अभ्यास इसका अंग है। इसका मतलब यह नहीं है कि इन वृत्तियों से दूर हो जाने पर व्यक्ति साधु हो जायेगा और संसार से उसका कोई नाता नहीं रहेगा। नहीं, व्यक्ति संसार में ही रहेगा बस उसे मन पर नियन्त्रण हो जायेगा और वह सांसारिक क्रियाकलाप भी बहुत सजग रहकर दक्षता के साथ करेगा फलतः परिणाम भी अच्छे मिलेंगे। मन की वृत्तियों में बह जाने से होने वाले दुष्परिणाम नहीं होंगे। मन की वृत्तियों का सदुपयोग किया जा सकेगा।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईष्या और द्वेष जैसी प्रवृत्तियों का परिष्कार और रूपांतरण मन पर नियन्त्रण से संभव है।[4] जब मन पर नियन्त्रण होगा तो आवश्यक्तानुसार उक्त वृत्तियों का परिष्कृत प्रयोग अच्छे परिणाम लायेगा। गृहस्थ जीवन में काम का एकाग्र और निष्णात प्रयोग गृहस्थ को सुखी और संतुष्ट बनाता है। वाणी का सही प्रयोग व्यक्ति को बड़ी–बड़ी ऊँचाइयों तक पहुँचा देता है। कर्त्तव्यों का सजगता और दक्षतापूर्वक निश्पादन सफलता के शिखरों पर बैठा देता है। समय का प्रबंधन और छुप कर कोई कार्य न करना तो फिर सहज ही सधने लगता है। रात में सोने और सुबह उठने में भी नियमितता आ जाती है। विपत्तियों का सामना होशपूर्वक साहस के साथ किया जा सकता है। लक्ष्य के प्रति एकाग्रता आ जाती है जिससे स्पष्टता और प्रतिबद्धता उत्पन्न हो जाती है। व्यक्ति शुद्ध, बुद्ध और तेजोमय इंसान के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। वह रहता तो संसार मे ही है किन्तु कमल के समान सांसारिकता से निस्पृह होता है। चिन्ता, तनाव और नकारात्मकता विलीन हो जाती है और सकारात्मकता उभर आती है। इतना होता है तो प्रभु विश्वास, आत्म सम्मान और आत्म विश्वास कायम होने लगता है और लोगों की व्यर्थ की टीका टिप्पणी, आलोचना, छींटाकशी, नाराजगी की परवाह नहीं रहती। आत्म–संयम और परोपकार सबसे बड़े धर्म हैं। इन दोनों में सभी धर्मों का सार छुपा हुआ है। यदि व्यक्ति ये दो कार्य करता है तो वह ईश्वर की सबसे बड़ी भक्ति कर रहा है और यह सब संभव हो पाता है मन पर नियन्त्रण से। जिसका व्यावहारिक मार्ग (क्रियात्मक मार्ग) प्राणायाम, ध्यान और उदात्त वातावरण (अच्छी किताबें, अच्छा संगीत, अच्छी संगति, अच्छे विचार, अच्छे भाव तथा ईश्वर प्रणिधान) से होकर जाता है। इसलिये दिन में प्राणायाम, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग, ईश्वर भक्ति, संगीत श्रवण आदि के लिये अवश्य ही समय निकालना चाहिये। अष्टांग योग को जीवन का अंग बना लेने पर मन का नियंत्रण अपने आप सधने लगता है।[5] तब भौतिक उपलब्धियाँ तो बहुत छोटी बात रह जाती है और मोक्ष मार्ग खुलने लगता है। सन्मार्ग पर चलने की षारीरिक और मानसिक शक्ति योग से प्राप्त हो जाती है । यम– (गया सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य) नियम– (शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप, ईश्वर प्रणिधान) आसन, (प्राणायाम,प्रत्याहार,

ध्यान,धारणा,समाधि) यह कर्मकाण्ड बन जाये ऐसा आग्रह नहीं है, होशपूर्वक विवेकानुसार इनका जीवन में नियोजन हो । निम्न योग अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में करना चाहिए। जिनके माध्यम से मन पर नियन्त्रण होसकता है।

बाह्य प्रणायाम	भस्त्रिका	कपालभाती	अनुलोम विलोम	ध्यान	भ्रामरी	उज्जायी	ऊँ का नाद

मार्ग पर चलने की शारीरिक और मानसिक शक्ति योग से प्राप्त हो जाती है । यम– सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, नियम– शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप, ईश्वर प्रणिधान, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, जीवन में उत्पन्न होने वाले अधिकांश उपद्रव वाणी और काम पर नियंत्रण न होने से होते हैं वाक् संयम और काम संयम हेतु निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

वाक् संयम अश्वास से सधता है। अनावश्यक न बोलें। किसी की निंदा न करें। किसी पर कटाक्ष न करें। किसी का अपमान न करें । किसी का उपहास न उड़ायें। आवाज प्रभावोत्पादक रखें। धीरे–धीरे जमा जमा कर बोलें। सुसंस्कृत भाषा का प्रयोग करें। किसी का राज फाश न करें। शिष्टता, सौम्यता, शालीनता और दृढ़ता बनाये रखें, आहार–विहार और आचार–विचार के विरुद्ध बात होने पर ना बोलने में संकोच न करें। तीसरे व्यक्ति को कभी भी चर्चा का विषय न बनायें। हमेशा नवीन तथ्यों और साकारात्मक विचारों को वाणी से निःसृत करें। किसी भी व्यक्ति की कभी भी किसी से तुलना न करें, न तो साकारात्मक अर्थ में और न ही नाकारात्मक अर्थ में। लोगों के बोलने से गुस्सा मत होइये, धैर्यपूर्वक सुनिये, कुछ लोग इसलिये गुस्सा करते हैं कि आप क्रोध और उत्तेजना में आकर कुछ गलत बोल या कर जायें, पर आपको किसी और से संचालित नहीं होना है, प्रतिक्रिया सोच–समझकर संतुलित ढ़ंग से देना चाहिये बड़े पद पर कार्य करने वाले को कान का कच्चा नहीं होना चाहिये, उसे स्वयं विभिन्न सूत्रों और स्रोतों से जानकारी इकट्ठी करनी चाहिये, तभी बोलना या करना चाहिये । केवल एक ही पक्ष को न जानकर दूसरे पक्ष का मन्तव्य भी समझकर निर्णय करना चाहिये। मन को योग के माध्यम से शान्त रखा जा सकता है।

जीवन में शांति और संतुलन चाहने वाले व्यक्ति को संयम का पालन करना चाहिये। ऐसा करके मनुष्य किसी और का भला नही करता बल्कि अपना ही भला करता है और व्यर्थ के झमेलों और प्रपंचों में फंसने से स्वयं को बचा लेता है । प्रत्येक व्यक्ति का एक प्रेरक शक्ति होता है। काम वासना तो व्यक्ति को, सभी व्यक्तियों को नीचे की ओर खींचती है । यह तो एक बहुत बड़ा प्रेरक शक्ति होता है जो व्यक्तियों को कामुकता भरे नन्दनीय कृत्यों की ओर ले जाता है। संतान प्राप्ति और वैवाहिक जीवन की स्थिरता के अतिरिक्त काम ऊर्जा का कोई उदात्त उपयोग कामेंद्रिय के माध्यम से नहीं हो सकता, किन्तु काम ऊर्जा का उर्ध्वगमन करके उससे ऐसे अद्भुत कार्य लिये जा सकते हैं कि संसार चमत्कृत रह जाए और दांतों तले अंगुली दबा ले । तो जैसा कि मैंने पूर्व में उल्लिखित किया गया है कि

काम–वासना के अतिरिक्त भी हर एक के जीवन में कोई प्रेरक शक्ति या उद्देश्य होता है, और यदि नहीं है तो होना चाहिये । इस उद्देश्य को मन में रखने से भी मन काम की ओर नहीं जायेगा, परन्तु उद्देश्य चूंकि श्रेय मार्ग है इसलिये मन उसकी ओर गति करने की सहज प्रवृत्ति नहीं रखता और प्रेय की ओर भागता है । मनुष्य के जीवन में काम के अतिरिक्त भी कोई उदात्त प्रेय विषय होता है । किसी को अच्छी–अच्छी पुस्तकें पढ़ने का चाव होता है तो किसी को संगीत का या बागवानी या पेंटिंग का । यह बहुत उत्पादक और प्रसन्नता दायक समय होता है । सुबह जल्दी उठकर आधे घंटे मैं अपना मनपसंद उदात्त कार्य करूंगा यह भावना जल्दी उठने और प्रेरणा देने में बहुत सहायक होती है। कठिन कार्य के लिये मन को प्रेरित करने के लिये भी इस प्रेरक शक्ति का मन को आश्वासन दिया जा सकता है कि आधे घंटे अपने महत्वपूर्ण कार्य को करने के बाद मैं अपना मनपसंद उदात्त कार्य करूंगा। उदात्त इसलिये क्योंकि मनपसंद काम तो बहुत से होते हैं लेकिन सभी उदात्त नहीं होते। इन्टरनेट चलाना टी.वी. देखने लगना आदि ऐसे कार्य है जो फिसलन भरे हैं। आप यह कार्य करने जाते है कि मात्र 15 मिनिट या आधा घंटा टी.वी देखूंगा और पता चलता है कि एक से दो घंटे तक इस काम ने बर्बाद कर दिये और मन में खिन्नता और ग्लानि भर गया। उदात्त काम सदैव प्रसन्नता देगा, ग्लानि नहीं और वह काम करने के लिये आगे प्रेरित ही करेगा, ग्लानि की जगह आत्म संतोश देगा और ऊर्जा बचायेगा । मन पर नियंत्रण से वाणी और काम का संयम सहज ही साधने लगता है।

मन पर नियन्त्रण उत्तम वातावरण में प्रणायाम, ध्यान अभ्यास और वैराग्य से आ सकता है। मन पर नियन्त्रण से प्रभु विश्वास, आत्म विश्वास, आत्म सम्मान व्यक्ति में अपने आप व्याप्त हो जाता है। मन पर नियन्त्रण से लक्ष्य की स्पश्टता, लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता, संकल्प लगन परिश्रम से कार्यों का सम्पादन, विवेक धैर्य साहस से विपत्तियों का सामना करने की ऊर्जा का विकास होता है। व्यक्ति को छुप कर कोई कार्य नहीं करना चाहिए। व्यक्ति को मशीनवत अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। समय नष्ट नहीं करना चाहिए। वाणी संयम, काम संयम, उचित आहार–विहार पर ध्यान देना चाहिए। प्रकृति के विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिए। तनाव, नकारात्मकता को छोड़ देना चाहिए। सकारात्मक सोचना व बोलना चाहिए। उक्त सभी कार्य मन पर नियन्त्रण से आते है। मन पर नियन्त्रण के लिए ध्यान आवश्यक है। मानव जीवन में यौगिक मार्ग का अनुगमन कर अपने जीवन में उतारना बडा ही कठिन है किन्तु असम्भव नही है। प्रतिदिन सुबह ब्रह्ममुहर्त में विस्तार का त्याग मशीन की भॉति कर दे। शाम को जल्दी सोने का लक्ष्य तय करे। सोने से पूर्व ध्यान करे अपने सम्पूर्ण दिन की दैनिक गतिविधियों पर नजर डाले और मन को एकाग्र कर सकारात्मक कार्यो को ईश्वर रुपी शक्ति को समर्पण कर दे। नकारात्मक कार्यो को पुनः न करने का सकल्प एकाग्र मन से स्वीकार करे। सुबह साकारात्मक कार्यो को करने का मन में विचार कर शयन करे। सुबह योग, प्रणायाम, ध्यान के साथ साथ कम से कम दो किलोमीटर तेज गति से भ्रमण करे। मन व सांसो को नियत्रित करने का अभ्यास ध्यान,

प्रणायाम व योग के माध्यम से निरन्तर करे।वाणी पर संयम रखे। वातावरण को अपने अनुकूल रखे। प्राणियो, पेड, पौधों से प्रेम करे। समय को नष्ट न करे। छुपकर कोई कार्य न करे। वैराग्य भाव मन में रखे क्योकि भाव के ही परिणाम आते है। उत्तम भाव, सकारात्मक विचारो व स्वच्छ मन से भोजन करे व जल ग्रहण करे। भोजन व जल में ईश्वरीय तत्व को स्वीकार करे, क्योकि कहा गया है कि जैसा खाओगे अन्न वैसा बैसा बनेगा मन। जैसा पियोगे पानी वैसी बोलोगे वाणी। अर्थात जिस भाव से भोजन ग्रहण किया जायेगा वैसा मन होगा। उत्तम ईश्वरीय भाव से पिया गया पानी शुद्ध मन, स्वच्छ आचरण व वाणी प्रदान करता है। आत्म विश्वास, ईश्वर विश्वास संकल्प विवेक के साथ लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए। लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए। लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता होना अनिवार्य है। संकल्प लगन परिश्रम से कार्यो को सम्पादित करना, धैर्य, साहस और विवेक के साथ विपत्तियों का सामना करना चाहिए। उचित आहार विहार करे। सकारात्मक मन के साथ योग ध्यान व प्रणायाम करे। नाकारात्मक भावों को त्यागकर साकारात्मक सुने व सकारात्मक सोचे व बोले । निरन्तर मन को एकाग्र करने के लिए सुबह शाम कम से कम प्रतिदिन दस मिनिट तक ध्यान व प्रणायम अवश्य करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अग्रवाल, विजयः मन के साधे सब सधे, पृ. इन्द्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल, 2006 230–240
2. गीता 6.35
3. निरोगधाम, शीत ऋतु अंक, अक्तूबर 1998, पृ.23
4. अग्रवाल, विजयः मन के साधे सब सधे, पूर्वोल्लिखित, पृ. 230–240
5. स्वामी रामदेव, योग साधना एवं चिकित्सा रहस्य, दिव्य प्रकाशन, पंतजलि योगपीठ हरिद्वार, उत्तराखण्ड, पृ. 3
6. वही, पृ. 4–7
7. स्वाजीत भाई योगेन्द्र सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1995, पृ. 4
8. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती मुक्ति के चार सोपान, विहार योग विद्यालय, मुंगेर, 1994, पृ. 60
9. शिवसंहिता कैवल्यधाम श्रीमत्याधव योग मंदिर समिति लोनावला पुणे (महाराष्ट्र), 1999, 36
10. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग प्रकाशन ट्रस्ट मुगेंर, बिहार, 2006, पृ.86

11. मिश्र नंदलाल मानव चेतना बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा, 2004, पृ. 18
12. गोस्वामी हर्षवर्धन,, प्राणायाम, सत्यम पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011, पृ.28
13. भारद्वाज ईश्वर मानव चेतना, सत्यम प्रकाशन दिल्ली, 2011, पृ.46
14. नागेन्द्र एच.आर., प्राणायाम, स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन बैगलौर, 2015, पृ. 88
15. पातंजल योग प्रदीप गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र., पृ. 92

2

योग विज्ञान की अवधारणा एवं प्रमुख तत्व

प्रोफेसर लाल अमरेन्द्र सिंह

धर्म और योग दो ऐसे क्षेत्र है जिन पर हर भारतीय अपने अलग अलग विचार रखता है। भले वह एकांकी और भ्रमपूर्ण क्यो न हो। योग भारतीय मनीषा की अमूल्य खोज है। जिसे भारत में सदियो पूर्व से अपनाया भी गया। विदेशों में स्वामी विवेकानन्द परम हंस, योगनंन्द, अभेदानन्द एवं स्वामी कैवल्यानंन्द ने जिस योग का प्रसार किया उसका स्वरुप आज भी योग प्रणाली से भिन्न है। बी. के. एस. आय्यगार आदि अनेक योगाचार्यों ने जिस योग की विदेशी जनमानस में सफलता पूर्वक प्रतिष्ठिटत किया वह योग की पूर्व पीठिका मात्र है।

आाधुनिक सभ्यता भोग प्रधान बन गई है। देह को सुपुष्ट एवं रोग मुक्त कर सुख स्पर्धा में आगे बढते जाना योग का लक्ष्य नही। अयंगर जी जैसे विद्वानों ने जहॉ पाश्चात्य जगत में योग क्रियाओं , आसन क्रम को प्रतिष्ठित किया वही पर यह भ्रान्ति भी पैदा कर दी कि योग केवल आसन और षटकर्म की देह संवर्धन क्रिया है। योग की परिभाषा चित्त निरोध के रुप में अवाश्यक बताई गई है। परन्तु क्रियात्मक रुप में ''देह साधना हाबी हो गई '' चित्त साधना के ऊपर'' भौतिक सुख की दौड में पाश्चात्य जन यम–नियम और आहार विहार का संयम भूल जाते है। जो कि योग साधना का आवश्यक अंग है। वरन भारतीय योग प्रचारक स्वतः इनत तथ्यों को प्रकाश में नही लाते क्योकि उस संस्कृति में इनकी ग्राह्यशीलता बहुत कम है। '़'अभ्यास वैराग्याभ्यम तन्निरोधः'' में विराग भाव प्रथम सीढी है। उसके बिना अभ्यास का क्रम केवल ऊपरी स्तर का द्योतक बन जाता है। योग का उददेश्य तब केवल स्वास्थ्य वर्धन रह जाता है, जबकि उसका तात्पर्य विलुप्त मनोशक्तियों का पूर्ण विकास कर अति मानस दशा तक पहुचना था।

विराग या सन्यास (स+न्यास) मनोस्तर की क्रान्ति है। अपने आप को बदल लेने का उपक्रम है। पश्चिम का आयाम सीमित है। स्वःसवर्धन (व्यक्ति प्रधान),अंह और मन का अदभुत गठजोड है। दैहिक एवं भौतिक सुख को ही प्रगति का परिचायक मान लिया गया

है। धर्म पर सेवा और समष्टि सेवा का मार्ग है। पश्चिम की रुढी परम्परा में बिना 'स्व' (मेरा मत सर्वोपरी, अन्य व्यार्थ) कोई धर्म नही, पूर्व में 'स्व' की विलीनता के बिना धर्म का प्रारम्भ नही। योग धर्म से भी आगे जाकर विशुद्ध अध्यात्म का मार्ग है। जो बाल बिकार हटाकर परिशुद्ध मन व बुद्धी की रचना की त्रुटी की रचना की ओर ले जाता है। योग की ज्ञानधारा वेदो से पूर्व भी यतियों और मुनियो की कठोर तप साधना के रुप में प्रचलित थी। ऋग्वेद के मंत्र 8:16:18 में इन्द्र से प्रर्थना की गई है कि वे उन यतियों व तपसियों का नाश करे जो कि वेद सम्मत वेद प्रणाली छोड़कर कटोर तपस्या में लगे रहते है। वस्तुतः वेद परिपाटी मूलतः ब्राह्मण परम्परा थी। जिसके सामान्तर 'शैव' पूजक साधना चल रही थी। जिसे आगम कहा गया है। निगम (वेद व उपनिषद) और आगम (शिव व शाक्त परम्परा) मिलकर ही श्रुति परम्परा कहलाती है। पं. गोपीनाथ कविराज के अनुसार आगम साहित्य बहुत कुछ विलुप्त हो चुका है। प्रत्येक आगम में आवश्यक रुप से चार अंग थे। इनमें ज्ञानपाद, योगपाद, क्रियापाद और चर्यापाद। इस प्रकार योग आगम शास्त्र का अति महत्वपूर्ण अंग है। शिव को योग का प्रवर्तक आदि योगेश्वर माना गया है। शैव और शाक्त सम्प्रदाय में योग की अनेक विधाएँ विकसित की गई जो कालान्तर में उपनिषद पुराण, गीता और महाभारत में ग्रहण कर ली गयी। पतजंली प्रणीत योगसूत्र नामक ग्रन्थ द्वितीय शती ईसा पूर्व के आस पास संकलित किया गया है। महाभारत में पंतजलि का उल्लेख नही मिलता है किन्तु योग प्रकरण वृहत याज्ञवल्क्य और याज्ञवल्क्य स्मृति के उदाहरण देता है। योग के प्राचीन आचार्यो में जोगीशब्य, असित और कपिल मुनि के नाम आते है। ऐसा अनुमान है कि पूर्वकाल का योग विषयक ज्ञान संकलन कर पंतजलि ऋषि ने उसे सूत्र बद्ध कर इस महान ग्रन्थ की रचना की थी। पंतजलि योग दर्शन अति दुरुह रचना है। जो उच्च स्तरीय योग अभ्यास करने वालों के लिए लिखी गई है। जिसे पूर्ण रुपेण समझ जाना अति कठिन है। माध्यम वर्ग के योग अभ्यासी हेतु उत्तम ग्रन्थ भगवत गीता है। जिसके अनुसार व्यक्तिशः क्षमता रुचि ओर स्वभाव वैशिष्ठ के अनुरुप अनेक योग मार्गो में से एक का चयन करना चाहिए। यह निर्देशन भी केवल योग्य गुरु दे सकता है। भक्ति योग, राजयोग, जपयोग, ज्ञान योग सहज योग, क्रिया योग आदि अनेक मार्ग सबके लिए नही है।यदि व्यक्ति की मूल प्रकृति के साथ योग मार्ग का समायोजन हो सके तो शीघ्र सफलता मिलती है। गीता के अनुसार स्वै स्वै कमर्ण अभिरते संसिद्धिं लभतेनरः (18/45)

आधुनिक युग में हठयोग को ही पूर्ण योग मानकर केवल उसी का प्रचार व अभ्यास चलाया जा रहा है। योग पीठ योग संस्थान, विश्वविद्यालयों में स्थित योग शिक्षण केन्द्र केवल हठयोग के सिद्धांत व कुछ अभ्यास बता पाते है। उनमें भी आसनों को प्राथमिकता दी जाती है। कुछ बन्ध व मुद्राएँ प्रचलित है। षटकर्म का अभ्यास करवाा जाता है। कुडालिनी जागरण का विवरण दिया जाता है। इसके बाद भी योग का ज्ञान आधा अधूरा होता है क्योकि बिना सिद्ध गुरु के यह क्रियाएँ सम्भव नही है। सिद्ध योगी एकान्त ध्यान मग्नता छोडकर प्रदूषित वायुमण्डल के शहरों में क्यों आयेगा। यदि लोक कल्याण हेतु प्रकट भी

होगा तो बिना खरी जांच के शिष्यत्व नही देगा। गुरु गोरखनाथ ने योग्य शिष्य हेतु चौबीस परीक्षाएँ निर्धारित की है उनमें उत्तीर्ण हुए बिना गुरु की कृपा सम्भव नही। यही कारण है कि सिद्ध योगी और योग्य योग्याभ्यासी दोनो का अभाव है। योग विज्ञान में शोध उपाधिधारक नेट पास अधिक मिल जाते है। छैः माह की शिक्षा पाये सैकडों योगाचार्य मिल जाते है परन्तु उन सभी का ज्ञान आसन अभ्यास और षटकर्म क्रिया से आगे जा नही पाता है। पतंजलि ऋशि ने केवल दो सूत्रों में आसन क्रिया की व्याख्या की है '' स्थिरं सुखम् आसनम्'' अर्थात जो देहदशा घंटो तक स्थिरता दे सके और बिना कष्ट के की जा सके वह ''आसन'' है। इस परिभाषा में केवल चार आसन आ पाते हैं ये हैं सिद्धासन, पद्मासन, स्वास्तिक आसन और भद्रासन। अन्य भी आसन योग प्रवत्त आसन न होकर केवल देहासन हैं। उनका उद्देष्य देह को इस योग्य बना देना है कि कठोर साधना की जा सके। इस रुप में 'देहासन' योग का अंग न होकर उसकी पूर्व भूमिका तैयार करने का उपक्रम मात्र है। जिसे योग समझ लिया गया है। योग के अनेक मार्गो में जैसे भक्ति योग, ज्ञान योग, राज योग, कर्म योग, क्रिया योग, जप योग में आसनों की कोई भी भूमिका नही और न आवश्यक समझा गया है। पतंजलि का आसन विषयक दूसरा सूत्र है ''प्रयत्न–शैथिल्याना अनन्त समापत्तिश्याम्'' (2/47) जो स्पष्ट कर देता है कि योग क्रिया षिथिल कर सारी चेष्टायें समाप्त कर देते हैं तभी 'सभापत्ति' की दशा तक सम्भव है। यहां पर समाापत्ति शब्द का तात्पर्य समझना आवयक है। जो कि योग सूत्र के ष्लोक 1/41 द्वारा स्पष्ट किया गया है। सम्प्रज्ञात समाधि हेतु ही समापत्ति शब्द का प्रयोग किया गया है। पतंजलि ऋषि आसन का तात्पर्य ले रहे हैं मनदेह और इन्द्रियों की पूर्ण शिथिलता की दशा पा लेना जो सामाधि के स्तर तक पहुंचा सके। योग का आधार ग्रन्थ आसन का जो स्वरुप स्वीकार कर रहा है। उसके ठीक विपरीत जाकर हम श्रसाध्य आसनों को योग शब्द का पर्याय मान लेते हैं। कुछ विद्वानों के मत से पतंजलि प्रणाली चिन्तानुशासन की विधा है जबकि हठयोग देहानुशासन की प्रक्रिया है। हठयोग का आधार ग्रन्थ हठयोग प्रदीपिका कहता है 'अभ्यसेन नाड़िका शुद्धिः मुद्रादि पवन क्रियाम् आसनम् कुम्भक चित्रं मुद्रारव्यं करणं तथा (1/58) अर्थात दीर्घ अभ्यास के द्वारा नाड़ी शुद्धि करें। मुद्राओं के माध्यम से पवन सिद्धि का अभ्यास और आसन द्वारा कुम्भक (प्राणवायु का नियमन, निरोध) व मुद्रा का अभ्यास हो। यहां स्पष्ट है कि आसन अगली योग क्रिया का माध्यम है न कि स्वयं साध्य है। अगला श्लोक कहता है कि आसन के बाद नाद अनुसंधान का प्रयास करें योग के अष्टांग क्रमशः उत्तरोत्तर प्रगति के मार्ग हैं बिना यम–नियम व आहार विहार शुद्धि के 'आसन' योग हेतु भी अनुपयोगी है। अगली सीढ़ी प्राणायम की है योग आसन (चार प्रमुख आसन) प्राणायाम क्रिया की पूर्व पीठिका है। प्राणायाम सिद्धि के पश्चात ही धारणा क्रिया का प्रारम्भ है, धारणा सिद्धि के वाद ध्यान और ध्यान सिद्धि हो जाने पर बिना प्रयास स्वतः समाधि लग जाती है। समाधि, क्रिया पूर्ण प्रक्रिया न होकर उच्चतम दशा है जो स्वतः आ जाती है। समाधि के भी अनेक उच्चतर स्तर है जो क्रमशः उपलब्ध होते हैं। वही योग का लक्ष्य है जिनके द्वारा मानव भी परामनोशक्तियों और अपार ज्ञान का स्वामी बन जाता है।

पतंजलि ऋषि ने चार प्रकार के प्राणायाम बताये हैं। चारों विधियों में वायु गमन को पूर्ण अवरुद्ध कर लेते हैं और यह दशा कई घटी तक चलती है। प्राणायाम की सिद्धि आठ घटी (सवा तीन घण्टें तक) वायु निरुद्ध रखने की है तभी धारणा दषा में प्रवेश कर पाते हैं। कितने योगाचार्य और योग गुरु होंगे जो पतंजलि के प्राणायाम का दषमांश करके दिखा सकें। जो प्राणायाम प्रचलित है वो प्राणवायु का नियमन मात्र है। इतने से भी तनाव मुक्ति और चित्त शान्ति मिल जाती है। पतंजलि के प्राणायाम से ही नाड़ी शुद्धि होती है और इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि पर अपार नियंत्रण आ पाता है। यह प्राणायाम और आगे की क्रियायें केवल किसी सिद्ध योगी की सहायता से कर पाना सम्भव है। ऐसे सिद्ध योगी उन्हें ही मिल पायेंगे जो उच्च योग साधना हेतु सतत् प्रयत्नशील हो, गहरी लगन हो और पूर्ण विरागमय जीवन हो।

आसन तो योग पथ का ककहरा मात्र है। केवल अक्षरज्ञान से परमज्ञानी नही वन पायेंगे। आगे के अनेक कठिन स्तर हैं उन्हें पार करके ही ज्ञान की महिमा से सुशोभित हो सकेंगे। 'क' कबूतर 'ख' खरगोश 'ग' गधा प्रारम्भिक ज्ञान था, आवश्यक था बाल सुलभ मन के लिए। गधत्व छोड़कर ही, 'अक्षर' की महत्ता पा सकेंगे अक्षर से शब्द बनेंगे उनसे वाक्य बनेंगे, वाक्यों से ज्ञान धारा बहेगी। कितने योगाचार्य हैं जो उसी गधत्व (उसी प्रारम्भिक रुप) से चिपटे रहना चाहते हैं। अनेक कारण भी हैं जगत व्यापार में लिप्त व्यक्ति केवल अच्छा स्वास्थ्य चाहता है जिसे पाकर वह जगत व्यापार में और अधिक सक्रिय और सफल हो सके। अधिक देह क्षमता पाने हेतु आज का व्यक्ति व्यय करने को भी तत्पर है, आसनाभ्यास पष्चिम में 'फिटनेट एक्सरसाइज' मात्र बन कर रह गया है। जो कि अति लाभकर व्यवसाय बन गया है। भारत में भी उसी लाभप्रद व्यवसाय की लहर बह रही है। जिसमें 'योग प्रचार' और योग साधना विलुप्त हो चुकी है। विद्या क्षेत्रों और विष्वविद्यालयों का पुनीत कर्त्तव्य है कि योग के षुद्ध स्वरुप और योग साधना के उच्चतर रुप को पुर्नस्थापित करें। आसनों की रोग निवारण क्षमता पर वस्तु परक वैज्ञानिक शोध करें। उनके आन्तरिक अंगो (हारमोन्स, किडनी, लीवर, हृदय, पैन्क्रियांज आदि पर होने वाले वर्तमान प्रभावों की पूर्ण गवेशणा हो। रोग–विषेश, आयु–विषेश व लिंगीय भेद की दृश्टि से आसनों का चयन व अभ्यास क्रम निर्धारित हो। उसके लिए भी वस्तु परक वैज्ञानिक विधि से शोध हो। इस प्रकार शटकर्म, बन्ध, मुद्रा व वेध पर भी शोध परक अन्वेशण हो। सिद्ध योगियों से प्राणायाम, धारणा ध्यान आदि का अभ्यास व निर्देशन प्राप्त हो सके। कालेज, विश्वविद्यालय के हर योग केन्द्र पर शोध हेतु सुविधाएं हो। योग विभागों में वैज्ञानिक शोध दृष्टिकोण से सम्पन्न साइकोलोजिस्ट, न्यूरोफिजिया लाजिस्ट और वायोकेमिस्ट अध्यापक हो। हर केन्द्र पर एक टीम बन सके जो शोध पूर्ण अन्वेषण द्वारा योग को विज्ञान सम्मत स्वरुप दे सके। योग्यतम अध्यापकों के चयन हेतु अगले दस वर्ष तक जातिगत कोटा प्रणाली शिथिल की जाय। विभागाध्यक्ष पद हेतु यदि अति अनुभवी व निपुण प्रोफेसर न मिल सके तो अवकाश प्राप्त वर्ग में से भी योग्यतम का चयन किया जाय। उन्हें दो या तीन वर्ष की संविदा पर नियुक्ति दी जाय। जिससे नई पीढ़ी के अध्यापकों को समुचित मार्गदर्शन

मिल सके। प्रत्येक विश्वविद्यालय योग के वैज्ञानिक स्वरुप पर आधारित उचित पाठय् सामग्री का प्रकाशन करे। केन्द्र का आयुष विभाग नूतन शोध हेतु समुचित रिसर्च ग्रान्ट व प्रोजेक्ट उपलब्ध कराये। आयुष विभाग 'योग, आर्युवेद व जड़ीबूटी विज्ञान' पर हो चुकी शोधों (एम0फिल / पी0एच0डी / एम0डी0) का संकलन करे एवंम एक ''योग एवं आयुष अनुसंधान परिषद'' का गठन करे जो कि प्राप्त शोध कार्यो के स्तर का निर्धारण करें (क्योंकि पिछले दषक में योग की बढ़ती मांग और उपादेयता की दृष्टि से अनेक त्वरित शोध प्रबन्ध कराये गये जो स्तरीय सिद्ध न हो पायेंगे) विशेषज्ञों की टीम उन सभी के स्तर की जांच करे केवल A^{I} A^{II} स्तर के शोधकर्ताओं की विश्वविद्यालय स्तर पर नियुक्ति मिल सके। स्तर A^{III} व B^{I} को कालेज स्तर पर अवसर दिया जाय। इससे निम्न स्तर के शोध प्रकल्प के शोध निर्देशक की क्षमता की जांच की जाय। यदि अक्षम पाया जाता है तो उन्हें शोध कार्य से मुक्त किया जाय।

विश्वविद्यालयों के पाठयक्रम में उपनिशदों, पुराणों, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरणों के विवेचन व व्याख्या के स्थान पर योग विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण व खोजो को प्रश्रय दिया जाय। योग निरोध की प्रक्रिया होने के कारण व्यवहत व्यक्तित्व विज्ञान का अंग है। ऐसा मनोवैज्ञानिक जो व्यक्तित्व मनोविज्ञान का विशेषज्ञ हो ऐसा न्यूरोफिजियालोजिस्ट जो मस्तिष्किय प्रक्रिया व हारमोनल ग्लैन्ड प्रक्रिया में शोधरत हो एवं शोधपरक वायुकेमिस्ट के सहयोग से योग विज्ञान के पाठयक्रम का स्तर सुधरेगा एवंम आवश्यक अन्वेशण सम्भव हो सकेंगे। योग नया विशय क्षेत्र है अतएव अंकुरण की दशा में अधिक देखभाल की आवश्यकता है। भारत का उत्तरदायित्व बनता है कि विष्व को योग का वैज्ञानिक स्वरुप दे सके। और मानव उन्ययन की योग द्वारा अपार सम्भावनाओं को हम उजागर कर सके जिन्हें वर्षो पूर्व योगी अरविन्द ने दिग्दर्शित किया था। एक विहंगम दृष्टि में योग के मूल स्वरुप को इन शब्दों में कहा जा सकता है :–

1. योग एक एकान्तिक अध्यात्म साधना है जो व्यक्तिशः रुप में योग्य गुरु के सहयोग द्वारा की जाती है।
2. योग अभ्यासगत है परन्तु उसकी अनिवार्य शर्त है सांसारिक जीवन से विराग भाव (मन की दशा न कि घरवार, कारवार त्यागने की दशा)।
3. बिना उचित योगस्थली चयन (प्रदूषण मुक्त शुद्ध वायु) यम–नियम और आहार–विहार संयम के योगाभ्यास अनुपयोगी हो सकता है।
4. हठयोग ही योग मात्र नही है। राजयोग, भक्तियोग, जपयोग, ज्ञानयोग, सहजयोग, लययोग, कर्मयोग, क्रियायोग, ध्यानयोग (जनप्रणाली) और कुंडलनी योग आदि योग की अनेक विधायें हैं जिनके साधक योग के उच्चतम स्तर तक पहुंच सके।
5. हठयोग, आसन और षटकर्म मात्र नही हैं। हठयोग की परिभाषा भी उसका प्रारम्भ प्राणायाम से मानती है। (हकारः कीर्तिति सूर्य ठकारष्च चन्द्र उच्यते, सूर्यचन्द्र असायागाद हठयोगे निगघते)।

6. जनमानस में प्रबल धारणा बन गयी है कि 'आसनाभ्यास' ही योग है। योग का प्रारम्भ होता है देह भाव और देहासक्ति छोड़ देने के बाद ही। आसन का लक्ष्य बन गया है देह पुष्टि और देह वर्धन।
7. आसन निरोगता का उपाय है परन्तु उस दिशा में भी समुचित वैज्ञानिक शोध आवश्यक है। प्राणायाम (स्वास नियमन) की अनेक सहज क्रियाएं अतिलाभकारी है विषेशकर तनाव मुक्ति, चित्त शान्ति व सतत् मनन कार्य हेतु।
8. पतंजलि योग मूलतः चित्तानुशासन है। हठयोग का लक्ष्य भी वही है परन्तु वह देहानुषासन के बाद चित्तानुशासन की ओर बढ़ता है।
9. जगत व्यापार से विरति होने के दो उपाय हैं। एक है मन इन्द्रिय और बुद्धि को वर्हि जगत से मोड़कर अर्न्तमुखी कर देना और धीरे–धीरे उन्हें शून्यमय बना देना। दूसरा उपाय है कि किसी एक इष्ट देव में इतना अधिक तन्मय हो जाना कि वाह्य जगत पूर्णतः विलिन हो जाय। पहला मार्ग हठयोग का है, दूसरा है भक्ति योग, लययोग और ज्ञानयोग का। दूसरे मार्ग में षीघ्र सफलता मिल पाती है। परन्तु योग मार्ग का चयन व्यक्ति की जन्मजात प्रकृति के अनुरुप होने से सफलता अधिक शीघ्र सम्भव है।
10. योग की दुरुह परिपाटी बिना सिद्ध गुरु के कृपा के सम्भव नही है (आसन, यम–नियम, शटकर्म छोड़कर)।
11. 'यम' साधन से सत्वशुद्धि होती है। यम को जाति देशकाल, समय, निरपेक्ष सर्वभौम महाव्रत कहा गया है (यो0मू0 2/31) उनके बिना योग में प्रगति सम्भव नही है। इनसे चारित्रिक स्तर भी उठता है।
12. सभी सिद्ध योगी उच्चतर स्तर प्राप्तकर लोक कल्याण हेतु संसार में वापस लौटते हैं। उस समय उनका व्यवहार सामान्य जन के समान होता है। प्रायः गुरु क्षमतावान शिश्य को स्वयं खोज लेते हैं या उन्हें प्रेरणा दे उन्हें अपने पास बुला लेते हैं (उदाहरणः लाहिडी महाशय) और उन्हीं के द्वारा योग का पुर्नद्धार करवाते है।
13. प्रतिक्षण वाहय् प्रभाव व विकार संस्कार बनकर चित्त को धूमिल करते हैं। हम पूर्व जन्मों से भी अनेक ऐसे संस्कार लेकर आते हैं। इन्हीं का निरसन कर शुद्ध बुद्ध स्वरुप देना 'योग' का कार्य है। उस दशा में परामनों शक्तियां व शुद्ध ज्ञान का उदय सहज हो जाता है। ऐसी प्रज्ञा योग विधि से हर अभ्यासी प्राप्त कर सकता है। यही मनोविज्ञान की 'इगो–डी–इनहेन्समेण्ट' एवम डी–कन्डीशनिंग की प्रक्रिया है।
14. गीता के अनुसार हर व्यक्ति योग में प्रवृत्त होकर कुछ न कुछ लाभ ले सकता है परन्तु सफल योगी नही बन सकता है। अनेक जन्मों के संचित प्रभाव से ही सफल योगी बन पाना सम्भव है (अध्याय 6 श्लोक 40–45) प्रत्येक व्यक्ति की जन्मजात प्रवृति अनुसार ही उसकी योग विधा भी होगी (गीता 18/45)

15. योग सूत्र के तीसरे अध्याय में दर्शित सारी सिद्धियां योग द्वारा सम्भव है। इस युग में भी युक्तेश्वर गिरी, तैलंग स्वामी एवं स्वामी विशुद्धानन्द आदि अनेक योगी प्रमाण स्वरुप हैं।
16. योग सूत्र का अन्तिम वाक्य है ''सारी क्रियाओं और गुणों की शून्यमय दशा ही कैवल्य है'' The externment of all cumulative external effects, the total deconditioning (प्रति प्रसव) is the only (Blissful) State.
17. योग मानव कल्याण एवं संसार में व्याप्त संत्रास से उद्धार पाने का अकेला मार्ग है एवंम कर्तव्य है केवल मनः स्थिति अपनाने की आवश्यकता है।

उक्त विचार क्रम का मन्थन करने से सम्भव है कि योग मार्ग को समुचित दिशा की ओर ले जा सकें। जिससे स्वयं का एवं जगत का कल्याण होगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. स्वामी निरंजनानन्द स्रस्वती योग दर्शन बिहार योग विद्यालय, मुंगेर।
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती मुक्ति के चार सोपान, विहार योग विद्यालय, मुंगेर, 1994
3. पातंजल योग प्रदीप गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
4. योगांक गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
5. षिवसंहिता कैवल्यधाम श्रीमत्याधव योग मंदिर समिति लोनावला पुणे (महाराष्ट्र)
6. गोस्वामी हर्षवर्धन,, प्राणायाम, सत्यम पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011
7. भारद्वाज ईश्वर मानव चेतना, सत्यम प्रकाशन दिल्ली, 2011,
8. स्वामी विवेकानंद, राजयोग, पी.एम. प्रकाशन दिल्ली, 2014
9. हरिहरानंन्दः– क्रियायोग, उड़ीसा

3

योग, स्पंदन और आदिवासी जीवन पद्धति

डा. राकेश सोनी

आज पूरे विश्व में उदार लोकतंत्र, मुक्त पूंजीवादी व्यवस्था और तकनीक केन्द्रित जीवन पद्धति का संचालन हो रहा है जिसमें कमोवेष सभी राष्ट्र और समाज स्वेच्छा से या दबाव के तहत अनीच्छा से ही सही, स्वीकृति प्रदान कर चुके हैं. धीरे धीरे हम एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति का निर्माण कर रहें है जहाँ विज्ञान और तकनीक आधारित एकरूपता का वर्चस्व स्पष्टतः देखा जा सकता है। विज्ञान का स्वरूप ही कुछ ऐसा है जिसमें सार्वभौमिकता और वस्तुनिश्ठताहर चीज की एक कसौटी होती है. आज पूरा जीवन विविधस्मार्ट यंत्रों और बाजारकी ताकत द्वारा नियमित हो रहा है फलतरू हमारा जीवन पहले की तुलना में बहुत ही सहज और सुविधा संपन्न युक्त हो गया है, बल्कि इन्हीं यंत्रों और नित नयी तकनीक की वजह से हमारी ज्ञानेन्द्रियां और मन की पहुँच सूचना एवंज्ञान के नये नये क्षेत्रों तक पहुँचने में सक्षम हो गयी है और नित नये ज्ञान के दरवाजे में दस्तक देने के लिए आतुर है। आज हम ज्ञान आधारित समाज में रह रहे है प्रकृति के कई रहस्य अब हमारे लिएअनजान नहीं रहे। इन सारी उपलब्धियों के बावजूद हम अभी भी मनुष्य को समझने में कोशो दूर हैं। मनुष्य के भीतर जो अनुभवों की विविधता थी वह अब सिकुड़ रही है। उसकी अपनी अन्तःदृष्टि कही खो गयी है जिसकी वजह से वह केवल आर्थिक मानव हो गया है. मनुष्य केवल आर्थिक मानव नहीं बल्कि इसके अलावा और बहुत कुछ भी है।

मानव समाज में आदिवासियों का एक ऐसा समूह है जिनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति है, उनकी अपनी विशिष्ट जीवन पद्धति है. उनमे से कुछ कथित विकास की प्रक्रिया में खो गये तो कुछ कुंठित होकर समायोजित हो गये और कुछ उहापोह की स्थिति में है कि करें तो करें क्या यद्धपि उन्हें भी आधुनिक सुविधायें चाहियें किन्तु अपनी संस्कृति की कीमत पर नहीं. वास्तव में आदिवासियों के प्रति हमारी समझ अभी भी आधी अधूरी बनी हुई है। ऐसा इसलिए की हम यह मानकर चलते है की दुनियां में ज्ञान की एक ही पद्धति

है और वो है विज्ञान. विज्ञान की दृष्टि में आदिवासी विकास की प्रक्रिया से वंचित समूह है इसलिए हमें उनकों मुख्य धारा में लाना है। यही बात गैर आदिवासी समूह में भी लागू होती है। वो समझते है कि विज्ञान सभी समस्यायों का समाधान है जिस प्रकार हम प्रकृति को समझ सकते है उसी प्रकार विज्ञान से मनुश्य को भी समझा जा सकता है। वास्तव में, मनुष्य को समझने के लिए हमें ज्ञान की एक नयी पद्धति खोजनी होगी. आदिवासियों की साँस्कृतिक जड़े इस बात का प्रमाण है कि सब कुछ विज्ञान, इतिहास, विकास और देश–काल नहीं है इसके अलावा भी बहुत कुछ है जिसे जानने की आवश्यकता है। वैसे भी तार्किक दृष्टि से ज्ञान की केवल एक पद्धति हो भी नहीं सकती क्योंकि उसे संतुलित करने के लिए उससे भिन्न कम से कम एक अतिरिक्त पद्धति अवश्य होना चाहिए जो स्वरूपतः विज्ञान से भिन्न हो।

विश्व में दो प्रकार के ज्ञान की विधियां है प्रथम, वह जो पदार्थ से चेतना की ओर जाती है और दूसरा वह जो चेतना से पदार्थ की ओर जाती है. प्रथम को प्रक्रियात्मक ज्ञान (Methodological Knowledge) और दूसरे को स्पन्दात्मक ज्ञान (Throb or Creative Pulsation Knowledge)कहा जाता है. ज्ञान की दोनों विधियों में भौतिक पदार्थ ही केंद्र में है. दोनों प्रकार की विधियों में सात प्रकार के ज्ञान होते है। वैज्ञानिक ज्ञान, गणितीय ज्ञान, दार्षनिक ज्ञान, नैतिक ज्ञान, सौंदर्यात्मक ज्ञान, धार्मिक ज्ञानऔर आत्मज्ञान. वैज्ञानिक ज्ञान का सम्बन्ध मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और मन से है, गणितीय ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि के तर्क पक्ष से, दार्शनिक ज्ञान मनुष्य के अन्तः प्रज्ञा से,जो बुद्धि का आंतरिक पक्ष है, नैतिक ज्ञान अन्तःप्रज्ञा के क्रिया पक्ष से, सौंदर्यात्मक ज्ञान अन्तःप्रज्ञा के भावना पक्ष से, धार्मिक ज्ञान आस्था जन्य ज्ञान है और आत्म ज्ञान विशुद्ध चेतनात्मक ज्ञान है जो सर्वोत्कृष्ट ज्ञान के श्रेणी में आता है। इनमे से आत्म ज्ञान को छोड़कर शेष सभी ज्ञान जाग्रत, स्वप्न, सुशुप्त और तुरीय चेतना की अवस्था के ज्ञान है जबकि आत्मज्ञान तुरियातीत चेतना के स्तर का ज्ञान है।[1]

प्रक्रियात्मक ज्ञान सुनिश्चित विधि, क्रमिक और संघठित रूप में विश्लेषण–संश्लेषण की प्रक्रियायों को अपनाते हुए पदार्थ और प्रकृतिकी घटनाओं के रहस्यों पर प्रकाष डालती है. यह बात विज्ञान(प्राकृतिक विज्ञान, प्राणी विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, तकनीक और अभियांत्रिकी आदि विषय) और गणित के संदर्भ में स्पष्ट है किन्तु, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, धार्मिक ज्ञान और आत्मज्ञान के सम्बन्ध में विज्ञान की विधि को समझना थोडा मुश्किल है क्योंकि ज्ञान कि इन कोटियों का स्वरूप प्रक्रियात्मक ना होकर स्पन्दात्मक है[2]। विज्ञान से इतर ज्ञान की यें कोटियाँ अवधारणात्मक, मूल्यपरक और आनुभविक स्वरूप की है जो किसी प्रक्रिया से नहीं बल्कि आंतरिक चेतना के स्पंदन से उत्पन्न होती है. लेकिन यह स्पंदन या स्फुरण भी तभी उत्पन्न होता है जब एक निश्चित प्रक्रिया या विधि द्वारा स्पंदन की परिस्थिति तक पहुंचा जाता है. किन्तु, प्रक्रिया की भूमिका यहाँ गौण और स्पंदन की भूमिका प्रमुख होती है. प्रक्रिया को प्रणाली भी कह सकते है जो दर्शन आदि ज्ञान की कोटि मेंउपरिस्थित रहता है लेकिन स्पन्दनात्मक ज्ञान ही इनकी पहचान

है. दर्शनशास्त्रज्ञान भी है और सम्बंधित प्रणाली भी[3]। इसी प्रकार नैतिकता, सौन्दर्यशास्त्र, धार्मिक ज्ञान और आत्मज्ञान ज्ञान की विशिष्ट कोटियां भी है और विशिष्ट प्रणाली भी. जब प्रणाली की दृष्टि से ज्ञान की इन कोटियों को देखा जाता है तब ये सभी प्रक्रियात्मक ज्ञान ही होते है पर यह प्रक्रिया सम्बंधित ज्ञान की कोटि तक ही सीमित होती है और तब इनका स्पन्दात्मक रूप गौण हो जाता है। लेकिन ज्ञान की इन कोटियों का मूल स्वरूप स्पन्दनात्मक ही है जो विज्ञान से भिन्न है।

यद्यपि ज्ञान की इन कोटियों का अध्ययन विज्ञान अपने तरीके से करता है पर इन सभी ज्ञानो का स्वरूप विशिष्ट और भिन्न होने की वजह से विज्ञान इसे पूरी तरह से समझ पाने में असफल रहा है. इसीलिए ज्ञान की इन कोटियों को हमें समझने के लिए विज्ञान से भिन्न दृष्टिकोण अपनाना होगा जो निरूचत रूप से स्पन्दनात्मक स्वरूप का ही हो सकता है।

प्रश्न यह है कि यह स्पंदन आखिर है क्या? स्पंदन से आषय चेतना की गतिशीलता से है जो स्फुरित होकर निरंतर विश्व की रचना में संलग्न रहता है और मनुष्य के भीतर सूक्ष्म चेतानाणु के रूप मेंउपस्थित रहता है. विचार, भाव, इच्छा, संकल्प, अनुभवआदि चेतना के ही स्पंदन है. स्पंदन का स्वरूप याद्रक्षिक (त्ंदकवउ) होता है जो देश–काल से निस्पृह, विकास या प्रक्रिया से रहित, व्यवस्थारहित (Chaos) किन्तु अर्थवान होकर सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार बनता है।[4] यह बात उल्लेखनीय है की स्पंदन ही प्रकृति के सबसे निकट और प्राथमिक इकाई है जो प्रकृति के रहस्यों को उजागर करती है. यही स्पंदन आत्मज्ञान, ध ार्मिक ज्ञान, सौन्दर्यबोध, दार्शनिक ज्ञान, नैतिक ज्ञान, गणितीय ज्ञान और यहाँ तक वैज्ञानिक ज्ञान के रूप में हमारे समक्ष प्रकट होता है। पिछली सदी के पश्चिम में जर्मन दार्षनिक ऐडमंद हसरल ने कुछ इसी प्रकार के ज्ञान की नयी पद्धति फेनोमेनोलोजी[5] के नाम से हमें परिचित कराया था जो विज्ञान से बिल्कुल भिन्न पद्धति है. इस पद्धति का बहुत विकास हुआ है और अधिकांश विद्वान् इसे वैकल्पिक ज्ञान की एक विधि के रूप में अब भी स्वीकार करते है. किन्तु, यह अभी भी मनुष्य के अधिकाँश सवालों के जवाब नहीं दे पाता है. प्राचीन भारत में शैव परम्परा में फेनोमेनोलोजी विधि से कही ज्यादा विकसित और परिपक्व विधि प्रचलित थी जिसे स्पंदनके नाम से जाना जाता था[6]। भट्ट कल्लट द्वारा रचित स्पंदनकारिका में इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख है। उस समय इसे ज्ञान तो माना गया किन्तु यह ज्ञान की एक पद्धति भी हो सकती है इस पर किसी भी शास्त्र या साहित्य में व्यापक रूप से चर्चा नहीं मिलती जबकि संभवतः इसी पद्धति के माध्यम से भारत में वेद और तन्त्र अर्थात निगम और आगम का ज्ञान प्रकाशित हुआ है. और इसी परम्परा में समस्त लौकिक ज्ञान और प्राचीन विज्ञान की अनेक उपलब्धियां अर्जित की गयी थी. बाद में किन्हीं कारणों से इस विधि पर ध्यान न देने की वजह से इतिहास के किसी काल खंड में यह हमसे कही छूट गया है, जिसे पुर्नजीवित करने की आवश्यकता है।

स्पंदन को ज्ञान की एक पद्धति के रूप में अभी तक पहचान नही की गयी ह`जिसे विज्ञान से भिन्न एक वैकल्पिक ज्ञान की विधि के रूप में विकसित किया जा सकता है और जिसके आधार पर एक विकल्प के रूप में नयी विश्व व्यवस्था और नयी संस्कृति के निर्माण की संकल्पना की जा सकती है।

स्पंदन विधि को समझने के लिये तीन तत्वों को समझना आवश्यक है पदार्थ, चेतना और भाषा पद को अर्थवान बनाने वाला तत्व पदार्थ कहलाता है[7]. पद से आशय शब्द से है जो भाषा का ही संक्षिप्त रूप है, पदार्थ और भाषा के बीच सम्बन्ध को दर्शाता है. पदार्थ के प्रति इस विशिष्ट दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है. यह दृष्टिकोण बताता है कि पदार्थ का अपना कोई निजी स्वरूप नहीं होता है. उसकी पहचान शब्द या भाषा के आधार पर होती है. पदार्थ के जो भी गुण है जैसे जड़त्व, भार, ऊर्जा, विद्धुत, चुम्बकत्व, ताप, परमाणु इत्यादि और गुरुत्वाकर्शण आदि आधारभूत नियम विभिन्न शब्दों के अर्थ के विस्तार के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जो चेतना से निःसृत होकर भाषा के माध्यम से पदार्थ तक पहुंचता है। आधुनिक विज्ञान का दृष्टिकोण ठीक इसके विपरीत है जो पदार्थ को प्राथमिक इकाई मानकर स्थूल जगत से सूक्ष्म जगत की ओर अग्रसर है. भाषाविद पदार्थ के आधार पर भाषा के संबंधों को समझने का प्रयत्न करते है और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भाषा के क्रमिक विकास को रेखांकित करते हुए इसे भाषा और पदार्थ के बीच के सम्बन्ध को याद्रक्षिक (Arbitrary) मानते है[8]। दृष्टिकोण चाहे जो भी हो किन्तु पदार्थ हमारे जीवन का केंद्र बिंदु है जो हमें अनंत की ओर ले जाता है।

जहाँ तक स्पंदन विधि में भाषा का प्रश्न है तो भाषा भी मस्तिश्क या चेतना का ही प्रतिरूप है जो ऊपर से नीचे तक प्रवाहित होता है. परा, पृयन्ति, मध्यमा, बैखरी भाषा के ही विभिन्न स्तर है जिसमे अर्थ के विभिन्न स्तर भी अंतर्निहित होते है[9]। इस दृश्टि से केवल संस्कृत भाषा ही ऐसी भाशा है जो सूक्ष्म से स्थूल तक विविध अर्थों को धारण कर सकती है शायद इसीलिये संस्कृत को पूर्ण और देव भाषा मानी जाती है. स्पंदन विधि में संस्कृत भाषा की भूमिका महत्तवपूर्ण है क्योंकि यही वो भाषा है जो स्पंदन के सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतम स्थिति में भी एक एक अक्षर, वर्ण, मात्रा, ध्वनि आदि विविध अर्थों का संवाहक बनती है और स्थूल से स्थूल स्तर की वस्तु और घटनाओं के लिए अत्यंत वैज्ञानिक और तार्किक ढंग से अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

भाषा के बाद चेतना भी एक अनिवार्य घटक है जो शायद इन सबमें सबसे मुख्य और प्राथमिक है.चेतना के बिना भाषा मृतप्राय है क्योंकि चेतना ही अर्थ का सृजन और धारण करती है. चेतना जब स्पंदित (किंचित चलनं)[10] अर्थात चलायमान होती है तब भाषा, अर्थ और पदार्थ का जन्म होता है. यही उन्मेश (Evolution) की क्रिया है, जो सृष्टि– सृजन और क्षण सृजन के नाम से जाना जाता है. इसकी ठीक उलटी प्रक्रिया अर्थात् क्षरण, विलय, विनाश, प्रलय आदि को निमेश(Involution)कहा जाता है[11]. ये दोनों ही प्रक्रिया दो अलग अलग न होकर परस्पर सम्बंधित है, जब व्यक्ति या पिंड या इकाई के स्तर पर उन्मेश होता

है तो ठीक उसी समय में समूह या ब्रह्माण्ड के स्तर में निमेश और जब पिंड के स्तर में निमेष की घटना होती है तब ब्रह्माण्ड के स्तर में उन्मेष होता है. इस प्रकार पिंड और ब्रह्माण्ड माला और गुरिये के सामान परस्पर गुंथें होते है. यह पूरी प्रक्रिया चेतना के विभिन्न स्तरों में घटित होती है. चेतना के सात स्तर होते है– जागृत, स्वप्न, सुशुप्त, तुरीय, तुरीयातीत, भगवत और ब्राह्मी चेतना[12.]

पदार्थ, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, बुद्धि और मन के संयोजन से जो दैनिक जीवन जिया जाता है उसे जागृत चेतना कहते है. जागृत चेतना के आधार पर ही हमारी व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन चलता है. ऐसी चेतना जो जागष्त और सुशुप्त के बीच की कड़ी हो अर्थात जो न तो पूरी तरह से जागृत हो और न पूरी तरह से सुशुप्त स्वप्न देखना जैसा हो,स्वप्न चेतना कहलाती है. जैसे बात करते समय हम कब मक्खी को मार दिये पता ही नहीं चला और बात चलती ही रही. यह एक प्रकार की मूर्छा वाली चेतना है। जब हम पूरी तरह से बेहोश या निद्रा की अवस्था में होते है तब सुशुप्त चेतना होती है. तुरीय चेतनापूर्ण षांत, स्थिर और आनंदमय चित्त की स्थित होती है. इस स्तर में विचार, भाव आदि समस्त प्रकार के मनोभाव का तिरोभाव हो जाता है. तुरीय चेतना स्थूल जगत और सूक्ष्म जगत के मध्य एक कड़ी के रूप में स्थित होता है. पांचवा, तुरीयातीत चेतना जो वैश्विक चेतना है. इस चेतना में व्यक्तिगत चेतना का तिरोभाव होकर ब्रह्मांड की चेतना से मिल जाती है. तुरीयातीतचेतना में जब ब्रह्मांडीय शक्ति मिल जाती है तब वह ईश्वर तुल्य हो जाता है, ऐसी चेतना को भागवत चेतना कहते है. सातवी और अंतिम स्तर ब्राह्मी चेतना है जो तुरीयातीत और भागवत चेतना का एकीकृत और सर्वोच्य रूप है[13]। इसके बाद की चेतना ब्राह्मी चेतना के ही रूप में फैलती और संकुचित होती है फिर पुनरू विभाजित होकर जागृत चेतना के रूप में सक्रिय हो जाती है. इस प्रकार एक चक्र पूरा हो जाता है और यही प्रक्रिय निरंतर चलती रहती है।

इनमें से प्रथम तीन स्तर पूर्णत व्यवहारिक और सांसारिक चेतना है और अंतिम तीन स्तर पूर्णत आध्यात्मिक या सूक्ष्म चेतना है. चेतना का चौथा स्तर तुरीय चेतना भौतिक और आध्यात्मिक चेतना के मध्य है जो ज्ञान की दृश्टि से सबसे महत्वपूर्ण है।

चेतना स्वयं में स्पन्दात्मक है– जिसमें हलचल हो, गति हो, तरंग हो वही चेतना है और उसी को स्पंदन कहते है. स्पंदन अप्रिक्रियात्मक, अनैतिहासिक और विधि से रहित होता है[14]। स्पन्दात्मक ज्ञान दो प्रकार से कार्य करता है– निगम और आगम. निगम अर्थात परानुभविक जो वेद या वेद जैसी सरंचना के रूप में कार्य करती है. इसके तहत वेद को ज्ञान का प्रमाण मानकर इसकी तार्किक परिणित के अनुसार ज्ञान की विविध परम्पराओं को निर्मित करते हुए आगे बढ़ता है ठीक उसी प्रकार जैसे गणित. इसके विपरीत आगम तंत्र के रूप में विज्ञान की भांति आनुभविक है. लेकिन इसका अनुभव ऐन्द्रिक से लेकर चेतना के उच्चतम स्तर तक एकीकृत है. निगमागम की विधि स्पंदन विधि के ही दो रूप है उन्मेष और निमेश।

इस प्रकार चेतना, स्पंदन और भाषा सम्प्रक्त होकर उन्मेष और निमेष के रूप में ज्ञान और सृजन की प्रक्रिया अनंत काल तक चलती रहती है. किन्तु, अभी भी एक विधि के रूप में स्पंदन विधि का स्पश्ट चित्र नहीं उभरा है. तीन तत्व और दो प्रक्रिया तो समझ में आती है लेकिन सवाल यह है कि इसे कैसे लागू किया जाये? इसके लिये हमें ध्यान को समझना होगा.।

ध्यान शब्द की व्युत्पत्ति ध्यैचिन्तयाम धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है चिन्तन[15]. एक विषय में चिन्तन का स्थिर करना ध्यान है. ध्यान कोई तत्व नहीं है बल्कि प्रक्रिया है जो चेतना, स्पंदन और पदार्थ को निरंतर रूपांतरित करता रहता है. यह एक प्रकार की रासायनिक क्रिया है जिससे तीनों तत्व परस्पर बदलते रहते है. वास्तव में स्पंदन विधि ध्यान के बिना संभव नहीं. ध्यान ही चेतना को जागष्त कर स्पंदित करता है. ध्यान से ही उन्मेश और निमेष की प्रक्रिया चलती है. ध्यान ही ज्ञान और सृजन का आधार है. यदि ध्यान को ही स्पंदन विधि कहा जाये तो अतिष्योक्ति नहीं होगी क्योंकि ध्यान के बिना स्पंदन संपन्न ही नहीं होगी। ध्यान और स्पंदन समानार्थी है. सृजन की दृष्टि से प्रक्रिया को स्पंदन और ज्ञान की दृष्टि से उसी प्रक्रिया को ध्यान कहा जाता है. दोनों ही प्रक्रिया एक चक्र के समान अनंत काल तक घूमता रहता है. संक्षेप में, स्पंदन विधि ही ध्यान विधि है और ध्यान विधि ही स्पंदन विधि है।[16] यह इस बात पर निर्भर है की विधि को किस दृष्टि से देखा गया है और किस दृष्टि से इसे उपयोग में लाया गया है।

ध्यान के प्रति लोगो की भिन्न भिन्न दृष्टियाँ है कुछ मानते है कि ध्यान से मन की षांति, संवेदनशीलता की वृद्धि और बुद्धि प्रखर होती है, तो कुछ मानते है की इससे अष्ट सिद्धियाँ और समाधि मिलती है और कुछ मानते है कि ध्यान से हमें मुक्ति मिलती है. वास्तव में ध्यान से उक्त सभी चीजें तो मिलती ही है. निर्विकल्प समाधि तक पहुँचते–पहुँचते सब कुछ मिल ही जाता है और सार रूप में हम सत्य को भी जान ही लेते है किन्तु, अनंत की दृष्टिकोण से ज्ञान बोध और सृष्टि–सृजन हेतु ध्यान एक विधि के रूप में हमारे लिए उपयोगी भी हो सकता है इस पर शायद कभी किसी ने या तो ध्यान ही नहीं दिया या साधकों द्वारा इस बात को महत्व ही नहीं दिया गया है. यहाँ पर एक प्रश्न है कि मुक्ति के बाद भी ध्यान जारी रहता है किसलिए ? शिव, बुद्ध और महावीर कम से कम तीन व्यक्तियों की मूर्तियों को देख कर तो यही कहा जा सकता है और हमारी परंम्परा भी यही इंगित करती है. ये तीनो ही संसार से मुक्त और प्रज्ञावान व्यक्ति है फिर सदैव ध्यान मुद्रा में ही क्यों लीन रहते है ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि मुक्ति के बाद भी आसक्त (स्वेच्छा से) या अनासक्त होकर सृष्टि–सृजन और ज्ञान की अनंत धारा निरंतर चलती रहती है. इसका सबसे अच्छा प्रमाण शैव परम्परा में उन्मेश और निमेष की अवधारणा है, जो मुक्ति और संसार दोनों को एक ही सत्य के दो रूप मानते है[17]। यही बात बौद्ध परम्परा में प्रतीत्यसमुत्पाद[18] की अवधारणा प्रतिपादित करती है. जैन परम्परा में भी कुछ ऐसी ही बात कही गयी है. इसका अर्थ यह हुआ कि ध्यान भी आज की वैज्ञानिक विधि के समान किन्तु, भिन्न एक वैकल्पिक ज्ञान की विधि हो सकती है और सृजन तकनीक का साधन भी।

ध्यान की कई पद्धतियाँ प्रचलित है योग ध्यान, विपष्चना ध्यान, सूफी ध्यान आदि. ये सभी ध्यान की पद्धतियां प्राचीनकाल के सरल जीवन पद्धति और समाज के सहज स्वरूप के आधार पर विकसित हुई थी. किन्तु, आधुनिक समाज की जटिल जीवन पद्धति के आध ाार पर कुछ विचारकों ने नयी तकनीक जोड़कर इसे रुचिकर और सरल बनाने का भी प्रयास किया है जिससे लोग इसकी ओर आकर्शित हुए है और बहुतों को लाभ भी हुआ है जैसे जापान की झेन परम्परा, रूस के गुरजिएफ द्वारा विकसित ध्यान, ओषो का सक्रिय ध्यान, महेष योगी का भावातीत ध्यान, श्री रविषंकर जी का ष्वांस पर आधारित आर्ट ऑफ लिविंग ध्यान आदि।

ध्यान केवल व्यक्तिगत साधना नहीं है और न ही केवल व्यक्तिगत ज्ञान या मोक्ष तक सीमित है. इसे संस्थागत या सामूहिक रूप भी दिया जाना चाहिये और केवल सक्रिय जीवन से अलग कमरे के एक कोने में बैठकर किया जाने वाला ध्यान तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिये. इसे दैनिक जीवन के कार्यों के साथ जोड़कर देखने की जरूरत है जैसे की झेन परंपरा में पाया जाता है. इसके अतिरिक्त इसके विशिष्ट स्वरूप को ज्ञान के साधन के रूप में भी किया जा सकता है. स्पंदन विधि में इन दोनों प्रकार की अपेक्षायों की पूर्ति संभव है।

इस प्रकार ध्यान विधि चेतना, स्पंदन, भाशा और पदार्थ को एक इकाई में बदल कर ज्ञान का द्वार खोल देता है और स्पंदन दृष्टि हमें अनंत मार्ग में ले जाने के लिये प्रेरित करता है।

विज्ञान विधि संघठित, क्रमिक, प्रक्रियात्मक, विकासात्मक और ऐतिहासिक होता है। इस दृश्टि से मनुश्य एककोशीय जीव से होते हुए बहुकोषीय जीव तक की यात्रा का परिणाम है जिसमें मनुष्य के मस्त्रिक को प्रकृति का सबसे जटिल उत्पाद माना जाता है। मनुश्य का इतिहास और उसकी संस्कृति क्रमिक विकास का परिणाम है जिसकी निकटतम यात्रा पषु जगत से आरम्भ होकर आधुनिक मनुश्य तक पहुंची है।[19] आदिवासी समाज को सबसे प्राथमिक और अविकसित समाज माना गया है जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्रिया आदि या तो शून्य होता या बीजावस्था में होता है. अधिकाँश नृतत्वशास्त्री जैसे टेलर, मार्गन आदि आदिवासी समाज को इसी दृश्टिकोण से देखते है किन्तु, उनकी जीवन पद्धति को देखने पर पता चलता है कि उनमे से कई आदिवासी समाज कथित विकास में पीछे रहने की बावजूद उनमे सुविकसित समझ और सहज ज्ञान पाया जाता है जिसमे वे न केवल खुश है बल्कि उनमें आनंद का भाव भी पाया जाता है।[20] उनके इस दृष्टिकोण को स्पंदन विधि से समझा जा सकता है. इस विधि के तहत निमेश की दृष्टि से यदि उनकी जीवन पद्धति को हम समझे तो पायेंगे कि उनमें भी उन्मेया के तत्व मौजूद है. कथित विकासवादी नजरिया एक दृष्टिकोण मात्र है जिसे उन्मेष की दृष्टि से भी देखने की जरूरत है और इस दृष्टि से हमें विकास का एक विकल्प मिल जाता है। वास्तव में विकास की प्रक्रिया में भूमिका तो दोनो विधियों की होती है. विज्ञान पदार्थ को नित नये

ढंग से तकनीक के सहयोग से रचती है तो स्पंदन विधि में चेतना भाशा को ही तकनीक बनाकर नित नये—नये अर्थ प्रदान करती है या खोजती है। अर्थ के सृजन में स्वयं चेतना महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है. इस प्रकार विज्ञान और स्पंदन विधि यही दो विधि है जो ज्ञान की विधि के रूप में जाना जाता है। दोनों ही विधियाँ परस्पर जगह नहीं ले सकती है और न ही एक दूसरे के विकल्प है. किन्तु, ये परस्पर सम्बंधित है और इनके सम्बन्ध जहाँ मिलते है वह स्वयं मनुष्य और उसका समाज है. मनुष्य के द्वारा यदि किसी एक की उपेक्षा कर दी गयी तो वह तत्काल संकट से घिर जाता है. विज्ञान की उपेक्षा मनुष्य को दरिद्र और संकीर्ण बना देती है तो स्पंदन विधि की उपेक्षा से मनुष्य वास्तविक ज्ञान, सत्य, आनंद और न्याय से वंचित हो जाता है. इसलिए इस जगत में दोनों ही विधियों का समान रूप से अस्तित्वान होना चाहिए तभी मनुष्य सुखी, संपन्न, सर्वसमावेशी और वास्तिवक जीवन जी सकता है। ये दोनों ही विधियाँ विश्व के प्रत्येक समाज और संस्कृति में किसी न किसी रूप में सदैव प्रचलित रही है किन्तु, विज्ञान को जितनी प्रमुखता से पश्चिम ने लिया और जितना विकास उसने किया उतना संभवत किसी और देश और समाज ने नहीं किया है. इसके विपरीत स्पंदन विधि को जितनी ऊंचाई तक और विस्तारपूर्वक प्राचीन भारत ने विकसित किया है उतना किसी और देष ने नहीं किया. तब का प्राचीन भारत इसी विधि के कारण विश्व में ज्ञान के प्रमुख केंद्र के रूप में था। विज्ञान की विधि से तो सब परिचित है लेकिन स्पंदन विधि से हम अपरिचित है। स्पंदन विधि के अंतर्गत दो प्रकार के ध्यान की विधि है। उन्मेष ध्यान विधि और निमेष ध्यान विधि[21.] उन्मेश ध्यान विधि से विश्व का सृजन और निमेष ध्यान विधि से हमारे मन का क्षरण होते हुये अंततः स्वयं के स्वरूप का बोध होता है. इस प्रकार ज्ञान के सृजन में और उसकी प्राप्ति में क्रमशः उन्मेष और निमेष ध्यान पद्धति की आवश्यकता होती है। निमेश की प्रक्रिया में आदिवासी जीवन पद्धति को आदिवासी ध्यान के रूप में विकसित किया जाये तो हम न केवल उन्मेश अर्थात विकास को समझ सकते है बल्कि इसी आधार पर एक वैकल्पिक जीवन पद्दति भी दी जा सकती है।

आदिवासी चेतना और ध्यान (Indigenousness Consciousness and Meditation)

आदिवासी चेतना के दो अर्थ है प्रथम सामान्य अर्थ और द्वितीय, विशिष्ट अर्थ. सामान्य अर्थ से तात्पर्य ऐसे मनुष्य से है जिसे अपनी प्राथमिक और शुद्ध चेतना का बोध हो अर्थात जिसे आत्मज्ञान का बोध हो. इस दृष्टि से शिव, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, पैगम्बर मोहम्मद, ईशा मसीह, नानक, कबीर आदि प्रबुद्धजन आदिवासी चेतना से युक्त व्यक्ति है. इसके विपरीत विशिष्ट अर्थ में जनजातीय ऐसे लोगो का समूह है जो विकास की प्रक्रिया में किन्ही कारणों से छूट गये है और वे अभी भी अपने जीवकोपार्जन और जीवन हेतु आदिम काल के तकनीक जैसे शिकार करना और भोजन संग्रह अथवा आदिम कृषि, पशुपालन और हस्त शिल्प पर निर्भर है.यह बात उल्लेखनीय है कि मनुष्य जाति में शिव संभवतः पहले ऐसे आदिवासी है जिन्हें प्रथम बार आत्मबोध हुआ है और जिसकी सूचना उन्होंने ही पहली बार मनुष्य को योग्य ऋषियों के माध्यम से दिये है. यद्धपि यह अभी शोध का विषय है किन्तु, ऐसा विश्वास भी किया जा सकता है।

अंग्रेजी के ट्रायब[22] (Tribe) शब्द यूरोपीय साम्राज्यवादियों द्वारा विशेषकर अंग्रेजों द्वारा औपनिवेषिक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था जिसका आशय असभ्य होने या पिछड़े होने से था. इसके विपरीत इन्दिजीनिअस[23] (Indigenous) शब्द ज्यादा सकारात्मक शब्द है जिसे संयुक्तराष्ट्र संघ ने प्रयोग किया है जिसका आशय ऐसे समूह से जो किसी देष के या पृथ्वी के किसी भूमि में सर्वाधिक समय से किसी एक क्षेत्र में रह रहे है और उसी भूमि को अपनी मातृभूमि मानते हुये अपनी विशिष्ट जीवन पद्धति या संस्कृति के साथ जीवन जी रहें है।

आदिवासी समूह को देखने पर हमें उपर्युक्त दोनों ही लक्षण मिल जायेंगे. एक ओर उनके पास विशिष्ट संस्कृति है तो विज्ञान और विकासवाद की दृष्टि से वे पिछड़े भी दिखायी देते है. इन दोनों दृष्टियों का समाधान उन्मेष–निमेष दृष्टि से हो जाता है. वास्तव में आदिवासी जीवन पद्धति ध्यान का ही प्रतिरूप है. मूल चेतना से तादात्म्य बनाकर प्रकृति और समुदाय के साथ आत्मीय सम्बन्ध बनाकर जीना और सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना मानना आदिवासी चेतना का यह रूप विशिष्ट ध्यान ही है।

आदिवासी ध्यान

आदिवासी ध्यान से आशय ऐसी ध्यान पद्धति से है जिसमें आदिवासी जीवन मूल्य के तत्व समाहित हो. आदिवासियों में यद्यपि कई जीवन मूल्य है जिनसे उनकी सामान्य पहचान हो जाती है। समानता, सहअस्तित्व, सहजीवन, सामूहिकता, समीपता (प्रकृति के साथ), स्वायत्तता,श्रम और आनंद.जीवन के इन मूल्यों को ध्यान के साथ संयोजित करने पर ध्यान का स्वरूप व्यक्तिगत न होकर सामूहिक हो जाता है और तब यह ज्ञान की एक पद्धति बन जाती है। प्रक्रिया की दृष्टि से एक निश्चित जगह बैठकर ध्यान करने की वजाय गतिशील होकर प्रकृति के तत्वों और सामूहिकता का उपयोग करते हुए ज्ञान का सृजन किया जा सकता है जैसे पहाड़, नदी, घाटी, जंगल, पशु, पक्षी मनुष्य आदि के संयोजित होने पर ज्ञान और आनंद दोनों की वृद्धि होती है. हालाँकि, आनंद तो ध्यान में अंतर्निहित होती ही है किन्तु, आनंद को गीत और संगीत से बढाया जा सकता है. वैसे भी आदिवासियों का सम्पूर्ण जीवन गीत और संगीत के उत्सवों से भरा रहता है. अतः गीत और संगीत का समावेष भी ध्यान में होना चाहिए. ध्यान का यह स्वरूप केवल और केवल निमेष ध्यान में ही लागू होगा। इस तरह के ध्यान को विकसित करने के लिए गुरजिएफ, सूफी, झेन और भैरव विज्ञान में बताये गये विभिन्न ध्यान तकनीक का उपयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार स्पंदन विधि और आदिवासी ध्यान से एक वैकल्पिक जीवन पद्धति, विश्व व्यवस्था और संस्कृति का निर्माण किया जा सकता है. इस हेतु हमें सर्वप्रथम आदिवासी ध्यान की मदद सेशिक्षा के क्षेत्र से आरम्भ करना होगा, क्योंकि शिक्षा ही वह क्षेत्र है जहाँ से मनुष्य और समाज गढ़ा जाता है. उसके बाद स्वास्थ्य, आधारभूत संरचना,व्यापार और कृषि, विकास और पयार्वरण, प्रशासन, प्रबंध और कानून, राजनीति और सुरक्षा और अंत में शांति और सुरक्षा और अन्य क्षेत्रों में कार्य किये जा सकेंगे. इस सम्बन्ध में अध्ययन और

अनुसन्धान इन सभी कार्यक्रमों के आधार होंगे और दृष्टि होगी स्पंदन विधि की शिक्षा कैसी होनी चाहिए? शिक्षा से ज्ञान तो मिले ही उसमें कुशलता, आर्थिक उत्पादन में वृद्धि, रोजगारपरकता और जीवन के साथ जीवंत सम्बन्ध हो जिससे समाज में रोजगार और उत्पादन में वृद्धि के साथ साथ विशिष्ट कार्य की कुषलता और जीवन में सुख, शांति, आनंद, नैतिकता और सदभाव का स्थान भी हो। इतना ही नहीं शिक्षा गर्भावस्था से लेकर जीवन पर्यन्त मृत्यु तक औपचारिक और अनौपचारिक दोनों रूप में सतत चलनी चाहिये या कम से कम एक विकल्प के रूप में सदैव उपलब्ध रहना चाहिये। आदिवासी जीवन मूल्य के आधार पर स्पंदन विधि से सर्वप्रथम पायलट प्रोजेक्ट के रूप में आदिवासियों में शिक्षा के इस नये रूप को एकीकृत स्पंदनात्मक शिक्षाकार्यक्रम (Integrated Throb Education Program) के नाम से संचालित किया जायेगा जिसके तहत स्पन्दात्मक दृष्टि से षिक्षा को कौषल, उत्पादन, रोजगार और जीवन से जोड़ते हुए एक वैकल्पिक व्यवस्था दी जायेगी. सर्वप्रथम सभी आदिवासी बच्चों को प्राथमिक कक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक सतत ध्यान का अभ्यास कराया जायेगा. पाठ्यक्रम में यह अनिवार्य होगा. इसके साथ ही अनौपचारिक रूप से देश की सभी आदिवासियों को ध्यान का प्रशिक्षण दिया जायेगा जिससे की वो अपनी संस्कृति के जड़ों के साथजुड़े रहें. इसके पश्चात अथवा इसके समानांतर जीवन उपयोगी संबंधी कौशल प्रशिक्षण दिया जायेगा जो उनके सहज वृत्ति और उनकी संस्कृति से सम्बन्धित होगा जिसे उत्पादन और रोजगार से इस ढंग से जोड़ा जायेगा जिससे उनके जीवन में आत्मतुष्टि और आनंद का भाव बना रहे. इसी प्रक्रिया से विकास का वैकल्पिक मॉडल भी धीरे धीरे विकसित होकर हमारे समक्ष आ जायेगा।

संदर्भ

1 ज्ञानमीमांसा और तत्वमीमांसाः केदारनाथ तिवारी, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, वर्ष 2004,पृष्ठ सं. 55—56

2 वही,पृष्ठ सं 56—57

3 वही,पृष्ठ सं 57—58

4 स्पंदकारिका ऑफ भट्ट कल्लटाचायरू डॉ. श्यामा कांता द्विवेदी, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी,वर्ष 2014,पृष्ठ सं. 32

5 फेनोमेनोलोजी एंड इंडियन फिलोसोफीरू (संपा.)डी. पी. चट्टोपाध्याय, लेस्टर एम्ब्री एंड जे.एन.मोहंती, इंडियन कौन्सिल ऑफ फिलोसोफिकल रिसर्च, पब्लिकेषन नई दिल्ली, वर्श 1992, पृष्ठ सं. 102

6 श्रीतन्त्रालोकरू प्रथम भाग (संपा. और व्याख्या)प्रो. राधेष्याम चतुर्वेदी, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी,वर्ष 2012, पृष्ठ सं. 56

7 फिलोसोफी ऑफ लैंग्वेजः प्रो. प्रसाद मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेषन, नई दिल्ली, वर्ष 1998, पृष्ठ सं. 88—90

8 वही,पृष्ठ सं. 90

9 वही,पृष्ठ सं. 96

10 स्पंदकारिका ऑफ भट्ट कल्लटाचार्यः डॉ. श्यामा कांता द्विवेदी, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी,वर्ष 2014,पृष्ठ सं. 120

11 श्री तन्त्रालोकः प्रथम भाग (संपा. और व्याख्या) प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी,वर्ष 2012,पृष्ठ सं. 102

12 वही,पृष्ठ सं. 105

13 वही,पृष्ठ सं. 107

14 स्पंदकारिका ऑफ भट्ट कल्लटाचार्यः (संपा.)डॉ. श्यामा कांता द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी,वर्श 2014,पृठ सं. 201

15 शिवसूत्र सिद्धांत और साधनाः (संपा.)डॉ. श्यामा कांता द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, वर्श 2014,पृठ सं. 207

16 वही, पृष्ठ सं. 209

17 स्पंदकारिका ऑफ भट्ट कल्लटाचायरू (संपा.)डॉ. ष्यामा कांता द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी,वर्श 2014,पृठ सं. 257

18 भारतीय दर्शनरू बलदेव उपाध्याय,मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, वर्ष 2000, पृष्ठ सं. 135–136

19 एंथ्रोपोलोजिकल थ्योरीजरू इंटरनेट, विकिपीडिया

20 वही

21 स्पंदकारिका ऑफ भट्ट कल्लटाचायरू (संपा.)डॉ. श्यामा कांता द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी,वर्ष 2014,पृठ सं. 302

22 एंथ्रोपोलोजिकल थ्योरीजः इंटरनेट, विकिपीडिया

23 इन्डिजीनिअस प्यूपिल्स पर संयुक्तराष्ट्र का घोषणापत्र

4

अध्यात्म रामायण में भक्ति योग का विवेचन

डॉ. ऊधमसिंह

अध्यात्म रामायण बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अध्यात्म रामायण का वर्णन ब्रह्माण्डपुराण के उत्तरखण्ड के अन्तर्गत मिलता है। यह परम पवित्र आख्यान स्वयं भगवान् शिव ने आदिशक्ति पार्वती जी को सुनाया है। इस ग्रन्थ की रचना स्वयं वेदव्यास जी ने की है। इस पुनीत ग्रन्थ में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, उपासना एवं नीति और सदाचार का वर्णन किया गया है। विविध विषयों के वर्णन होने के बाद भी इसमें अध्यात्म तत्व का विवेचन ही प्रधनता लिए हुए है। इसीलिए यह ग्रन्थ अध्यात्म रामायण कहलाता है।

आध्यात्म रामायण और भक्तियोग

भक्ति शब्द **भज्–सेवायाम्** धतु में **क्तिन्** प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ सेवा, पूजा और उपासना से लगाया जाता है। भक्ति उस भावना का चरमोत्कर्श है जिसमें उपासक अपने उपास्य ब्रह्म के भाव में भावित होकर सर्वतो भावेन तद्रूपता को ही अनुभव करता है। नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है **"भक्तिनाम प्रेम विशेषः"** अर्थात् भगवान के प्रति विशेष प्रेम का नाम ही भक्ति है।

अध्यात्म रामायण में भक्ति को मुक्ति का हेतु माना गया है। श्री हनुमान जी जब सीता माता का पता लगाने लंका गये थे तब लंका की सभा में उन्होंने रावण को उपदेश देते समय भक्ति की महत्ता बताते हुए कहा था कि "भगवान विष्णु की भक्ति बुद्धि को अत्यन्त शुद्ध करने वाली है, उसी से अत्यन्त निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। आत्मज्ञान से शुद्ध आत्मतत्व का अनुभव होता है और उससे दृढ़ बोध हो जाने से मनुष्य परमपद प्राप्त करता है"। आध्यात्म रामायण भक्तिपरक ग्रन्थ है इसमें भक्तिरस घुला हुआ है। अवतार परम्परा में श्री राम को भगवान विश्णु का अवतार माना जाता है। आध्यात्म रामायण प्रभु श्री राम की भक्ति से परिपूर्ण ग्रन्थ है। गौतम ऋषि ने अपनी पत्नी अहिल्या को दिये शाप के उन्मूलन के उपाय के रूप में श्रीराम की भक्ति करने का उपदेश दिया था। आध्यात्म रामायण में श्रीराम निषाद्राज की भक्ति, श्रीराम और भरत की भक्ति एवं अन्यान्य स्थानों पर भक्ति का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीराम ने माता शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया था, उसका वर्णन इस ग्रन्थ में विस्तार से किया गया है। इस ग्रन्थ में परा और अपरा दोनों प्रकार की भक्ति का उल्लेख किया गया है।

माया के आवरण को क्षीण करती है भक्ति

अध्यात्म रामायण में कहा गया है कि मनुष्य जब तक माया से आवृत्त रहता है तब तक वह परमात्मा को नहीं जान सकता जब तक विद्या की विरोधिनी अविद्या को दूर करने का विचार नहीं किया जाता, तभी तक अविद्या रहती है[1]। यह मनुष्य जीव जब तक देह, मन, प्राण और बुद्धि आदि में अभिमान करता है, तभी तक कर्तव्य, भोक्तृत्व और सुख–दुःखाादि को भोगता है[2]। इन सुख–दुःखों से पार होने के लिए भक्ति का सहारा लेना चाहिए है।

संसार सागर से पार जाने के लिए भक्ति मार्ग के अनुगामी भक्तों के संग रहकर ही परमात्म तत्व की अनुभूति की जा सकती है। भगवान की भक्ति में लगे हुए भक्तों के संग के बिना इस संसार के सुख–दुःखादि से पार नहीं हुआ जा सकता है[3]। माया रूपी इस संसार से मुक्ति पाने के लिए भक्ति ही एक मात्र उपाय है। अध्यात्म रामायण कहती है कि

---

[1]यावन्मायावृता लोकास्तावत्त्वां न विजानते। अविचारितसिद्धैशाविद्या विद्याविरोधिनी।। 7/33 बालकाण्ड
[2]अविद्याकष्तदेहादिसंघाते प्रतिबिम्बिता। चिच्छक्तिर्जीवलोष्श्स्मिन् जीव इत्यभिधीयते।। 7/34 बालकाण्ड
[3]यावत्त्वत्पादभक्तानां संगसौख्यं न विन्दति। तावत्संसारदुःखोघान्न निवर्तेन्नरः सदा।। 7/38 बालकाण्ड

भक्तों के संगत से प्राप्त हुई भक्ति के द्वारा जब परमात्मा की उपासना की जाती है तो यह माया धीरे–धीरे क्षीण अथवा समाप्त होने लगती है[4]।

भक्त के प्रकार– भक्ति और भक्त के गुणानुसार तीन भेद अध्यात्म रामायण में बताए गए हैं– तामसिक, राजसिक व सात्विक भक्त।

तामसिक भक्त– जो पुरूष हिंसा, दम्भ या मात्सर्य के उद्देश्य से भक्ति करता है तथा जो भेददृश्टि वाला और क्रोधी होता है वह तामस भक्त कहलाता है[5]।

राजसिक भक्त– जो भक्त फल की इच्छावाला, भोगों को चाहनेवाला तथा धन और यष की कामनावाला होता है और भेद बुद्धि से अर्चा आदि में पूजा करता है, वह राजसिक भक्त होता है[6]।

सात्विक भक्त– जो पुरुष परमात्मा को अर्पण किये हुए कर्म–सम्पादन करने के लिए भेद बुद्धि से कर्म करता है वह सात्विक भक्त है[7]।

भक्त की चाहत मिले भक्तों का संग

भक्त भगवान के साथ ऐक्य होना चाहता है। धनुष भंग के समय भगवान परशुराम ने भगवान श्रीराम की स्तुति करते हुए कहा है कि जब व्यक्ति आपके भक्तों के संग से मिली भक्ति के द्वारा उपासना करता है तो भगवान की माया धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है। भक्त भगवान से एक ही प्रार्थना करता है कि मैं यही चाहता हूं कि जन्म–जन्मान्तरों में आपके चरण–कमलों में मेरी भक्ति हो और मुझे आपके भक्तों का संग मिले, क्योंकि इन्हीं दोनों साधनों से अविद्या का नाश होता है[8]।

भक्त को भगवान का आश्वासन

अध्यात्म रामायण में भगवान भक्त को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि जो मेरे शांत स्वभाव, विरक्त और योगनिष्ठ भक्त हैं, उनके हृदय में मैं सीता सहित सदैव रहता हूँ[9]।

---

[4]तत्ससंगलब्ध्या भक्त्या यदा त्वां समुपासते। तदा माया षनैर्याति तानवं प्रतिपद्यते।। 7/39 बालकाण्ड

[5]यस्तु हिंसां समुद्दिष्य दम्भं मात्सर्यमेव वा। भेददष्टिष्च संरम्भी भक्तो मे तामसः स्मषृतः।। 7/61 उत्तरकाण्ड

[6]पफलाभिसन्धिर्भोगार्थी धनकामो यशस्तथा। अर्चादौ भेदबुद्ध्या मां पूजयेत्स तु राजसः।। 7/62 उत्तरकाण्ड

[7]परस्मिन्नर्शितं यस्तु कर्म निर्हरणाय वा। कर्तव्यमिति वा कुर्याद्भेबुद्ध्या स सात्त्विकः।। 7/63 उत्तरकाण्ड

[8]अतस्त्वत्पादयुगले भक्तिर्मे जन्मजन्मनि। स्यात्त्वद्भक्तिमतां संगो॰विद्या याभ्यां विनृयति।। 7/42 बालकाण्ड

[9]मद्भक्तानां प्रशान्तानां योगिनां वीतरागिणाम्। हृदये सीतया नित्यं वसाम्यत्रा न संशय।। 3/39 युद्धकाण्ड

कैकेयी को आश्वासन देते हुए भगवान राम कहते हैं कि जो पुरुष जिस प्रकार मेरा भजन करता है मैं भी वैसे ही उसका ध्यान रखता हूं[10]।

भक्ति है ज्ञानकी जननी

आपके चरण–कमलों की भक्ति से युक्त पुरुषों को ही क्रमशः ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः जो पुरुष आपकी भक्ति से युक्त हैं, वे ही वास्तव में मुक्ति के पात्र हैं[11]। हनुमान जी कहते हैं कि भक्ति ही ज्ञान की जननी और मोक्ष देने वाली है[12]।

भक्तिमार्ग में आने वाले विघ्न–

भक्ति करने वाले भक्त के जीवन में अवरोध उत्पन्न होते हैं। आध्यात्म रामायण में इन अवरोधों को विघ्न के रूप में कहा गया है। भक्ति मार्ग में काम, क्रोध आदि[13] सभी विघ्न के रूप में भक्त के सामने उपस्थित होते रहते हैं। इन अवरोधों को पार करना भक्त के लिए आवष्यक है। इनको दूर किये बिना परमात्मा की भक्ति मिलना कठिन हो जाती है। लेकिन भक्त की चाहत भगवान के दर्शन पाने की हो तो ये सभी विघ्न अपने आप समाप्त हो जाते हैं।

भक्तों को मिलते हैं भगवान के दर्शन

भक्त की कोई इच्छा होती है तो वह केवल एक ही भगवान के दर्शन प्राप्त करना। भक्त के लिए भगवान की आराधना का सुफल है, उनका दर्शन मिलना। इस सम्बन्ध में आध्यात्म रामायण में कहा गया है कि भगवान किसी भी देव, दानव या नाग द्वारा देखे नहीं जा सकते, जिस पर उनकी प्रसन्नता होती है, वही उनका दर्शन कर पाता है।[14] आगे कहा गया है कि वे यज्ञ, तप, दान, अध्ययन अथवा और किसी उपाय से नहीं देखे जा सकते।[15]

भक्ति के साधन–

भगवान श्री रामचन्द्र जी ने माता शबरी को नवधा भक्ति प्रदान की। रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने माता शबरी को प्रदान की गई भक्ति का वर्णन किया है–

---

[10]नास्ति में कल्पकस्येव भजतो॰नुभजाम्यहम्। 9/66 अयोध्याकाण्ड

[11]त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात्। तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि।। 29/1, अयोध्याकाण्ड

[12]भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्ष प्रदायिनी। 8/67 युद्धकाण्ड

[13]कामक्रोधदयस्तत्रा बहवः परिपन्थिनः। 8/45 युद्धकाण्ड

[14]द्रश्टुं न षक्यते कैश्चिद्देवदानवपन्नगैः। यस्य प्रसादं कुरुते स चैनं द्रष्टुमुपायैरितरैरपि।। 51/3 उत्तरकाण्ड

[15]न च यज्ञतपोभिर्वा न दानाध्ययनादिभिः। शक्यते भगवान्द्रष्टुमुपायैरितरैरपि।। 52/3 उत्तरकाण्ड

प्रथमभगति संतन्ह कर संगा। दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।
गुरुपद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिश्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
सातव सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक कर लेखा।।
आठव जथालाभ संतोशा। सपनेहूँ नहिं देखइ परदोशा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरश न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरफष सचराचर कोई।।
रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड दोहा 34/4, दोहा 35/1–3

नवधा भक्ति के नौ साधन निम्न प्रकार हैं– सत्संग प्रथम साधन है[16]। दूसरा साधन मेरे जन्म–कर्मों की लीला–कथा का कीर्तन करना है, मेरे गुणों की चर्चा करना यह तीसरा उपाय है और मेरे वाक्यों की व्याख्या करना भक्ति का चौथा साधन है[17]। अपने गुरुदेव की निष्कपट भाव से भगवद्बुद्धि से सेवा करना पांचवा साधन है[18], पवित्र स्वभाव, यम–नियमादि का पालन और मेरी पूजा में सदा प्रेम होना छटा साधन है तथा मेरे मंत्र की सांगोपांग उपासना करना सातवां साधन कहा जाता है[19]। भगवान श्री रामचन्द्र जी ने आठवें साधन के रूप में मेरे भक्तों की मुझसे भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियों में मेरी भावना करना, बाह्य पदार्थों में वैराग्य करना और षम–दमादि से युक्त होना बताया है[20]। तत्व का विचार करना नवां साधन है[21]।

[16]सतां संगतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मष्तम्। 10/22 अरण्यकाण्ड
[17]द्वितीयं मत्कथालापस्तष्तीयं मद्गुणेरणम्। व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत्।। 10/23 अरण्यकाण्ड
[18]आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्ध्यामायया सदा। पंचमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च।। 10/24 अरण्यकाण्ड
[19]निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम्। मम मन्त्रोपासकत्वं सांगम् सप्तमुच्यते।। 10/25 अरण्यकाण्ड
[20]मद्भक्तेष्वाधिका पूजा सर्वभूतेशु मन्मतिः। बाह्यार्थेशु विरागित्वं शमादिसहितं तथा ।। 10/26 अरण्यकाण्ड
[21]नवमं तत्वविचारो मम भामिनी। 10/27 अरण्यकाण्ड

नवधाभक्ति से मिलता है मोक्ष

भक्तियोग को योग की सभी पद्धतियों में अत्यन्त सरल माना है। भक्ति का सहारा लेकर कोई भी इस संसार सागर से पार जा सकता है। भक्ति की महिमा गाने वाले अद्वैतवादी आचार्य शंकर ने भी भक्ति साधना का महत्व प्रकट करते हुए कहा है कि–

मोक्षकारणसमग्रङ्कां भक्तिरेव गरीयसी। स्वस्वरूपानुसन्धनं भक्तिरित्यभिधीयते।। स्वात्मत्वानुसन्धनं भक्तिरित्यपरे जगुः। विवेकचूडामणि, 32

अर्थात् भगवान श्री रामचन्द्र जी शबरी से कहते हैं कि हे भामिनी! नवधा भक्ति के इन साधनों में से कोई एक भी साधन जिस किसी भी व्यक्ति में होते हैं, वह स्त्री, पुरुश अथवा पशु, पक्षी आदि कोई भी क्यों न हो, उसमें प्रेम लक्षणा भक्ति का आविर्भाव हो ही जाता है[22]। भक्ति के उत्पन्न होने मात्रा से मेरे स्वरूप का अनुभव हो जाता है और निस्सन्देह उस भक्त की उसी जन्म में मुक्ति हो जाती है, इससे यह प्रमाणित होता है कि मोक्ष का कारण भक्ति ही है।

भक्तियोग में मुक्ति भक्त की अंतिम इच्छा होती है। मुक्ति भी भक्त की श्रद्धा के अनुरूप ही प्राप्त होती है। वह जिस रूप में भगवान की भक्ति करता है, उसी रूप में वह उसे प्राप्त होते हैं। मुक्ति के चार प्रकारों का उल्लेख अध्यात्म रामायण में मिलता है। भगवान श्री रामचन्द्र जी ने अपनी माता कौशल्या को भक्ति के द्वारा प्राप्त होने वाली चार प्रकार की मुक्ति का वर्णन किया है। भगवान रामचन्द्र जी कहते हैं कि मेरे प्रति जो निष्काम और अखण्ड भक्ति उत्पन्न होती है वह साधक को सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य चार प्रकार की मुक्ति प्रदान करती है[23]।

[22]स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा। भक्तिः संजायते प्रेमलक्षणा शुभ लक्षणे।। 10/28 अरण्यकाण्ड

[23]सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा। ददात्यपि न गशभक्ता मत्सेवनं विना।। 7/66 उत्तरकाण्ड

5

प्राचीन साहित्य में खानपान और योग

डॉ. मोहन लाल चढ़ार

इस सृष्टि में व्यक्ति का प्रथम सुख निरोगी काया है। उसके पश्चात सभी भौतिक सुखों की कल्पना की गई है। अगर व्यक्ति स्वास्थ्य है तब उसे ध्यान, प्रणायाम, योग, साधना में पूर्णता पाने में असानी होगी। महार्षि चरक के अनुसार धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यमं। मूलमुत्तमम्।[1] अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मुल अधार स्वास्थ्य ही है। शरीर व मन को स्वास्थ्य रखने के लिए वात पित्त व कफ को सम रखना व शरीर के प्रकृति के अनुसार खानपान पर ध्यान देकर भोजन को ग्रहण करना उत्तम जीवन जीने का सरल तरीका है। स्वास्थ वक्ति के तीन अधार स्तम्भ विद्धानो स्वीकार किये है। आहार, निद्रा व व्रह्मचर्य। उत्तम स्वास्थ्य के लिए युक्ति संगत खान पान रखना महत्वपूर्ण है। हमारे वेदो, उपनिषदों व अन्य सभी प्राचीन ग्रन्थों में आहार को ही जीवन कहा गया है। अन्नं वै प्राणाः अर्थात मानव जीवन में आहार वास्तविक रुप में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। आहार का प्रभाव केवल शरीर पर नही जबकि मन पर व्यापक रुप में असरकारक होता है। खान पान से हमारा शरीर व इन्द्रियॉ पुष्ट होती है। प्राण शक्तिशली बनते है। खान पान स्वाद को दृष्टि में न रख कर स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए करना चाहिए। हमको भोजन के लिए नही जबकि जीवन जीने के लिए भोजन लेना चाहिए। युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्रावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[2] अर्थात जिस व्यक्ति का आहार, विहार, विचार एवं व्यवहार सन्तुलित तथा संयमित है। जिसका मन व कर्म पवित्र है, जिसका शयन व जागरण नियमित है, वही सही योगी है। यथा च खाद्यते ह्यान्नं तथा सम्पद्यते मनः। यथा च पीयते वारि तथा निर्गद्यते वचः।। अहार से मनुष्य के शरीर का निर्माण होता है। अहार का शरीर पर ही नही, मन पर भी पूरा प्रभाव पड़ता है। इसी लिए हमारे विद्धान ऋषियों ने कहा है कि जैसा खाओगे अन्न वैसा बनेगा मन।। जैसा पीयोगे पानी वैसे बोलोगे वाणी।। अर्थात जिस भाव से अन्न या भोजन बनाया व ग्रहण किया जायेगा। वैसा व्यक्ति का मन व शरीर बनेगा। पानी में ईश्वर

का अंश जानकर पानी में प्राणी का जीवन मानकर पाने से सुमधुर वाणी व हितकर वाणी बोली जायेगी। क्रिया योग के महान साधक परमहंस हरिहरानंन्द के अनुसार समस्त कर्मों मे ईश्वर को कर्ता मानकर व्यक्ति को कर्म करना चाहिए। यदि आप परम चेतना परम ब्रह्म को प्रत्येक कर्म में देखते व अनुभव करते है। यह स्वीकार करते है कि ईश्वर की शक्ति मुख्य कर्ता है। तब उक्त कथन जैसा अन्न वैसा मन, जैसा पानी वैसी बानी।। को सार्थ किया जा सकता है।[3] आहारशुद्धों सत्त्वशुद्धौं सत्त्वशुद्धों ध्रुवा स्मषतिः।। स्मषतिलब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।[4] अर्थात आहार शुद्धता से शरीर में सभी तत्वों की शुद्धी होती है और तत्वो की शुद्धी से समृति ठीक होती है एवं स्मृति प्राप्त होने से सभी ग्रन्थों का ज्ञान व मोक्ष की प्राप्ति होती है। योग और खानपान एक सिक्के के दो पहलू है। योग करने वाले व्यक्तियों के खानपान में के सन्दर्भ में प्राचीन काल से अनेक प्रमाण देखने को मिलते है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा में प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में पानी और भोजन के नियम प्राचीन काल से अनेक ग्रन्थों जैसे वैदिक साहित्य, कौटिल्य के अर्थशास्त्र पंतजली के महाभाष्य, जातक कथाओं, जैन ग्रन्थों,बौद्ध ग्रन्थों, पुराणों, रामायण, महाभारत, वात्सायन का कामसूत्र, चरक संहिता में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। पौराणिक अख्यानों में अनेक साधको ने केवल वायु का सेवन करके, जल का सेवन करके वन्सस्पति का सेवन करके दूध का सेवन करके योग साधना की थी। योग साधकों के लिए शाकाहारी एवं शुद्धता से बना हुआ भोजन लेना चाहिए। भोजन में समय काल का ध्यान रखने की अन्यन्त आवश्यकता प्राचीन ग्रन्थों में बताई गयी है। जितना महत्व भोजन का है उससे अधिक महत्व पानी का है। पानी कितनी मात्रा में और कब कब ग्रहण करना चाहिए। पानी से और भी ज्यादा अधिक महत्वपूर्ण वायु सेवन का है। वायु के सेवन के साथ शरीर में वायु के के आवागमन का आभास करना व उसका दर्शन करना अधिक उपयोगी बताया गया है। अनेक प्राचीन ग्रन्थों में वायु को ही प्राण कहा गया है। सूर्य के ताप का सेवन योग शास्त्र में अधिक उपयोगी माना गया है। इसके अतिरिक्त योग साधकों व सामान्य व्यक्तियों को किस समय किस वस्तु के साथ क्या खाना चाहिए इसका भी ग्रन्थों में काफी उल्लेख किया गया है। भोजन की मात्रा,समय व प्रकार क्या होने चाहिए इसका विस्तार से विवरण ग्रन्थों में मिलता है।

सन्तुलित भोजन की चर्चा अनेक ग्रन्थों में मिलती है। इसके साथ साथ सन्तुलित भोजन की जानकारी भी हमें अनेक प्राचीन साहित्य चरक संहित, सुश्रुत संहित व वाग्भटट् संहिता में विशेष रुप से मिलती है। किस–किस भोजन योग्य वस्तु को एक साथ खाना चाहिए और किस–किस को नहीं। इस बारे में आयुर्वेद में काफी जानकारी दी गई है। हम खाने में एक साथ कई चीजें खाना पसंद करते हैं। लेकिन एक ही वक्त के खाने में कुछ चीजें एक साथ खाना कई बार फायदे की बजाय नुकसानदेह हो सकता है। ऐसे में जरूरी है, यह जानना कि अच्छा भोजन क्या है और खराब भोजन क्या है। आयुर्वेद में अच्छा खाना उसे कहा जाता है, जिसमें घी हो, हल्का और आसानी से पचने वाला हो और थोड़ा गर्म हो। इस तरह का खाना पाचन बढ़ाता है, पेट साफ रखता है, शरीर का पोषण करता है

और आसानी से पच जाता है। ऐसा खाना खाने में रुचि भी बढ़ाती है। इसके विपरीत भोजन बहुत ठंडा और गर्म, अधिक मीठा और नमकीन, हल्का और भारी लेने से शरीर के पाचन तन्त्र पद बुरा असर पडता है। ऐसी चीजों को प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थों में में विरुद्ध आहार कहा गया है।अगर विरुद्ध आहार लिया तो सबसे पहले पोषण पर असर पड़ेगा। आधुनिक समय में इन चीजों पर कोई चिकित्सा विज्ञानी या आम व्यक्ति इन बातो पर ध्यान नही देता है। किन्तु योग में सन्तुलित भोजन लेना ही अहम है क्योंकि भोजन उदर में जाने के बाद कार्बोहाइड्रेट, फैट और शुगर में बदलता है। ऐसे में योग व ध्यान में सुखद आन्नद मिलता है। आयुर्वेद के मुताबिक कुछ भोजन की वस्तुओं को साथ नहीं खाना चाहिए। जो अग्र प्रकार है।

दूध और दही दोनों का स्वाद अलग होता है। दही और दूध दोनों को संयोजित करने से दूध खराब हो जाता है। इस प्रकार का भोजन एसिडिटी बढ़ता है और गैस, अपच व उलटी हो सकती है। इसी तरह दूध के साथ अगर संतरे का जूस लेंगे तो भी पेट में गैस बनेगी। अगर दोनों को खाना ही है तो दोनों के बीच दो घंटे का अन्तर होना चाहिए। दूध में खनिज और विटामिंस के अलावा लैक्टोस शुगर और प्रोटीन होते हैं। दूध एक एनिमल प्रोटीन है और उसके साथ ज्यादा कोई अन्य भोजन की वस्तुऍ संयोजित करेगे तो गलत परिणाम हो सकते हैं। दूध में नमक मिलने से मिल्क प्रोटींस जम जाते हैं और पोषण कम हो जाता है। अगर लंबे समय तक ऐसा किया जाए तो स्किन की बीमारियां हो सकती हैं। आयुर्वेद के मुताबिक उलटे गुणों का भोजन लंबे वक्त तक ज्यादा मात्रा में साथ खाए जाएं तो नुकसान पहुंचाते हैं। सोते समय गर्म दूध पीना लाभदायक होता हैं। आयुर्वेद के मुताबिक नींद शरीर के कफ दोश से प्रभावित होती है। दूध अपने भारीपन, मिठास और ठंडे मिजाज के कारण कफ प्रवृत्ति को बढ़ाकर नींद लाने में सहायक होता है। मॉडर्न साइंस में भी माना जाता है कि दूध नींद लाने में मददगार होता है। इससे सेरोटोनिन हॉर्मोन भी निकलता है, जो दिमाग को शांत करने में मदद करता है। वैसे, दूध अपने आप में पूरा आहार है, जिसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और कैल्शियम होते हैं। इसे अकेले पीना ही बेहतर है। किन्तु रात में ठण्डा दूध पीने से पेट में गैस बनती है। इसलिए दूध गर्म करके पीना चाहिए और गाय या बकरी का दूध हो तो सर्वोत्तम हैं। भैस का दूध गैस कब्ज बनाता है; वैसे दूध को उबालकर पीना, खीर बनाकर या दलिया में मिलाकर लेना योग साधको के लिए अधिक फायदेमंद है। बहुत ठंडे या गर्म दूध की बजाय गुनगुना या कमरे के तापमान के बराबर दूध पीना बेहतर है। सर्जरी या बुखार खासी व जुकाम के समय गर्म दूध में सिकी हल्दी डालकर पीने से दूध व हल्दी में मौजूद प्रोटीन शरीर को जल्दी स्वस्थ्य करने में मदद करते हैं। दूध दिन भर में कभी भी ले सकते हैं। सोने से कम–से–कम दो घंटे पहले लें। दूध और रात के भोजन में कम से कम एक घंटे का अंतर रखें। छाछ भोजन पचाने में उत्तम है। भोजन के साथ इसे लेने से पाचन सुनियोजित होता है और शरीर को पोषण अधिक मिलता है। यह खुद भी आसानी से पच जाता है। इसमें अगर एक चुटकी काली मिर्च, जीरा और सेंधा नमक मिला लिया जाए तो और अच्छा है। इसमें अच्छे बैक्टीरिया भी होते हैं, जो शरीर के लिए

फायदेमंद होते हैं। मीठी लस्सी पीने से फालतू कैलोरी मिलती हैं, इसलिए उससे बचना चाहिए। छाछ भोजन के बाद में लेना बेहतर माना जाता है। रात के भोजन के बाद छाछ पीना ठीक नही है। सुबह और दोपहर के समय छाछ ज्यादा फायदेमंद होता है।[5]

दही और फल एक साथ नही लेना चाहिए क्योकि फलों में अलग एंजाइम होते हैं और दही में अलग। इस कारण वे पच नहीं पाते, इसलिए दोनों को साथ लेने की सलाह नहीं दी जाती। फल से बना रायता कभी कभी लिया जा सकता हैं, लेकिन बार–बार इसे खाने से बचना चाहिए। दूध के साथ फल लेते हैं तो दूध के अंदर का कैल्शियम फलों के कई एंजाइम्स को खुद में समेट लेता है और उनका पोषण शरीर को नहीं मिल पाता है। संतरा और अनन्नास जैसे खट्टे फल तो दूध के साथ बिल्कुल नहीं लेने चाहिए। व्रत वगैरह में बहुत से लोग केला और दूध साथ लेते हैं, जो कि सही नहीं है। केला कफ बढ़ाता है और दूध भी कफ बढ़ाता है। दोनों को साथ खाने से कफ बढ़ता है और पाचन पर भी असर पड़ता है। इसी तरह चाय, कॉफी या कोल्ड ड्रिंक के रूप में खाने के साथ अगर बहुत सारा कैफीन लिया जाए तो भी शरीर को पूरे पोषक तत्व नहीं मिल पाते। मछली के साथ दूध कभी भी न ले क्योकि दही की तासीर ठंडी है। उसे किसी भी गर्म चीज के साथ नहीं लेना चाहिए। मछली की तासीर काफी गर्म होती है, इसलिए उसे दही के साथ नहीं खाना चाहिए। इससे गैस, एलर्जी और स्किन की बीमारी हो सकती है। दही के अलावा शहद को भी गर्म चीजों के साथ नहीं खाना चाहिए।

आयुर्वेद के मुताबिक परांठे या पूरी आदि तली–भुनी चीजों के साथ दही नहीं खाना चाहिए क्योंकि दही फैट के पाचन में रुकावट पैदा करता है। इससे फैट्स से मिलने वाली एनर्जी शरीर को नहीं मिल पाती। दही खाना ही है तो उसमें काली मिर्च, सेंधा नमक या आंवला पाउडर मिला लें। हालांकि रोटी के साथ दही खाने में कोई परहेज नहीं है। दही में गुड बैक्टीरिया होते हैं, जोकि खाना पचाने में मदद करते हैं इसलिए दही जरूर खाना चाहिए। दो तरह के भारी प्रोटींस जैसे अंडे, मीट, पनीर, नट्स आदि को एक साथ खाने से बचना चाहिए क्योंकि दोनों कंप्लीट प्रोटीन हैं और काफी हेवी भारी होते हैं। इससे इन्हें पचाने में दिक्कत हो सकती है। हालांकि सीधा–सीधा कोई नुकसान भी नहीं है। मीट के साथ अगर मैदा खाते हैं तो उसे भी सही नहीं माना जाता क्योंकि दोनों का पाचन अलग तरह से होता है।

फल खाने के फौरन बाद पानी पी सकते हैं, हालांकि दूसरे तरल पदार्थों से बचना चाहिए। क्योकिं फलों में काफी फाइबर होता है और कैलरी काफी कम होती है। अगर ज्यादा फाइबर के साथ पानी भी मिल जाए तो शरीर में सफाई अच्छी तरह हो जाती है। लेकिन तरबूज या खरबूज के मामले में यह सही नहीं क्योंकि ये काफी फाइबर वाले फल हैं। तरबूज को अकेले और खाली पेट खाना ही बेहतर है। इसमें पानी काफी ज्यादा होता है, जो पाचन रसों को डाइल्यूट कर देता है। अगर कोई और चीज इसके साथ या फौरन बाद पहले खाई जाए तो उसे पचाना मुश्किल होता है। इसी तरह, तरबूज के साथ पानी

पीने से लूज–मोशन हो सकते हैं। वैसे तरबूज अपने आप में काफी अच्छा फल है। यह वजन घटाने के इच्छुक लोगों के अलावा शुगर और दिल के मरीजों के लिए भी उत्तम है। खाने के साथ फल नहीं खाने चाहिए क्योकि कार्बोहाइड्रेट और प्रोटींस के पाचन का तरीका अलग होता है। कार्बोहाइड्रेट को पचाने वाला स्लाइवा एंजाइम एल्कलाइन मीडियम में काम करता है, जबकि नीबू, संतरा, अनन्नास आदि खट्टे फल एसिडिक होते हैं। दोनों को साथ खाया जाए तो कार्बोहाइड्रेट या स्टार्च की पाचन प्रक्रिया धीमी हो जाती है। इससे कब्ज, डायरिया या अपच हो सकती है। वैसे भी फलों के पाचन में सिर्फ तीन घंटे लगते हैं, जबकि भोजन को पचने में दस घंटे लगते हैं। आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार फल बाहर एसिडिक होते हैं लेकिन पेट में जाते ही एल्कलाइन हो जाते हैं। वैसे भी शरीर में जाकर सभी चीजें कार्बोहाइड्रेट, फैट, प्रोटीन आदि में बदल जाती हैं, इसलिए आधुनिक स्वाथ्य विज्ञान तरह–तरह के फलों को मिलाकर खाने की सलाह देता है। मीठे फल और खट्टे फल एक साथ न खाएं क्योकि आयुर्वेद के मुताबिक, संतरा और केला एक साथ नहीं खाना चाहिए क्योंकि खट्टे फल मीठे फलों से निकलने वाली शुगर में रुकावट पैदा करते हैं, जिससे पाचन में दिक्कत हो सकती है। साथ ही, फलों की पौष्टिकता भी कम हो जाती है। भोजन के अलावा पानी समय समय पर लेना योग साधकों व सामान्य व्यक्तियों को काफी महत्वपूर्ण है। तत्कालीन समय में भी अनेक डॉक्टरों ने पानी पीनी के माध्यम से अनेक बीमारियों को को दूर करने में सफलता हासिल की है जैसे लकवा, ब्लड कोलेस्टोल, सर का दर्द, ब्ल्ड प्रेसर, बलगम, खासी, दमा, टीबी,ज्वाइनडिस, लीवर की बीमारी, पेशाब की बीमारी, गैस, एसीडिटी, पेट की मरोड, कब्ज, डायविटीज, बवासीर, ऑख की बीमारी, हैजा औरतों कीं माहवारी में समस्या, बच्चेदानी का कैसर, नाक ब गले की बीमारी इत्यादि में पानी की चिकित्सा से गारंन्टी से ठीक होती है। सुबह शौच जाने से पूर्व 1250 एमएल पानी मतलब 4 गिलास पानी जामीन पर बैठकर एक साथ पी जाए और 45 मिनिट तक कुछ न खाएँ व पिये। प्रारम्भ में दो गिलास पिये धीरे धीरे मात्रा बढ़ाते जाएँ। दिन में खाना खाने के एक घण्टे पूर्व तीन गिलास पानी पिये एवं भोजन करने के के एक घण्टे बाद तीन गिलास पानी पिये। और सोने से पूर्व दो गिलास पानी पिये। साहित्य व वैद्यों के अनुभवों तथा लोंगो पर प्रयोग करने के पश्चात कब्ज सात दिन में गैस 10 दिन में शुगर 15 दिन में उच्चरक्त चाप 1 महीना, कैसर 45 दिन टीबी 90 दिन में टीक हो जाती है। ये प्रयोग 90 प्रतिशत रोगयों पर सफल हुए है। बडे चार गिलास पानी एक साथ पीने से कोई नुकसान नही होता पेट जरुर भर जाता है। 45 मिनिट बाद भूख लगती है। प्रारम्भ के तीन दिन पेशाब बार बार जाना पडेगा सात दिन बाद नियमित रुप से पहले जैसा पेशाब आने लगेगा। यह नियम स्वस्थ्य एवं रोगी व्यक्ति दोनों नियमित दिनचर्या में पालन करे कृपया पैकैट में आने वाले तरल पदार्थो का प्रयोग न करे इनमें कैसर पैदा करने बाले रसायन होते है। कुरकुरे का सेवन न करे इसमें ये हानीकारक होता है। ठण्डे पानी से गोलियॉ न खाएँ। शाम 5 बजे हल्का भोजन ले सूर्य अस्त के बाद भोजन ग्रहण न करे। दवाइयॉ खाना खाने के तुरन्त न लेवे। चाय व भोजन प्लास्टिक के कपों व प्लेटों में न लेवे। इससे अनेक प्रकार के कैसर होने की

सम्भवना होती है। स्नान प्रतिदिन 30 मिनिट तक पानी भरे टब या नदी में स्नान करे, इससे चमडी के कोई रोग नही होते एवं चमडी मुलायम एवं सुन्दर बनी रहती है। स्नान साबुन से नही नीबू लगाकर करे यह प्रकृति के अनुकुल है। इससे चमडी के रोग नही होते है। पानी बेहतरीन पेय है, लेकिन खाने के साथ पानी पीने से बचना चाहिए। खाना लंबे समय तक पेट में रहेगा तो शरीर को पोषण ज्यादा मिलेगा। अगर पानी ज्यादा लेंगे तो खाना फौरन नीचे चला जाएगा। अगर पीना ही है तो थोड़ा पिएं और गर्म व गुनगुना पिएं, ठंडा पानी पीने से बचना चाहिए। पानी में अजवाइन या जीरा डालकर उबाल लें। यह खाना पचाने में मदद करता है। खाने से आधा घंटा पहले या एक घंटा बाद गिलास भर पानी पीना अच्छा है। योग साधकों को पानी हमेशा गर्म करके पीना चाहिए। यह भोजन पचानें में महत्वपूर्ण होता है।

लहसुन और प्याज को रोजाना के खाने में शामिल किया जाना चाहिए। लहसुन फैट कम करता है और बैड कॉलेस्ट्रॉल (एलडीएल) घटाकर गुड कॉलेस्ट्रॉल (एचडीएल) बढ़ाता है। इसमें एंटी–बॉडीज और एंटी–ऑक्सिडेंट गुण होते हैं। प्याज से भूख बढ़ती है और यह खून की नलियों के आसपास फैट जमा होने से रोकता है। लंबे समय तक इसके इस्तेमाल से सर्दी–जुकाम और सांस संबंधी एलर्जी का मुकाबला अच्छे से किया जा सकता है। लहसुन और प्याज कच्चा या भूनकर, दोनों तरह से खा सकते हैं; लेकिन लहसुन कच्चा खाना बेहतर है। कच्चे लहसुन को निगलें नहीं, चबाकर खाएं क्योंकि कच्चा लहसुन कई बार पच नहीं पाता। साथ ही, उसमें कई ऐसे तेल होते हैं, जो चबाने पर ही निकलते हैं और उनका फायदा शरीर को मिलता है। हालॉकि लहसुन व प्याज तामसिक प्रवृति के माने जाते है। योग साधको को यह नही खाना चाहिए। घी, मक्खन, तेल आदि फैट्स को पनीर, अंडा, मीट जैसे भारी प्रोटींस के साथ ज्यादा नहीं खाना चाहिए क्योंकि दो तरह के खाने अगर एक साथ खाए जाएं, तो वे एक–दूसरे की पाचन प्रक्रिया में दखल देते हैं। इससे पेट में दर्द या पाचन में गड़बड़ी हो सकती है। दूध को अकेले लेना ही बेहतर है। तब शरीर को इसका फायदा ज्यादा होता है। आयुर्वेद के मुताबिक प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और फैट की ज्यादा मात्रा एक साथ नहीं लेनी चाहिए क्योंकि तीनों एक–दूसरे के पचने में रुकावट पैदा कर सकते हैं और पेट में भारीपन हो सकता है। आधुनिक विज्ञान इसे सही नहीं मानता। उसके मुताबिक यह सबसे अच्छे नाश्तों में से है। अनेक प्रकार का भोजन एक साथ न खाए यह योग साधको व सामान्य जन को हानिकारक होता है। एक बार के भोजन में बहुत ज्यादा प्रकार नहीं होनी चाहिए। एक ही थाली में सब्जी, नॉन–वेज, मीठा, चावल, अचार आदि सभी कुछ खा लेने से पेट खराब हो जाता है। मीठा अगर खाने से पहले खाया जाए तो बेहतर है क्योंकि तब न सिर्फ यह आसानी से पचता है, बल्कि शरीर को फायदा भी ज्यादा होता है। खाने के बाद में मीठा खाने से प्रोटीन और फैट का पाचन मंदा होता है। शरीर में शुगर सबसे पहले पचता है, प्रोटीन उसके बाद और फैट सबसे बाद में पचता है। खाने के बाद चाय पीने से कोई फायदा नहीं है। यह गलत धारणा है कि खाने के बाद चाय पीने से पाचन बढ़ता है।

भोजन के रुप में छोले–भठूरे या पिज्जा व बर्गर के साथ कोल्ड ड्रिंक्स नही लेना चाहिए क्योकि कोल्ड ड्रिंक में मौजूद एसिड की मात्रा और ज्यादा शुगर फास्ट फूड (पिज्जा, बर्गर, फ्रेंच फ्राइस आदि) में मौजूद फैट के साथ अच्छा नहीं माना जाता। तला–भुना खाना एसिडिक होता है और षुगर भी एसिडिक होती है। ऐसे में दोनों को एक साथ लेना सही नहीं है। साथ ही बहुत गर्म और ठंडा एक साथ नहीं खाना चाहिए। गर्मागर्म भठूरे या बर्गर के साथ ठंडा कोल्ड ड्रिंक पीना शरीर के तापमान को खराब करता है। स्नैक्स में मौजूद फैटी एसिड्स शुगर का पाचन भी खराब करते हैं। फास्ट फूड या तली–भुनी चीजों के साथ कोल्ड ड्रिंक के बजाय जूस, नीबू–पानी या छाछ ले सकते हैं। जूस में मौजूद विटामिन–सी खाने को पचाने में मदद करता है। मीट, अंडे, पनीर, नट्स जैसे प्रोटीन ब्रेड, दाल, आलू जैसे भारी कार्बोहाइड्रेट्स के साथ न खाएं। दरअसल, हाई प्रोटीन को पचाने के लिए जो एंजाइम चाहिए, अगर वे एक्टिवेट होते हैं तो वे पचाने वाले एंजाइम को रोक देते हैं। ऐसे में दोनों का पाचन एक साथ नहीं हो पाता। अगर लगातार इन्हें साथ खाएं तो कब्ज की शिकायत होती है। योग साधकों का भोजन सन्तुलित होना चाहिए, जिसमें कार्बोहाइड्रेट (अनाज, सब्जियां), प्रोटीन (दूध, दही), फैट (मक्खन, मलाई, तेल), मिनरल्स और विटैमिन (फल, सब्जियां आदि हों। खाने के साथ थोड़ा अदरक कद्दूकस करके और काला नमक मिलाकर खाने से भूख बढ़ती है और खाना भी पचता है। जिन लोगों को सफर में डल्टी या चक्कर की दिक्कत होती है, वे भी इसे खाएं तो फायदा होता है।

भोजन मानव को निरोगी भी रखता है और रोगी भी रखता है इसीलिए हिन्दू धर्म में योग और आयुर्वेद के नियमों पर चलने के धार्मिक नियम बनाए गए हैं। सेहत से जुड़े सभी तत्वों को हमारे ऋषियों ने धर्म के नियमों से जोड़ दिया है। उन्होंने जहां उपवास के महत्व को बताया वहीं उन्होंने यह भी बताया कि किस माह में क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए। जीवन में नियम और अनुशासन नहीं है तो जीवन घोर संकट से घिर सकता है। नियम के बगैर धर्म व योग सम्भव नही है। चैत्र माह में गुड़ व आषाढ़ में पका बेल, सावन में साग,' भादौ में दही,' क्वार व कार्तिक माह में बैंगन और जीरा, माघ माह में मूली और धनिया, फागुन माह में चना नही खाना चाहिए। कभी भी गर्म दही नहीं खाना चाहिए।[6]

'कांसे के बर्तन में दस दिन तक रखा हुआ घी नहीं खाना चाहिए।' रात्रि में फल, दही, सत्तू, मूली और बैंगन नहीं खाना चाहिए।' अचार और सिरके से बनी चीजें अधिक न खाएं।' खट्टे, चटपटे, चाट–पकौड़े, गोल–गप्पे, दही–भल्ले, समोसे, कचौरी–छोले–भटूरे न खाएं।' ऊष्ण खाद्य–पदार्थों, ऊष्ण मिर्च–मसाले और अम्लीय रसों से बने खाद्य पदार्थों का सेवन न करें।' चाय, कॉफी का बिलकुल ही परित्याग कर दें। जंक फूड और फास्ट फूड के अलावा सॉफ्ट कोल्ड ड्रिंक का भी त्याग कर दें। दाल के साथ चावल या दाल के साथ रोटी नहीं खाना चाहिए। खाएं तो भरपूर मात्रा में सब्जी भी खाएं।' दूध या दही के साथ रोटी नहीं खाना चाहिए।' दूध के साथ दही नहीं खा सकते या दही खाने के बाद दूध नहीं पीना चाहिए।' दूध और दही के साथ केला नहीं खाना चाहिए।' दूध या दही के साथ मूली भी

नहीं खाना चाहिए। शहद के साथ गर्म जल व या कोई गर्म पदार्थ नहीं लेना चाहिए।' शहद के साथ मूली नहीं खाना चाहिए।' खिचड़ी के साथ खीर नहीं खाना चाहिए।' दूध के साथ खरबूजा, खीरा और ककड़ी नहीं खाना चाहिए।' दही के साथ पनीर या पनीर के साथ दही नहीं खाना चाहिए।' फलों के साथ सब्जियां या सब्जियों के बाद फल नहीं खाना चाहिए।' दाल के साथ शकरकन्द, आलू, कचालू।' मौसमी फल खाना चाहिए।' रसदार फलों के अलावा अन्य फल सुबह खाना चाहिए।7' आम और गाय का दूध मिलाकर पी सकते हैं।' बथुआ और दही का रायता खा सकते हैं।' दूध के सात खजूर खा सकते हैं।' दही के सात आंवला चूर्ण ले सकते है।' चावल के साथ नारियल की गिरी खा सकते हैं।' दाल के साथ दही खा सकते हैं।' अमरूद के साथ सौंफ खा सकते हैं।' रोटी के साथ हरे पत्ते वाली सब्जी खा सकते हैं।' अंकुरित दालों के साथ कच्चा नारियल खा सकते हैं।' गाजर के सात मेथी का साग ले सकते हैं।' श्वेतसार के साथ साग–सब्जी खाना उचित है।' मेवे के साथ खट्टे फल ले सकते हैं।' दाल और सब्जी साथ में खा सकते हैं।' सब्जी व चावल की खिचड़ी ले सकते हैं।' स्नान से पहले और भोजन के बाद पेशाब जरूर करें।' भोजन के बाद कुछ देर बाईं करवट लेना चाहिए।' रात को जल्दी सोना और सुबह को जल्दी उठना चाहिए।' सूर्योदय के पूर्व गाय का ताजा दूध पीना चाहिए।' व्यायाम के बाद दूध अवश्य पीएं।' मल, मूत्र, छींक का वेग नहीं रोकना चाहिए।' स्नान रोजाना अवश्य करें।' गंदे कपड़े न पहनकर भोजन न करे, इससे हानि होती है।' भोजन के समय क्रोध न करें। मौन रहें।' भोजन ठूंस–ठूंसकर अधिक मात्रा में न करें। अधिकत्तर लोग ये मानते हैं कि खाना खाने के तुरंत बाद कम से कम सौ कदम चलना चाहिए। लेकिन ये पूरी तरह एक भ्रांति है। खाना खाने के तुरंत बाद चलने से भोजन का संपूर्ण पोषण शरीर को नहीं मिल पाता है। यह पाचन क्रिया को कमजोर करता है। कुछ लोगों की आदत होती है कि वो अपनी क्षमता से अधिक खाना खा लेते हैं और फिर खाने के तुरंत बाद अपना बेल्ट ढीला कर देते हैं। ऐसा करना पेट के लिए अच्छा नहीं है। ऐसा करने से पाचन क्रिया कमजोर हो जाती है। सही समय पर नहाना और खाना शरीर को स्वस्थ रखने के लिए बहुत जरूरी है। लेकिन कई लोग ऐसे भी होते हैं, जिनका नहाने व खाना खाने दोनों का ही निश्चित समय नहीं होता है। खाने के तुरंत बाद नहाना तो सबसे अधिक हानिकारक माना जाता है। दरअसल, ऐसा करने से पेट के चारो और रक्त प्रवाह बढ़ जाता है व पाचन क्रिया धीमी हो जाती है। जो लोग चाय पीने के शौकीन होते हैं, वे खाने के बाद चाय पीते हैं। लेकिन जरा ध्यान दीजिए, खाने के तुरंत बाद चाय न पीएं, क्योंकि खाने के तुरंत बाद चाय पीने से खाना पचने में दिक्कत होती है व एसिडिटी की समस्या भी हो सकती है। अधिकतर लोगों को खाने के बाद आलस आता है। ऐसे में वे सोना पसंद करते हैं, लेकिन खाने के तुरंत बाद सोना शरीर के लिए बहुत नुकसानदायक होता है। खाने के बाद तुरंत सोने से भोजन का पाचन ठीक से नहीं होता है और मोटापा बढ़ जाता है। आपने ये तो सुना होगा कि फल भोजन करने के बाद खाना चाहिए, लेकिन ये सच्चाई बहुत कम लोग जानते हैं कि खाने के पहले व तुरंत बाद, दोनों ही स्थितियों में फलों का सेवन लाभदायक नहीं होता। खाने के तुरंत बाद फल खाना शरीर

को नुकसान पहुंचा सकता है। खाने के तुरंत बाद फल खाने से गैस की समस्या हो सकती है। अनेक लोग आलू व चावल के शौकीन होते हैं, लेकिन ऐसे लोगों को यह ध्यान रखना चाहिए कि इन दोनों को एक साथ न खाएं। इससे कब्ज की समस्या हो सकती है। प्याज और दूध को कभी एक साथ नहीं लेना चाहिए। प्याज के साथ दूध के सेवन से कई तरह के त्वचा रोग जैसे दाद,खाज ,खुजली,एग्जिमा सोराईसिस, आदि होने की संभावना होती है। उड़द की दाल के साथ दही खाना बहुत नुकसान पहुंचाने वाला होता है। माना जाता है कि इनके लगातार सेवन से दिल से संबंधित बीमारियां हो सकती हैं। वजन कम करने वाले लोगों के लिए यह जरूरी है कि खाने को कम से कम 30–35 बार तक चबाकर खाएं। कई बार पौष्टिक और संतुलित खाना खाते समय लोग उसे सिर्फ दस से पंद्रह बार ही चबाते हैं। जिससे पेट से जुड़ी समस्याए दूर होती हैं। खाना चबाकर खाने से कब्ज दूर होती है, दांत मजबूत होते हैं, भूख बढ़ती है और कब्ज व एसिडिटी नहीं होती है। भोजन बैठकर ही खाएं, क्योंकि चलते–चलते खाना खाने से पाचन क्रिया पर असर पड़ता है। बैठकर खाते समय हम सुखासन की स्थिति में होते हैं, जिससे कब्ज, मोटापा, एसिडिटी आदि पेट संबंधित बीमारियां नहीं होती हैं। शरीर भूखा रहने से वजन कम नही होता, बल्कि वजन बढ़ने का खतरा बढ़ जाता है। दिनभर में अगर हम निष्चित अंतराल पर अच्छे से चबाकर खाना खाते हैं तो पाचन क्रिया संतुलित रहती है। जो लोग सुबह नाश्ता नहीं करते उनकी पाचन क्रिया धीमी हो जाती है, जिससे खाना अच्छे से पच नहीं पाता है और वजन तेजी से बढ़ने लगता है। कुछ लोग स्वाद लेने के लिए बार–बार खाना खाते हैं। पहले का खाना पचा नहीं कि दोबारा खा लिया। ऐसा करने से पेट की बीमारियां षुरू हो जाती हैं, खाना अच्छे से पच नहीं पाता और मोटापा घेर लेता है। भोजन के समय पानी पीने से पाचन क्रिया पर असर होता है। इसलिए खाने के आधे या एक घंटे पहले या बाद में पानी पिएं।[8] योग व व्यायाम करने के तुरंत बाद खाना न खाएं। शरीर को नार्मल टेंपरेचर पर आने दें, उसके बाद ही खाना खाएं। खाने के बीच में कम से कम 6 घंटे का अंतराल होना चाहिए। रात्रि के भोजन के पचने में समय लगता है, इसलिए रात का खाना जल्दी कर लेना चाहिए। नियमित रूप से दिन में तीन बार भोजन करने से एकाग्रता बढ़ती है। खाने के तरीके में बदलाव करके मधुमेह से बचा जा सकता है। धीरे–धीरे और चबाकर खाने से ग्लूकोज को जोड़ने का काम दोगुनी गति से होता है जिससे मधुमेह का खतरा कम होता है। भोजन करने से पहले अपने हाथों को साबुन से अच्छी तरह से धोएं। जिससे हाथों में मौजूद बैक्टीरिया खाने के साथ आपके शरीर में प्रवेश कर नुकसान न पहुंचाएं।

वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है, कि मोटापा घटाने के लिये मिर्च का सेवन करना चाहिये। सोने से पहले इसका सेवन भोजन में करें जिससे लगातार वजट घटने की प्रक्रिया चलती रहे। 25 ग्राम नींबू के रस में 25 ग्राम शहद मिलाकर 100 ग्राम गर्म पानी के साथ प्रतिदिन सुबह–शाम पीने से मोटापा दूर होता है। एक नींबू का रस प्रतिदिन सुबह गुनगुने पानी में मिलाकर पीने से मोटापे की बीमारी दूर होती है। नींबू का रस 250 ग्राम पानी में मिलाकर थोड़ा सा नमक मिलाकर सुबह–शाम 1–2 महीने तक पीएं। इससे मोटापा दूर

होता है। नींबू का 25 ग्राम रस और करेला का रस 15 ग्राम मिलाकर कुछ दिनों तक सेवन करने से मोटापा नश्ट होता है। 250 ग्राम पानी में 25 ग्राम नींबू का रस और 20 ग्राम शहद मिलाकर 2 से 3 महीने तक सेवन करने से अधिक चर्बी नष्ट होती है। 1–1 कप गर्म पीनी प्रतिदिन सुबह–षाम भोजन के बाद पीने से शरीर की चर्बी कम होती है। इसके सेवन से चर्बी कम होने के साथ–साथ गैस, कब्ज, कोलाइटिस (आंतों की सूजन) एमोबाइसिस और कीड़े भी नष्ट होते हैं।मूली का चूर्ण 3 से 6 ग्राम शहद मिले पानी में मिलाकर सुबह–षाम पीने से मोटापे की बीमारी से छुटकारा मिलता है। मूली के 100–150 ग्राम रस में नींबू का रस मिलाकर दिन में 2 से 3 बार पीने से मोटापा कम होता है। मूली के बीजों का चूर्ण 6 ग्राम और ग्राम यवक्षार के साथ खाकर ऊपर से शहद और नींबू का रस मिला हुआ एक गिलास पानी पीने से शरीर की चर्बी घटती है। 6 ग्राम मूली के बीजों के चूर्ण को 20 ग्राम शहद में मिलाकर खाने और लगभग 20 ग्राम शहद का षर्बत बनाकर 40 दिनों तक पीने से मोटापा कम होता है। मूली के चूर्ण को शहद में मिलाकर सेवन करने से मोटापा दूर होता है। मिश्री, मोटी सौंफ और सुखा धनिया बराबर मात्रा में पीसकर एक चम्मच सुबह पानी के साथ लेने से अधिक चर्बी कम होकर मोटापा दूर होता है। बिना बुझा चूना 15 ग्राम पीसकर 250 ग्राम देषी घी में मिलाकर कपड़े में छानकर सुबह–शाम 6–6 ग्राम की मात्रा में चाटने से मोटापा कम होता है। सहजन के पेड़ के पत्ते का रस 3 चम्मच की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से त्वचा का ढीलापन दूर होता है और चर्बी की अधिकता कम होती है। 120 से 240 ग्राम शहद 100 से 200 मिलीलीटर गुनगुना पानी के साथ दिन में 3 बार लेने से शरीर का थुलथुलापन दूर होता है। तुलसी के कोमल और ताजे पत्ते को पीसकर दही के साथ बच्चे को सेवन कराने से अधिक चर्बी बनना कम होता है। तुलसी के पत्तों के 10 ग्राम रस को 100 ग्राम पानी में मिलाकर पीने से शरीर का ढीलापन व अधिक चर्बी नश्ट होती है। तुलसी के पत्तों का रस 10 बूंद और शहद 2 चम्मच को 1 गिलास पानी में मिलाकर कुछ दिनों तक सेवन करने से मोटापा कम होता है। टमाटर और प्याज में थोड़ा–सा सेंधानमक डालकर खाना खाने से पहले सलाद के रूप में खाने से भूख कम लगती है और मोटापा कम होता है। रात को सोने से पहले त्रिफला का चूर्ण 15 ग्राम की मात्रा में हल्के गर्म पानी में भिगोकर रख दें और सुबह इस पानी को छानकर शहद लाकर कुछ दिनों तक सेवन करें। इससे मोटापा जल्दी दूर होता है। त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, नागरमोथा और वायविंडग को मिलाकर काढ़ा में गुगुल को डालकर सेवन करें। त्रिफले का चूर्ण शहद के साथ 10 ग्राम की मात्रा में दिन में 2 बार (सुबह और शाम) पीने से लाभ होता है। 2 चम्मच त्रिफला को 1 गिलास पानी में उबालकर इच्छानुसार मिश्री मिलाकर सेवन करने से मोटापा दूर होता है। त्रिफला का चूर्ण और गिलोय का चूर्ण 1–1 ग्राम की मात्रा में शहद के साथ चाटने से पेट का बढ़ना कम होता है। दही को खाने से मोटापा कम होता है। छाछ में काला नमक और अजवायन मिलाकर पीने से मोटापा कम होता है। आलू को उबालकर गर्म रेत में सेंकर खाने से मोटापा दूर होता है।

पालक के 25 ग्राम रस में गाजर का 50 ग्राम रस मिलाकर पीने से शरीर का फैट (चर्बी) समाप्त होती है। 50 ग्राम पालक के रस में 15 ग्राम नींबू का रस मिलाकर पीने से मोटापा समाप्त होता है। भोजन से पहले 1 गिलास गुनगुना पानी पीने से भूख का अधिक लगना कम होता है और शरीर की चर्बी घटने लगती है। बासी ठंडे पानी में शहद मिलाकर प्रतिदिन पीने से मोटापा में लाभ मिलता है। 250 ग्राम गुनगुने पानी में 1 नींबू का रस और 2 चम्मच शहद मिलाकर खाली पेट पीना चाहिए। इससे अधिक चर्बी घटती है और त्वचा का ढीलापन दूर होता है। फलों का रस बहुत उपयोगी है। मोटापा कम करने के लिए 6 से 8 महीने तक फलों का रस लेना लाभदायक होता है। इसके सेवन से किसी भी प्रकार के दुश्परिणामों का सामना नहीं करना पड़ता। फलों का रस कैलोरी को कम करता है जिससे स्वभाविक रूप से वसा कम हो जाती है। इससे शरीर का वजन और मोटापा कम होता है। गाजर, ककड़ी, पत्तागोभी, टमाटर, तरबूज, सेब व प्याज का रस फायदेमंद होता है। अजवायन 20 ग्राम, सेंधानमक 20 ग्राम, जीरा 20 ग्राम और कालीमिर्च 20 ग्राम को कूटकर चूर्ण बना लें और यह चूर्ण प्रतिदिन सुबह खाली पेट छाछ के साथ पीएं। इससे शरीर की अधिक चर्बी नष्ट होती है। करेले के रस में 1 नींबू का रस मिलाकर सुबह सेवन करने से शरीर की चर्बी कम होती है। चावल का गर्म–गर्म मांड लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से मोटापा दूर होता है।

मूंगफली सेहत का खजाना है। साथ ही, यह वनस्पतिक प्रोटीन का एक सस्ता स्रोत भी हैं। रोज मूंगफली खाने के कई ऐसे फायदे होते हैं, जो खाने वालों को भी नहीं पता होते हैं। ऐसे में अनजाने में ही कुछ ऐसे हेल्दी फायदे मिलने लगते हैं, जिनकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता है। एक अंडे की कीमत में जितनी मूंगफली आती है, उसमें अंडे से कई गुना ज्यादा प्रोटीन होता है। दूध और अंडे में इसके मुकाबले कम प्रोटीन होता है। यह आयरन, नियासिन, फोलेट, कैल्शियम और जिंक का अच्छा स्रोत हैं। थोड़े से मूंगफली के दानों में 426 कैलोरीज, 5 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 17 ग्राम प्रोटीन और 35 ग्राम वसा होती है। इसमें विटामिन ई, के और बी6 भी भरपूर मात्रा में पाए जाते है। इसलिए यदि आप ऊपर लिखे पोषण के साथ ही आगे लिखे फायदे भी पाना चाहते हैं तो रोजाना लाल छिलके वाले कम से कम 20 मूंगफली के दाने खाएं ।।मूंगफली में तेल का अंष होने से यह पेट की बीमारियों को खत्म करती है। इसके नियमित सेवन से कब्ज की समस्या नहीं होती है। साथ ही, गैस व एसिडिटी की समस्या से भी राहत मिलती है। मूंगफली गीली खांसी में भी उपयोगी है। इसके नियमित सेवन से आमाशय और फेफड़ों को मजबूती मिलती है। पाचन षक्ति को बढ़ाती है और भूख न लगने की समस्या भी दूर होती है। मूंगफली का नियमित सेवन गर्भवती स्त्री के लिए भी बहुत अच्छा होता है। यह गर्भावस्था में शिशु के विकास में मदद करती है। मूंगफली में ओमेगा–6 फैट भी भरपूर मात्रा मां मिलता है, जो स्वस्थ कोशिकाओं और अच्छी त्वचा के लिए जिम्मेदार है। इसलिए मूंगफली स्किन के लिए बेहद फायदेमंद होती है। मूंगफली कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को नियंत्रित करने में अहम भूमिका निभाती है। एक शोध से यह भी पता चला है कि सप्ताह में पांच दिन मूंगफली के कुछ दाने

खाने से दिल की बीमारियां होने का खतरा कम रहता है। खाने के बाद यदि 50 या 100 ग्राम मूंगफली रोजाना खाई जाए तो सेहत बनती है, भोजन पचता है, शरीर में खून की कमी नहीं होती है। इसे खाने से कोलेस्ट्रॉल कंट्रोल में रहता है। कोलेस्ट्रॉल की मात्रा में 5.1 फीसदी की कमी आती है। इसके अलावा कम घनत्व वाले लिपोप्रोटीन कोलेस्ट्रॉल की मात्रा भी 7.4 फीसदी घटती है। प्रोटीन, लाभदायक वसा, फाइबर, खनिज, विटामिन और एंटीआक्सीडेंट भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। इसलिए इसके सेवन से स्किन उम्र भर जवां दिखाई देती है। मूंगफली कैल्षियम और विटामिन डी अधिक मात्रा में होता है, इसलिए इसे खाने से हड्डिया मजबूत हो जाती है। रोजाना थोड़ी मात्रा में मूंगफली खाने से महिलाओं और पुरुषों में हार्मोन्स का संतुलन बना रहता है।

मेष, सिंह, वृश्चिक राशि वाले उग्र प्रकृति अर्थात गर्म स्वभाव के होते हैं तो उनमें पित्त प्रधान होता है।. वृषभ, कर्क, तुला, धनु, मीन राशि वालों का स्वभाव सुस्त होता है तो उनमें कफ प्रधान होता है।. मिथुन, कन्या, मकर और कुंभ राशि की प्रकृति हवादार होती है, तो उनमें वात तत्व प्रधान होता है। जब पित्त, वात और कफ का संतुलन बिगड़ता है तो शरीर में विकार उत्पन्न होते हैं।[9] व्यक्ति को अपनी प्रकृति समझ कर ही भोजन का चयन करना चाहिए। राशि अनुसार खुद की प्रकृति को देख कर भोजन का चयन करेंगे तो बीमारियों से बचे रहेंगे। सदा हितकर आहार विहार का सेवन करने वाला मानव, भलीभॉति कार्य करने वाला, ज्ञानेन्द्रियों में असक्त न रहने वाला, सत्पात्रों को दान देने वाला, सभी प्राणियों को सम भाव से देखने वाला, सत्यभाषण वाला क्षमा करने वाला सदा निरोगी रहता है।[10]

योग साधकों को सुबह योग प्रणायम व ध्यान करने के एक घण्टे पश्चात नस्तें में दूध, फलो का रस व मौसमी फलों में केला, सेवफल,,नासपाती, अगूर, गाजर, आम, जामुन, सीताफल, संन्तरा, अमरुद, अकुरित अनाजो में मूगफली, चने, मूग, दलिया, दही, छाछ इत्यादि लेना चाहिए। भोजन में दाले, हरी सब्जियॉ,, छाछ, चावल, रोटी, दलिया, खिचडी इत्यादि को सामिल करना चाहिए। भोजन का पूर्ण रुप से पाचन लगभग दस घण्टे में होता है। रात के समय पाचन तृन्त्र कमजोर हो जाता है। इसलिए रात का भोजन योग साधकों को शाम 6 बजे तक खा लेना चाहिए। खाने के आधा घण्टे बाद गर्म गुनगुना पानी पीना चाहिए। प्रत्येक घण्टे में एक गिलास पानी पीना स्वस्थ्य वर्द्धक है। सुबह बिस्तर से उटते ही चार गिलास गर्म गुनगुना पानी अनिवार्य रुप से पीना चाहिए। योग प्रणायाम के पुर्व नहाना उचित है। बाद में एक घण्टे पश्चात स्नान करना चाहिए। जैसा खाओगे अन्न वैसा बनेगा मन, जैसा पियोगो पानी वैसी बोलोगे बानी। अर्थात उत्तम भाव व ईश्वरीय भाव से बना भोजन उत्तम भाव से खाया गया भोजन उत्कृष्ट मन का निर्माण कराता है। उसी प्रकार प्रसन्नता के भाव से घडे, जलाशय, कुआ, नदी व हैण्डपम्प से लिया गया पानी एवं ईश्वरीय तत्व के भाव से पिया गया पानी मधुर वाणी को जन्म देता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि योग के लिए उत्तम खानपान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

1. चरक सूक्त 1/15
2. भगवत गीता, 6/ 17
3. परम हंस हरिहरानंन्दः कियायोग,प्रज्ञान मिशन कटक, उडीसा, 2014 पृ. 268
4. छान्दोग्योंपनिषद्, 1/85
5. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, अष्टाग्हृदयम्,चौखम्बा प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.45
6. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, अष्टाग्हृदयम्,चौखम्बा प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.40एवं 61
7. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, अष्टाग्हृदयम्,चौखम्बा प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.68
8. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, अष्टाग्हृदयम्,चौखम्बा प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.50
9. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, अष्टाग्हृदयम्,चौखम्बा प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.62
10. विद्यालंकार, आयुर्वेद का इतिहास (हिन्दी समिति) ग्रंथ माला—33;प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ.प्र.1960,

6

श्रीमद् भागवत गीता : एक अलौकिक दर्शन – योग

संदीप ठाकरे

विश्वसाहित्य में श्रीमदगीता का अद्वितीय स्थान हैं। यह साक्षात भगवान के श्रीमुख से निःसृत परम रहस्यमयी दिव्य वाणी हैं। इसमें स्वयं भगवान ने अर्जुन को निमित्त बनाकर मनुष्य के कल्याण के लिए उपदेश दिया हैं। इस छोटे से ग्रन्थ में भगवान ने अपने हृदय के बहुत ही विलक्षण भाव भर दियें है, जिनका आज तक कोई पार नहीं पा सका है और न पा ही सकता हैं। गहता में जितना भाव भरा है, उतना बुद्धि में नहीं आता। जितना बुद्धि में आता है, उतना मन में नहीं आता है, जितना मन में आता हैं, उतना कहने में नहीं आता। जितना कहनें में आता है, उतना लिखनें में नही आता। गीता असीम है, पर उसकी टीका सीमित ही होंती है।परन्तु भगवत्कृपा से गीता के नये नयें भाव प्रकट होते रहतें है।

'गीता' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'गय्' धातु से हुई हैं, जिसका अर्थ 'गाना' है। सामान्य रूप से गीता का अर्थ है 'आत्म का उद्गार। जब मनुष्य एक उच्च कोटी के अनुभव को प्राप्त करता हैं, तब उसके भीतर की प्रफुल्लता, उसके भीतर का आनन्द एक गान या श्लोक के रूप में प्रकट होता है।'' [1]

भगवत गीता का भारतीय शास्त्र–ग्रन्थों का अन्यतम स्थान हैं इसे उपनिषद भी कहा जाता है इसके जीवनदायी उदात्त आध्यात्मिक तत्व किसी व्यक्ति, जाति, धर्म सम्प्रदाय या देश के लिए न होकर अखिल विश्व की समग्र मानव– जाति के लिए है। स्वभावतः इस अदभुत एवं विलक्षण ग्रन्थ ने शताब्दियों से विश्व के मानव–मन को स्पन्दित, उत्प्रेरित एवं उद्दीपित किया है। वस्तुतः गीता के संदेश सार्वजनीन हैं। इसी से विभिन्न मनीषियों, महात्माओं एवं प्रख्यात चिन्तकों ने इस ग्रन्थ की अमर टीकाएं लिखी है और इसपर भाष्य लिखा है। आचार्य शंकर, सन्त ज्ञानेश्वर, श्रीधरस्वामी, मधुसूदन सरस्वती, लोकमान्य तिलक,

माहात्मा गांधी, विनोबाभावे, अरविन्द महर्षि, डॉ, सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जैसे प्रख्यात् महापुरूषों ने तथा चिन्तकों ने गीता पर टिकाये लिखकर इसकी महत्ता प्रदर्शित की है।

गीता का सर्वप्रथम अंग्रेजी अनुवाद सर चार्ल्स विल्किन्स के द्वारा होकर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा प्रकाशित हुआ था। भारत के प्रथम गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ज ने इसकी भूमिका में लिखा था– " जब भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्व समाप्त हुए काफी काल बीच चुका होगा और इसकी सम्पदा तथा सत्ता के उदगम स्मृति मात्र का विषय होकर रह जायेंगें, तब भी भारतीय दर्शन के जीवित रहेंगे।"[2]

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक गीता रहस्य में भगवतगीता का परिचय देंते हुए कहा है– "श्रीमद भगवतगीता हमारें धर्मग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। यह ग्रन्थ वैदिक धर्म के भिन्न भिन्न सम्प्रदाओं में वेंद के समान आज करीब ढाई हजार वर्ष से सर्वमान्य तथा प्रमाण स्वरूप हो रहा है। इसका कारण भी उक्त ग्रन्थ का महत्व ही है। "[3] श्री अरविन्द ने गीता को भारतीय आध्यात्मिकता का परिपक्व सुमधुर फल कहा है।"[4] महात्मा गांधी गीता की सराहना करते हुए कहते है कि जिस प्रकार हमारी पत्नी विश्व में सबसे सुन्दर स्त्री हमारे लिए है, उसी प्रकार गीता के उपदेश सभी उपदेशों से श्रेष्ठ है। गांधी जी ने गीता को प्रेरणा का स्त्रोत कहा हैं।[5]

विनोबा जी ने गीता को 'आई' कहकर सम्बोधित किया जिसका अर्थ 'मा' होता हैं। वे गीता को 'साम्ययोग' का ग्रन्थ मानते थे। अपनी 'गीता प्रवचन ' नामक पुस्तक में उन्होने कहा है– " गीता और मेरा सम्बन्ध तर्क से परे है। मेरा शरीर मां के दूध पर जितना पला हैं उससे कहीं अधिक मेरा हृदय और बुद्धि का पोषण गीता के दूध पर हुआ है। जहां हार्दिक संबंध होता है, वहां तर्क की गुंजाईश नहीं रहती है। तर्क को काटकर 'श्रद्धा' और 'प्रयोग' इन दो पंखों से ही मै गीता गगन में यथाशक्ति उडान भरता रहता हॅू। मैं प्रायः गीता के वातावरण में रहता हॅू। गीता मेरा प्राणतत्व है। जब मैं गीता के सम्बन्ध में किसी से बात करता हॅू, तब गीता सागर पर तैरता हॅू।"[6] गीता उपनिषदों का सार है, पर वास्तव में गीता की बात उपनिषदों में भी विशेष है। सभी दर्शन गीता के अन्तर्गत है, पर गीता किसी दर्शन के अन्तर्गत नहीं है। दर्शन शास्त्र में जगत क्या है, जीव क्या है और ब्रम्ह क्या हैं– यह पढाई होती है, परन्तु गीता पढाई नहीं कराती, प्रत्युत अनुभव कराती हैं। गीता में किसी मत आग्रह नहीं हैं, प्रत्युत केवल जीव के कल्याण का ही आग्रह है। मतभेद गीता में नहीं हैं, प्रत्युत टीकाकारों में है। गीता के अनुसार चलने से सगुण और निर्गुण के उपासकों में परस्पर खटपट नहीं हो सकती। गीता में भगवान साधक को समग्र की तरफ ले जाते है। सगुण – निर्गुण, आकार– निराकार, द्विभुज– चतुर्भुज, सहस्रभुज आदि सब रूप समग्र परमात्मा के ही अन्तर्गत हैं, परमात्मा के सिवाय किंचिन्मात्र कुछ भी नहीं है। इसी भाव में सम्पूर्ण गीता है। गीता समग्र को मानती है, इसीलिए गीता का आरम्भ और अंत शरणागति में हुआ है। शरणागति से समग्र की प्राप्ति होती है। परमात्मा के समग्र रूप में सब रूप होते हुए भी सगुण की मुख्यता है। कारण कि सगुण के अन्तर्गत निर्गुण भी आ जाता है, पर निर्गुण में

गुणों का निषेध होने से सगुण नहीं आता। अतः सगुण ही समग्र हो सकता है। गीता में प्रत्येक अध्याय को योग की संज्ञा दी गयी हैं। कर्मयोग, ज्ञानयोग, और भक्तियोग गीता की योगत्रयी हैं। शरीर (अपरा) को लेकर कर्मयोग है, शरीर (परा) को लेकर ज्ञानयोग हैं और शरीर– शरीरी दोनो के मालिक (भगवान) – को लेकर भक्तियोग हैं। भगवान ने गीता के आरम्भ में पहले शरीरी को लेकर क्रमशः ज्ञानयोग और कर्मयोग का वर्णन किया है। फिर ध्यानयोग का वर्णन किया, क्योंकि यह भी कल्याण करपने का एक साधन है। मनुष्य, कर्मयोग से जगत के लिए, ज्ञान योग से अपने लिए और भक्तियोग से भगवान के लिए उपयोगी हो जाता है। गीता में कर्मयोग के वर्णन में ज्ञान योग– भक्तियोग की, ज्ञानयोग के वर्णन में कर्मभक्ति योग की और भक्तियोग के वर्णन में कर्मयोंग– ज्ञानयोग की बात भी आती हैं, इसका तात्पर्य यह हैं कि साधक कोई भी योग करें तो उसको तीनों योगों की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् उसको मुक्ति और भक्ति दोनों प्राप्त हो जाते हैं। कारण कि परा और अपरा दोनो प्रकृतियां भगवान की ही है। ज्ञानयोग 'परा' को लेकर और कर्मयोंग 'अपरा' को लेकर चलता हैं। इसीलिए किसी एक योग की पूर्णता होने पर तीनों योग की पूर्णता हो जाती है। गीता में समता की बात प्रधान से रूप से आयी है। ज्ञान, कर्म एवं भक्ति– तीनों ही मार्गो में साधन रूप में समता की आवश्यकता बतायी गयी है। **समदुःखसुखं ।** [7] इस पद से ज्ञानमार्ग के साधकों में समता वाले को ही अमृतत्व अर्थात् मुक्ति का अधिकारी बताया है।

'सिध्दयसिध्दियोंः समों भूत्वा समत्वं योग उच्यते' [8]

इस प्रकार कर्मयोग के साधकों को समतायुक्त होकर कर्म करने की आज्ञा दी गयी है और भक्तिमार्ग के साधक के लिए भी इन्हीं गुणों के सेवन की बात कहीं गयी है। समता का सुगमता के साथ भली भांति समझाने के लिए भगवान ने गीता में अनेको प्रकार से सम्पूर्ण प्राणी, क्रिया, भाव, और पदार्थों में समता की व्याख्या की गयी है।[9]

जैसे – मनुष्य में समता को स्पष्ट करते हुए कहतें हैं– सुदृढ, मित्र, वैरी, उदासिन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणों मे धर्मात्माओं और पापियों में भी समानभाव रखने वाला अत्यन्त श्रेष्ठ है। [10] मनुष्य और पशुओं में समता को स्पष्ट करते हुए कहते है– ''ज्ञानीजन विद्या और विनय युक्त ब्राम्हण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समदर्शी ही होते है।'' [11] सम्पूर्ण जीवों में समता के विषय में वे स्पष्ट करते है कि जो योगी अपनी भांति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुख को भी सब में सम देंखता हैं, वह योगी परमश्रेष्ठ माना गया है। [12] इस प्रकार जो सर्वत्र समदृष्टि है, व्यवहार में कथन मात्र की अहंता –ममता रखते हुए भी जो सबमें समबुद्धि रखता है, जिसका समष्टिरूप समस्त संसार में समभाव है, वह समतायुक्त पुरूष हैं। जिस प्रकार ईश्वर का आदर्श पुरूषोत्तम है, उसी प्रकार मनुष्य का गीता में स्थितप्रज्ञ मानव जीवन के लिए सर्वोच्च अवस्था है तथा सर्वोच्च मूल्य है। स्थितमूल्य का आचरण समाज में अनुकरण है, क्योकि वह समाज के लिए मापदण्ड है। स्थितप्रज्ञ गीता का अपना शब्द तथा स्थितप्रज्ञ की धारणा गीता की अपनी देन है। गीता

से पहले उपनिषद या वैदिक ग्रन्थों में यह शब्द नहीं मिलता। इसी प्रकार स्थितप्रज्ञ की धारणा भी बिल्कुल नई है जो गीता के पहले किसी धार्मिक साहित्य में नहीं प्राप्त होंती हैं। अतः स्थितप्रज्ञ शब्द और इसका भाव दोनों गीता की विशेंषता है। स्थितप्रज्ञ का अर्थ स्थिरबुद्धि या स्थिरप्रज्ञा से है। स्थितप्रज्ञ जागृत अवस्था में ही परमात्मा में स्थिर बुद्धि की अवस्था है। इस अवस्था में सभी कार्य परमात्मा की भक्ति में किये जाते है। गीता में स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लक्षणों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। उनमें से कतिपय लक्षण इस प्रकार है– स्थितप्रज्ञ सभी कामनाओं और वासनाओं का सर्वथा त्याग कर देता है।"[13] स्थितप्रज्ञ के राग, भय, क्रोघ, नष्ट हो जाते है। [14] जिस प्रकार कछुआ सब ओर से अपने अंगो कों समेट लेता है वैसे ही जब यह पुरूष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है। [15]

इसलिए गीता में भगवान कहतें हैं कि जो पुरूष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममता रहित, अहंकार रहित और स्पिृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्ति को प्राप्त करता हैं।[16] इसलिए भगवान अर्जुन को बोध कराते हैं कि यह ब्रहम को प्राप्त हुए पुंरूष की स्थिति है, इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इस ब्राह्मी की स्थिति में स्थिर होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है। [17]

संदर्भ – सूची

(1) स्वामी निरंजनानन्द सरस्वतीः गीता दर्शन (2012) , योग पब्लिकेशन ट्रस्ट,मुंगेर, बिहार पष0–3

(2) स्वामी रंगनाथानन्दः भगवदगीता का सार्वजनीन संदेश– प्रथमभाग (2009), रामकष्ष्ण मठ, नागपुर पृ0– 4

(3) लोकमान्य तिलकः गीता रहस्य, पृ0– 17

(4) हरेन्द्र प्रसाद सिन्हाः भारतीय दर्शन की रूप रेखा (1995) मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी, पृ0– 67

(5) हरेन्द्र प्रसाद सिन्हाः भारतीय दर्शन की रूप रेखा (1995) मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, पृ0– 68

(6) विनोबा भावे : गीता प्रवचन (1998), सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी पृ0–9

(7) गीता – 2/15

(8) गीता – 2/48

(9) गीता – 12/20

(10) गीता – 6/9

(11) गीता – 5/18

(12) गीता – 6/32

(13) गीता – 2/55

(14) गीता – 2/56

(15) गीता – 2/58

(16) गीता – 2/71

(17) गीता – 2/72

7

कर्मयोग तथा भक्तियोग के मनोचिकित्सात्मक महत्व

डॉ. श्याम सुन्दर पाल

मानव चेतना के विकास में कर्मयोग की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है कर्मयोग समस्त विश्व का कल्याणकारी परम पावन मार्ग है। कर्मयोग में कर्मयोगी अपने समस्त कर्मो और उसके फल को भगवान के चरणों में अर्पण कर देता है। ईष्वर में निष्ठा रखकर आसक्ति को दूर करके सफलता या निष्फलता में समान रूप से रहकर कर्म करते रहना कर्मयोग कहलाता है। चेतना के विकास हेतु कर्मयोग प्रेम, विष्वास, श्रद्धा, समर्पण और सेवा है। यह मनुष्य की भावना के विकास का मूलाधार भी है।

कर्मयोग की पावन पुण्य परम्परा वेदों, पुराणों, श्रीमद् भगवद्गीता से होकर महान कर्मयोगियों श्रीअरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी षिवानन्द, बालगंगाधर तिलक, आचार्य विनोबा

भावे आदि से प्रकाशित हुई थी। इन सभी ने जीवन में एक ही सम्पदा कमाई है, एक ही तत्व का उपार्जन किया है और एक ही रस चखा है, वह है–पीड़ित मानवता की सेवा। पीडित मानवता की सेवा करते हुंए अपने स्वधर्म का पालन करना ही कर्मयोग है।

कर्मयोग का अर्थ

कर्म शब्द 'कृ' धातु में 'अन' प्रत्यय लगाकर निश्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है–क्रिया, व्यापार, हलचल, प्रारब्ध तथा भाग्य आदि। महर्षि जैमिनि के मतानुसार अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म होता है। जिस कर्म में कर्त्ता की क्रिया का अनुष्ठान सम्पन्न किया जाता है, वही कर्म है। सभी क्रियायें कर्म नहीं कहलाती है, जिनके साथ हमारा भाव और संकल्प, इच्छाएँ और भावनाएँ जुडें हुये होते है, वे ही कर्म कहलाते है।

श्रीमद्भगवद्गीता (3/5) में कहा गया है–

न ही कश्चित् क्षणमपि जातु निष्ठत्य कर्म कृत।

कार्यते ह्मवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

अर्थात् कोई भी मनष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता क्योंकि समस्त मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों के द्वारा कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।

कर्म करना जीवन का अनिवार्य नियम है। यह भी शास्वत सत्य है कि कर्म का फल अवश्य ही मिलता है। परन्तु निश्चयात्मक रूप से यही नहीं कहा जा सकता है कि अमुक कर्म का, अमुक समय तक, अमुक प्रकार का फल प्राप्त हो ही जाएगा। कर्म की महत्ता को देखते हुए इसकी गणना योग में की गई है। योग का अर्थ होता है–समर्पण, विलय, विसर्जन। कर्म तभी कर्मयोग बनता है, जब उसमें कर्त्ता का घनिष्ठ तादात्म्य सम्मिलित हो। घनिष्ठता तभी हो पाती है, जब कर्त्ता तल्लीनतापूर्वक कार्य में संलग्न हो अर्थात कार्य के प्रति उसकी गहरी अभिरूचि हो। यह अभिरूचि ही कर्म में कुशलता लाती है तथा इस प्रकार की कुशलता ही कर्मयोग कहलाती है। इसी श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्मोद्योगाय युज्यसव योगः कर्मसु कौशलम्

श्रीमद्भगवद्गीता, 2/50)

अर्थात–समबुद्धियुक्त पुरूष पुण्य और पाप दोनो को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तु समत्वरूप योग में लग जा, यह समत्व रूप योग ही कर्मों की कुशलता है अर्थात् कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

यह वह स्थिति है, जिसमें योग का आनन्द और क्रिया का सत्परिणाम दोनों साथ–साथ प्राप्त होते है। जो कर्म मानव को जन्म–मरण के भवबन्धन सें बाहर निकालने में समर्थ बन जाते है, वही कर्मयोग कहलाता है। कर्मयोग का अर्थ है– सच्चाई के मार्ग पर, नीति और धर्म प्रतिश्ठा के मार्ग पर वीरोचित ढंग से बढ़ते हुए अपना इहलोक तथा परलोक को अपने शुद्ध अहं–भाव का विकास करते हुए धीरे–धीरे परमात्मा में मिला देना। कर्मयोग का पूरा नाम निष्काम कर्मयोग होता है, जिसका अर्थ है, फल की आसक्ति छोड़कर कर्म करना। इसी को श्रीमद्भगवद्गीता में इस प्रकार कहा गया है–

कर्मण्ये वाधिकरस्ते मा फलेषु कदाचन।

माकर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।

(श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47)

अर्थात्–तेरा कर्म करने में अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मो के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। यहाँ पर इच्छा का नहीं,

आसक्ति का निशेध किया गया है। परिणाम की इच्छा के बिना तो कोई कार्य किया ही नहीं जा सकता। इसलिए स्वाभाविक इच्छा अवश्य सम्भावी और आवष्यक भी है। निशेध उस आसक्ति का है, जिसके लोभ से कार्य–प्रणाली के गुण–दोशो की ओर से आँखे बन्द हो जाती है। कर्मयोग में निष्ठा और श्रद्धा दोनों तत्त्वों का एक साथ समावेष होता है। कर्मयोग का वास्तविक अर्थ है कि किसी भी काम को पूरी कुषलता के साथ कर्त्तापन का अभिमान छोड़कर किया जाए और उसके फल में निर्लिप्त, निस्पृह, अथवा अनासक्त रहा जाए।

कर्मयोग की परिभाषाः

कर्मयोग की परिभाषा निम्नलिखित है–

कठोनिशद् के अनुसार–

''योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।

स्थाणु मन्ये ऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम।।''

(कठोपनिषद् 2/2/7)

अर्थात् अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने ही जीवात्मा को शरीर धारण करने के लिए किसी देव, मनुष्य, पशु–पक्षी आदि योनि को प्राप्त होते है और कितने ही स्थापना और वृक्षादि योनियों को प्राप्त होते है।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार– ''जिसमें स्वार्थ और परमार्थ लोक और परलोक संसार की सेवा आत्म–कल्याण दोनों का समावेश समान रूप से होता है तथा अपने कर्तव्य के प्रति तल्लीनता तथा विषय जन्य भावनाओं के प्रति निरासक्ति ही कर्मयोग है।'' दूसरी परिभाशा इस प्रकार है ''कुषलता के साथ कर्तापन का अभिमान छोड़कर कर्म किया जाए और उसके फल में निर्लिप्त निस्पृह अथवा अनासक्त रहा जाए, जिसे न तो सफलता का अभिमान हो और न असफलता में निराष अथवा निरूत्साह।''

ईशोपनिषद् के अनुसार–

कुर्वन्नेवहे कर्माणि जिजीविशेच्दतं समाः।

ुएवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।'' (2)

अर्थात सर्वशक्तिमान परमेश्वर की सर्वव्यापकता को सतत् स्मरण रखते हुये उन्हीं की पूजा के निमित्त शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित कर्तव्य कर्मो को करते हुए ही इस संसार में सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। अर्थात् अपना सारा जीवन ईश्वर को समर्पण कर दो। ऐसा करने से वे कर्म तुझे बन्धन में नही डाल सकेगें। कर्म करते हुए कर्म से लिप्त न होने का यही एकमात्र उपाय है। कर्मबन्धन से मुक्त होने का अन्य कोई साधन नहीं है।

त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद के अनुसार–

''यत्संयोगो द्विजश्रेष्ठ स च द्वैविध्यमृनुते।

कर्म कर्तव्यमिव्येत विहितेश्वेव कर्मसु।।'' (2/25)

हे द्विज श्रेष्ठ सयोग भी दो प्रकार के होते है। कर्म और कर्तव्य द्वारा शास्त्रानुकूल कर्मो में मन को निरन्तर नियुक्त किये रहना कर्मयोग है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार – 'स्वार्थ से पर उठकर कुछ षास्त्र सम्मत एवं कुछ नैतिक दृष्टि से शुभ कर्मो को करना ही कर्म–मार्ग है।''

स्वामी रामसुख दास के अनुसार–''वर्ण आश्रम, स्वभाव और परिस्थिति के अनुसार जो षास्त्र विहित कर्तव्य–कर्म सामने आ जाय, उसको उस कर्म तथा उसके फल में कामना, ममता और अशक्ति का सर्वथा त्याग करके करना तथा कर्म की सिद्धि और असिद्धि में सम रहना कर्मयोग है।''

स्वामी आत्मानन्द के अनुसार–''जब कर्म अपने लिये न करके दूसरों के हित के लिये किया जाता है, तब वह कर्मयोग कहलाता है।''

शंकराचार्य के अनुसार –''कर्मयोग ज्ञान प्राप्ति का साधन मात्र है वह परमार्थ की प्राप्ति का अलग से स्वतंत्र मार्ग नहीं है।''

डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णनन के अनुसार–''कर्मयोग जीवन के लक्ष्य तक पहुँचने की एक वैकल्पिक पद्धति है और इसके अन्तर्ज्ञान होता है।''

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार– ''निःस्वार्थ कर्म द्वारा मानव जीवन की परमा वस्था इस मुक्ति का लाभ कर लेना ही कर्मयोग है।''

आचार्य बिनोवा भावे के अनुसार–''कर्मयोग में फलत्याग तो है परन्तु प्रश्न यह उठता है कि फिर फल मिलता भी है या नहीं कर्मयोग के फल को छोड़ने से कर्मयोगी उल्टा अनंत गुना फल प्राप्त करता है।''

स्वामी शिवानन्द जी के अनुसार– कर्म दुखदायी नहीं है बल्कि कर्म के प्रति जो आषक्ति है वह दुखदायी है कर्म का रहस्य समझो और कम अनाशक्ति रहित होकर कर्म करो तो कर्म योग शीर्घ फलित होगा एवं ईश्वरीय भावना शीर्घ प्राप्त होगी।''

कर्मयोग का स्वरूप

कर्मयोग का स्परूप व्यक्ति को आत्मा के प्रकाश का दर्शन कराता है। कर्मचारी ज्ञान प्रकाश ग्रहण करने के लिए चित्त की पात्रता निर्माण करता है वह हृदय को विशाल बनाता है। जब हम किसी की सेवा निष्काम भाव से भावना पूर्वक करते है। इस प्रकार आत्म निरीक्षण, आत्म सुधार आत्म निर्माण और आत्म विकास ही कर्मयोग का सच्चा स्वरूप है।

श्शरीर की क्रियाषक्ति और मस्तिश्क की प्रखरता को नश्ट करने में आलस्य–प्रमाद से बढ़कर और कोई षत्रु नहीं है। इसलिए कर्मयोग की साधना में सर्वप्रथम और सबसे महत्वपूर्ण स्थान आलस्य और प्रमाद को निरस्त करना होता है। समय को बहुमूल्य समझकर एक–एक क्षण का पूरा सदुपयोग करने के लिए श्रम में संलग्न रहना होता है। कर्मयोग की साधना में कर्म स्वार्थ–सिद्धि के लिए नहीं, ईष्वर–प्रेम के लिए किया जाना चाहिए। जब तक कर्म में उच्चतम उद्देष्य एवं महान् आदर्ष का समावेष नहीं होगा, उसका कर्मयोग बनना संभव नहीं है।

कर्म के प्रकार

विभिन्न ग्रन्थों में कर्म के प्रकारों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है–वैदिक ग्रंथों में कर्म के दो प्रकार बताये गये है–

1 विहित कर्म 2 निषिद्ध कर्म

1 विहित कर्म – वह कार्य जो करने योग्य है जिसमें अच्छाईयाँ निहित है। इसके चार भेद बताये गये है।

(क) नित्य कर्म, (ख) नैमित्तिक कर्म

(ग) काम्य कर्म (घ) प्रायश्चित कर्म

(क) नित्य कर्म– वह कार्य जो नित्यप्रति अनुश्ठान के रूप में किये जाते है, वह नित्य कर्म हैं। जैसे दिनचर्या के सारे कार्य।

(ख) नैमित्तिक कर्म– किसी उद्देश्य के लिये किये गये कर्म को नैमित्तिक कर्म कहते है। जैसे – जन्मदिन, दाह–संस्कार, मुंडन संस्कार आदि कर्म कार्य।

(ग) काम्य कर्म– वह कर्म जो किसी कामना या इच्छा की पूर्ति के लिये किया जाये वह काम्य कर्म कहलाता है।

(घ) प्रायश्चित कर्म–वह कर्म जो किसी पाप कर्म के बदले किया जाये या गलत कार्यो के परिणाम से मुक्ति पाने के लिये किया जाये उसे प्रायश्चित कर्म कहते है।

2 निषिद्ध कर्म– जिस कार्य को नहीं करना चाहिये। निशिद्ध कर्म को दुष्कृतय या पाप कर्म कहते है। वैसे कर्म जो शास्त्रों के अनुसाार अनुचित हो उसे निषिद्ध कर्म कहते है।

उपनिषद् में तीन प्रकार के कर्म बताये गये है

(1) संचित कर्म (2) क्रियमाण कर्म, (3) प्रारब्ध कर्म

1. संचित कार्य– वह कर्म जो हमारे पूर्व जन्मों को क्रिया–कलापों के द्वारा संचित रहते हे, इकट्ठे रहते है, वह संचित कर्म कहलाते है।

2. क्रियमाण कर्म– वह कर्म जिसके द्वारा हम अपने जीवन क्रम को चलाते रहते है, वह क्रियामाण कर्म है।

3 प्रारब्ध कर्म– संचित कर्म का परिणाम प्रारब्ध कर्म हैं प्रारब्ध यानि पिछले जन्म के संस्कार, जो बलवान बन कर सामने आते है, उसे ही प्रारब्ध कर्म कहते है।

गीता में तीन प्रकार के कर्म बतायें गये है

1. कर्म, 2. अकर्म, 3. विकर्म

1. कर्म– कर्म यानि शास्त्रों में वर्णित कर्मो को करना। योग में आगे बढ़ने के लिये यही कर्म किये जाते हैं

2. अकर्म– इसमें हर तरह के कर्म आते है जो अनासक्त भाव से किया जायें चाहे वह शास्त्र के विरूद्ध ही क्यों न हो।

3. विकर्म – इसे पाप कर्म कहा गया है।

पतंजलि सूत्र के अनुसार कर्म चार प्रकार के होते है

1 शुक्ल कर्म अर्थात पुण्य कर्म।

2 कृष्ण कर्म अर्थात पाप कर्म।

3 शुक्ल–कृष्ण कर्म अर्थात पाप पुण्य मिश्रित कर्म।

4 योगियों के कर्म इन तीनों से भिन्न होते है। क्योंकि उसका चित्त कर्म संस्कारों से षून्य होता है। इसलिए उनकर्मो को अशुक्ल और अकृष्ण कहते है।

कर्मयोगी के लक्षण

कर्मयोगी का हृदय विशाल होता है। उनमें उदार भावना सज्जनता, उत्कृष्टता और निःस्वार्थ की भावना कूट–कूट कर भरी होती है। वह काम, क्रोध, मद, लोभ आदि दुर्गुणों से रहित होता है। उसका स्वभाव मिलनसार तथा समाज सेवी होता है। उसे जाति, धर्म या वर्ण के विचार बिना हर एक व्यक्ति के साथ मिलना चाहिए। उसमें सहनशीलता, सहानुभूति, विश्व–प्रेम, दया और सबमें मिल जाने की सामर्थ्य होनी चाहिए। उसमें दूसरों के स्वभाव और रीति के संयोग रखने का क्षमता, उपस्थिति बुद्धि, मन शान्त और सम होना चाहिए। उसे दूसरों की उन्नति में प्रसन्न चित्त तथा इन्द्रियों पर संयम होना चाहिए। ऐसा ही मनुष्य अच्छा कर्मयोगी बन जाता है तथा अपने लक्ष्य को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त कर लेता है। कर्मयोगी निरन्तर निःस्वार्थ सेवा से अपनी चित्त की शुद्धि कर लेता है। देश–सेवा, समाज'–सेवा, दरिद्र–सेवा, मातृ–सेवा, पितृ–सेवा, गुरू–सेवा यह सब कर्मयोगी के ही अन्तर्गत आता है। वह अहंकारहीन होकर कर्मफल की आशा न रखता हुआ कार्य करता है।

इस प्रकार हम देखते है कि विश्व की प्राचीनतम संस्कृति भारतीय संस्कृति की सतत् प्रवाहमान निर्झणी के ज्ञान–विज्ञान की अनेकों धाराएँ है, जो समस्त विश्व मानवता के कल्याण हेतु सनातन प्रवाहित होती रहेगें, परन्तु इन समस्त विद्याओं में सर्वाधिक व्यावहारिक एवं सरल महत्वपूर्ण विद्या कर्मयोग साधना ही रही है। कर्म में और उनके फलों में आसक्ति से व्यक्ति कर्मचारी साधना ही रही है। कर्म में और उनके फलों में आसक्ति से व्यक्ति कर्मो के बंधन में बंधता है। कार्य में बाधा उत्पन्न होने पर उसे कष्ट होता है क्योंकि उसके फलों में आसक्ति है परंतु साधक जब कर्म फलों की आसक्ति त्याग देता है तो वह आसक्ति रहित कर्म हो जाता है। कर्मयोगी को सफलता और असफलता से कोई लगाव नहीं रहता। कामना से रहित हो कर कर्म करने से मन की कामना शून्य हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप संसार के प्रति आसक्ति नष्ट हो जाती है तथा तब कर्म संस्कारों की उत्पत्ति नहीं करते, जिसके परिणाम स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अथर्ववेद
2. श्रीमद्भगवत गीता योगांक गीताप्रेस गोरखपुर।
3. वेदान्तसार, गीताप्रेस, गोरखपुर।
4. सम्पूर्ण योगविद्या, राजीव जैन, मंजुला पब्लिषिंग हाउस, मालवीय नगर, भोपाल।
5. पातंजल योग प्रदीप स्वामी ओमानन्दतीर्थ, गीता प्रेस गोरखपुर।
6. पातंज्लयोग सूत्र।
7. वेदान्तसार, सन्तनारायण, श्रीवास्तव, सुदर्शन प्रकाशन गाजियाबाद, 2005

8

जैन धर्म और योग

डॉ. जिनेन्द्र कुमार जैन

वर्तमान विश्व में अनेक धर्म एवं जीवन पद्धतियॉ प्रचलित हैं। प्रायः सभी धर्मों ने योग को आत्मसात किया है। ईसाई धर्म में प्रार्थना, ईस्लाम में नवाज, वेदॉत में आत्मोपासना, सॉख्य में यौगिक साधना, बौद्ध धर्म में विपश्यना, पतंजली ने अष्टॉग योग, एवं जैन धर्म में ध्यान के रूप में योग को स्वीकृति दी गई है। सिद्धॉत–भेद एवं मान्यता भेद के होने पर भी ध्यान को आत्म–कल्याण का प्रमुख अंग मानते हुए सभी धर्म निर्विवाद रूप से एक मत हैं।

औपनिषदिक एवं उसकी सहवर्ती श्रमण परम्परा अर्थात जैन धर्म व दर्शन में ध्यान का सर्वोपरि स्थान है। ध्यान, जैन धर्म के आधारभूत सिद्धांतों के अन्तर्गत है इसके अभाव में मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है। जैन धर्म के उदय व अस्तित्व से ध्यान जुड़ा हुआ है। जैन संस्कृति में ध्यान के महत्व का सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण यह है कि मौर्य काल से वर्तमान तक जो भी तीर्थंकर प्रतिमाऍ प्राप्त हुईं है वह ध्यान मुद्रा में ही प्राप्त हुई हैं जो पद्मासन एवं खडगासन मुद्रा में ही होती हैं। जैन ग्रन्थ समण सूक्त में ध्यान के महत्व के विशय में लिखा है कि मनुश्य के शरीर में जैसे सिर महत्वपूर्ण है, वृक्षों में जड़ महत्वपूर्ण है, वैसे ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है।[1]

जैन धर्म में ध्यान और योग

जैन धर्म में ध्यान को जिस सैद्धांतिक स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है वैसा ही योग दर्षन में योग को परिभाशित किया गया है। पतंजली ने योग सूत्र में लिखा है–योगश्चित्तवृतिनिरोधः[2] अर्थात चित्त वश्त्तियों का निरोध होना योग है। उसी तरह जैन दर्षन में ध्यान को स्पष्ट करते हुए देवसेनकृत भावसंग्रह में वर्णित है–चित्त–णिरोह झाणं अर्थात चित्त के निरोध का नाम ध्यान है। जैन सैद्धांतिक ग्रंथों में प्रतिष्ठित तत्वार्थ सूत्र में

सूक्त है– उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानमान्तर्मुहर्तात[3] अर्थात चिन्ता का निरोध हो जाना ही ध्यान है। चित्त अथवा मन की चंचलता समाप्त करना जैन साधना और योग साधना दोनों का लक्ष्य है। आदि पुराण के रचयिता जिनसेन कहते हैं–

योगो ध्यानं समाधिष्च धीरोधः स्वान्त निग्रहःIअंतः संलीनता चेति तत्पर्यायाः स्मश्ता बुधे'' II[4]

योग, समाधि, बुद्धि–निरोध, स्वान्तनिग्रह, अन्तः संलीनता ये ध्यान के पर्यायवाची हैं। योग अर्थात चित्त का निरोध, समाधि–चित्त की स्थिरता, धी निरोग– बुद्धि से चिन्तनरहित होना, स्वान्तःनिग्रह– अपने अन्तःकरण में सलीन होना ध्यान है अर्थात् मन, चित्त, बुद्धि और अहं का निरोध–निग्रह होना ध्यान है। इस तरह ध्यान और योग दर्शन का योग पर्यायवाची हो जाते हैं। जैन दर्शन में अभ्यंतर तप के पॉच प्रकार हैं– प्रायष्चित, विनय, वैयावश्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग या कायोत्सर्ग, और ध्यान।[5] इस तरह जैन धर्म में ध्यान तप के अन्तर्गत पॉचवा ऑतरिक तप है, वहीं योग दर्शन में आठ अंगों में ध्यान का स्थान सातवॉ है। योग दर्षन के अनुसार ध्यान से ही समाधि की सिद्धि होती है, जैन दर्शन के अनुसार भी ध्यान मोक्ष या मुक्ति का कारण है। जैन दर्शन के अनुसार कर्मों की निर्जरा (क्षय होना) हो जाना मोक्ष है।[6] निर्जरा का मुख्य हेतु ध्यान है।[7] आत्मा का परम प्रयोजन मोक्ष है और वह मोक्ष ध्यान साधना है इसलिए परम पुरूशार्थ (मोक्ष) की सिद्धि का उपाय ध्यान है।[8] दोनों ही दर्शन के ध्यान का लक्ष्य मोक्ष ही है।

जैन धर्म में ध्यान एवं योग विषयक साहित्य

जैन धर्म में ध्यान एवं योग विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की गई हैं। योग पर स्वतंत्र रूप से ग्रंथों का सृजन भी किया गया है जो अपेक्षाकष्त अल्प है। जैन ध्यान पर दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही आम्नायों के सभी सैद्धांतिक ग्रंथों में विवरण व विमर्श उपलब्ध है। मुख्य ग्रन्थों में आचारंग सूत्र, सूत्रकश्तॉग सूत्र, स्थानॉग सूत्र, तत्वार्थ सूत्र, पंचास्किाय, पाहुण, भावसंग्रह, तत्वार्थवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, धवला, भगवती आराधना, उपासक दशांग, उत्तराध्ययन सूत्र, द्रव्य संग्रह, आवश्यक निर्युक्ति व आदिपुराण आदि हैं। जैन योग पर स्वतंत्र रूप से भी जैन आचार्यों ने ग्रंथों की रचना की। उनमें आचार्य हरिभद्रसूरि, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य शुभचंद्र, योगीन्दु, तथा यषोविजय आदि मुख्य हैं। हरिभद्र सूरिप्रथम मनीशी माने जाते हैं जिन्होने जैन योग को एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होने संस्कृत में योगदृष्टि समुच्चय, योगबिन्दु तथा प्राकृत में योग शतक और योगविंशिका नामक ग्रंथों की रचना की। आचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र, योगिन्दु ने योगसार एवं जिनभद्र ने ध्यान शतक व ध्यानस्तव ग्रंथ की रचना की।

जैन धर्म और अष्टांग योग

योग दर्शन के अनुसार ध्यान से ही समाधि की सिद्धि होती है, जैन दर्शन के अनुसार भी ध्यान मोक्ष या मुक्ति का कारण है। योग एवं जैन दोनों ही दर्शनों के अनुसार ध्यान पर एकाएक नहीं पहुँचा जा सकता बल्कि इसकी पात्रता प्राप्त करने के लिए योग दर्शन में यम, नियम, आसन, आसन, प्राणयाम एवं प्रत्याहार, बौद्ध दर्शन में षील एवं जैन दर्शन में अणुव्रत, महाव्रत, तप, दस धर्म आदि का का आचरण अपेक्षित है। महर्षि पतंजली के योग दर्शन पर पर्याप्त शोध कार्य हुए हैं जैन एवं बौद्ध परम्परा में योग पर भी अनुसंधान किए जा रहे हैं। पतंजली के योग दर्शन या अष्टॉग योग के आलोक में जैन धर्म व दर्शन को यहॉ प्रस्तुत किया जा रहा हैः

योग दर्शन चार पाद में विभाजित है–समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद एवं कैवल्यपाद प्रथम पाद का मुख्य विषय चित्त (मन) की विभिन्न वृत्तियों का नियमन से समाधि के द्वारा आत्म साक्षात्कार करना है। जैन दर्षन में भी मन, वचन व काय की क्रियाओं के योग से कर्मों का आस्रव एवं उनका बंधन बताया गया जो दुखों का कारण है।[9] इसमें मन की प्रधानता होती है वचन एवं काय की क्रियाएँ मन पर ही आधारित होती है। जब मन पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है तब वचन एवं कायिक क्रियाएँ स्वयमेव ही नियंत्रित हो जाती हैं। आस्रव रूक जाता है, और नियम पालन व ध्यान से फिर आत्मा कर्म मुक्त हो जाती है, अर्थात समाधि पूर्ण हो जाती है। जैन ग्रंथ उत्तराध्ययन में मन को दुष्ट अश्व की संज्ञा दी गई है जिसको नियंत्रित करने के लिए श्रुत रूपी लगाम की आवष्यकता है। यदि अष्व पर नियंत्रण नहीं किया तो वह सवार को बीहड़ में पहुँचा देगा, लेकिन यदि लगाम से सही नियंत्रण स्थपित किया गया तो वह यथा समय एवं यथा गन्तव्य पहुँचा देगा। मन को सही दिशा या सम्यक मार्ग मिल जाये तो वह प्रचण्डतम उर्जा का संवाहक बन कर परमात्म–साक्षात्कार का माध्यम भी बन सकता है। मन को एक प्रशस्तम शक्ति के रूप में देखा जाए, उसे शत्रु नहीं परम प्रिय मित्र माना जाए तो वह मित्रवत ही कार्य करेगा, लेकिन वह चंचल है, उस पर नियंत्रण आवश्यक है। मन चंचल नहीं होता तो क्रोधी क्रोध पर, मानी मान पर आदि पर ही चिपक जाता, किन्तु ऐसा नहीं होता है। मन अपनी गति को रोकता नहीं है, उसे विश्रांति नहीं मिलती। इसका अर्थ यह नहीं है कि मन विश्रांति नहीं चाहता है। वह विश्रांति चाहता है किन्तु वह अपूर्ण में नहीं रूकना चाहता है। वह सदा परिपूर्णता की खोज में भटकता रहता है। वह पूर्णता में समाहित–अवगाहित होना चाहता है। वह अधूरी नहीं, पूर्ण समता चाहता है। वह एकात्मा से नहीं, समस्त चराचर या परमात्मा के साथ एकाकार होना चाहता है। मन को छोटी उपलब्धियों में नहीं परम अध्यात्म, परम आनंद की सरिता में गोता लगाने के लिए काशायिक वृत्ति से रहित यथावस्थित वस्तु का अवलोकन करते हुए अविनश्वर परम साध्य पर छोड़ दें, फिर वह अन्यत्र नहीं जा पायेगा। महावीर ने मन के अज्ञान एवं अविवेकपूर्वक दमन पर नहीं, संयमन पर जोर दिया है। संयमन का अर्थ है कि राग–द्वेष की वृत्ति से उपरत होना, उनसे विलग होकर चलना।[10]

योग दर्शन में चित्त या मन की पॉच अवस्थाऍ मानी गईं हैं तो जैन दर्शन में चार अवस्थाओं को मान्यता दी गई है। योग दर्षन में मन की पॉच अवस्थाऍ हैं– क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरूद्ध। क्षिप्त अवस्था में चित्त पर रजो गुण का प्रभाव रहता है, इसमें स्थिरता नहीं होती है और वह एक से दूसरे विषय पर दौडता रहता है। मूड में तम का प्रभाव होता है जिससे निद्रा, आलस्य, अंधकार, आदि का उदय होता है। विक्षिप्तावस्था में सत्व की प्रधानता रहती है किन्तु कभी–कभी रज भी क्रियाशील हो जाता है जिससे चित्त अधि ाक समय तक एक विषय पर स्थिर नहीं रह पाता है। ये तीनों ही अवस्थाऍ योग के अनुकूल नहीं हैं। एकाग्र अवस्था में चित्त देर तक किसी विषय पर टिका रहता है। इसमें पूर्णतया सत्व का प्रभाव होता है तथा रज एवं तम नियंत्रित हो जाते हैं। अंतिम तथा सर्वोच्च अवस्था निरूद्ध की है, जिसमें चित्त की सभी वृत्तियों का लोप हो जाता है तथा वह अपनी स्वाभाविक दषा को प्राप्त होता है। अंतिम दो अवस्थाऍ ही योग के अनुकूल हैं। जैन धर्म में मन की चार अवस्थाऍ मानी हैं– विक्षिप्त मन, यातायात मन, शिलिष्ट मन एवं सुलीन मन।[11] विक्षिप्त मन, मन की अस्थिर अवस्था है, इसमें चित्त चंचल होता है, बाह्य विषय इसके आलंबन होते हैं, इस अवस्था में मानसिक शॉति का अभाव होता है। मन पूर्ण रूप से बर्हिमुखी होता है। यातायात मन, कभी स्थिर अवस्था में होता है तो कभी भटकने लगता है। कुछ समय स्थिर रहकर पुनः बाह्य विषयों के संकल्प–विकल्प में उलझ जाता है। यह ध्यान लगाने या योग करने करने की प्रथम अवस्था है। ष्लिशट मन, यह मन की स्थिर अवस्था है। इस अवस्था में चित्त की स्थिरता का आधार विशय होता है। इसमें जैसे–जैसे स्थिरता आती है, आनंद बढता जाता है। सुलीन मन, यह मन की वह अवस्था जिसमें संकल्प–विकल्प एवं मानसिक वृतियों का लय हो जाता है। इसको मन की निरूद्धावस्था भी कहा जा सकता है। यह परमानंद है, क्योकि इसमें सभी वासनाओं का विलय हो जाता है। जैन दर्षन का विक्षिप्त मन, योग दर्शन के क्षिप्त और मूढ़ के समान अर्थों में है। इसी प्रकार जैन दर्षन का यातायात मन, योग दर्शन के विक्षिप्त चित्त के समानार्थक है। दोनों के अनुसार इस अवस्था में चित्त में अल्पकालिक स्थिरता आती है तथा वासनाओं के वेग में थोड़ी कमी अवश्य होती है। इसी प्रकार जैन दर्शन का शिलष्ट मन, योग दर्षन के एकाग्र चित्त के समान है। चित्त की अंतिम अवस्था जिसे जैन दर्शन अनुसार सुलीन मन एवं योग दर्षन में निरूद्ध चित्त कहा गया है समान अर्थ के द्योतक हैं। इसमें वासना, संस्कार एवं संकल्प–विकल्प का पूर्ण अभाव हो जाता है। ध्यान–साधना का लक्ष्य चित्त की इस वासना, संस्कार–विकल्प से रहित अवस्था को प्राप्त करना है। जैनाचार्य हेमचन्द्र कहते हैं कि क्रम से अभ्यास बढ़ाते हुए अर्थात विक्षिप्त से यातायात चित्त का, यातायात से श्लिष्ट का और ष्लिशट से सुलीन चित्त का अभ्यास करना चाहिए। इस तरह अभ्यास करने से निरालम्बन ध्यान होने लगता है। निरालम्बन ध्यान से समत्व प्राप्त करके परमानंद का अनुभव करना चाहिए। योगी को चाहिए कि वह बहिरात्मभाव का त्याग करके अन्तरात्मा के साथ सामीप्य स्थापित करे और परमात्ममय बनने के लिए निरंतर परमात्मा का ध्यान करे।[12] मन को इस तरह दिषा देने या आत्मशक्ति के केन्द्रीकरण एवं उसे सम्यक दिशा में नियोजित करने के

लिए ध्यान–साधना आवश्यक है जिससे आत्मा, कर्म रूपी मल एवं आवरण से मुक्त होकर अपनी शुद्ध निर्विकार ज्ञाता–दृष्टा अवस्था को प्राप्त हो जाता है। ध्यान इसी समत्व या समाधि को प्राप्त करने की साधना है।

मन (चित्त) का नियंत्रण एवं अनुप्रेक्षा :– चंचल मन से उत्पन्न भले–बुरे विचारों से व्यक्ति को अनेक प्रकार के मानसिक कष्टों, आकुलताओं एवं व्यग्रता का सामना करना पड़ता है। इनके निवारण हेतु जैन दर्शन में बारह अनुप्रेक्षाओं या भावनाओं को प्रस्तुत किया गया है। इन बारह अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन से आत्मा मे तत्व ज्ञान की जागृति होती है एवं अपूर्व मानसिक शॉति प्राप्त होती है। बारम्बार चिन्तवन करने के कारण इन्हे अनुप्रेक्षा कहा गया है। अनित्य, अषरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म एवं बोधिदुर्लभ।[13]अनित्य भावना– इस भौतिक संसार में कुछ भी नित्य नहीं है, सामग्री, इंन्द्रियॉ, रूप, बुद्धि, यौवन, जीवन, बल, तेज, घर, आनंद, सुख, धन–सम्पत्ति आदि सब अनित्य हैं ऐसा चिन्तवन करना अनित्य भावना है। अशरण भावना– जन्म जरा मरण आदि दुखों से सहित इस जगत में जरा और मरण रूप महाशत्रु का निवारण करने वाले ऐसे जिनषासन को छोड़कर अन्य कोई शरण नहीं है अन्य कोई रक्षक नहीं है। एकत्व भावना– अकेला ही जीव कर्म करता है एकाकी ही दीर्घ संसार में भ्रमण करता है, अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। इस प्रकार का चिन्तवन करना। अन्यत्व भावना– जब यह शरीर भी आत्मा से भिन्न है तो क्या यह वाहन, द्रव्य, गश्ह आदि क्या भिन्न नहीं होगें? अर्थात वे प्रकट रूप से भिन्न हैं इसलिए ज्ञान दर्शन रूप मेरी आत्मा ही है। संसार भावना– संसरण करना, परिवर्तन होना संसार है। संसार क्या है? किसके हैं और कहॉ है? कितने काल तक है और कितने प्रकार का है? इन छह अनुयोगों से चिन्तवन करना। विविध प्रकार के दुखों का स्थायी अवस्था रूप होना ही जिसका सार है ऐसे अनेक भेद रूप इस संसार को समझकर शीघ्र ही यह निःसार है, ऐसा चिन्तवन करना। लोक भावना– तीन लोक की रचना का चिन्तन करना और उसमें किस प्रकार जीव भ्रमण करता है इसका विचार करना। अशुचि भावना– यह षरीर हड्डी, मॉसादि वस्तुओ का पिण्ड है यह कभी मोह या राग करने योग्य नहीं है। आस्रव भावना– मन, वचन व काय की क्रियाओं से कर्मो का आगमन होता है जो दुख देते हैं। संवर भावना– दुख के लिए उत्तरदायी कर्मो के आगमन को रोकने के प्रयास या नियमों का पालन संवर है– दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, पॉच व्रत आदि। निर्जरा भावना– संवर का पालन करने से कर्मों का क्षय होने लगता है यह निर्जरा है। धर्म भावना– क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिन्चन्य एवं ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं। बोधिदुर्लभ भावना–जीवों के सम्यकदर्शन ज्ञान चारित्र रूप बोधि की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है। बोधि से छह द्रव्य व नवतत्व आदि जाने जाते हैं। इस तरह हजारों गुणों से सहित बोधि का सदा ध्यान करना।[14]उल्लिखित द्वादशानुप्रेक्षा के चिन्तन से आत्मा में तत्व ज्ञान की जागृतिपूर्वक अपूर्व मानसिक शॉति प्राप्त होती है एवं संसार से वैराग्य की उत्पत्ति तथा उसमें दश्ढता की पुष्टि होकर कर्मो का संवर होता है। इनका चिन्तन अपने पुरूषार्थ की सिद्धि (मोक्ष) में परम सहायक बन जाता है। योग, मात्र शारारिक रूप से स्वस्थ ही नहीं

बल्कि मानसिक एवं सामाजिक दृष्टि से भी मनुष्य को पूर्ण करता है। यदि व्यक्ति का मन ही संतुलित नहीं है तो आसनों का ज्यादा महत्व नहीं। मनोविकारों के बिना त्याग के काय, वाक् और मन में स्थैर्य नहीं आ सकता और न ही समता प्रस्फुटित हो सकती है।

योग दर्शन के द्वितीय पाद में परमोच्च अवस्था को प्राप्त करने के पॉच बहिरंग साधन – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहार बताए गए हैं। तृतीय पाद में अंतरंग तीन धराण, ध्यान व समाधि का वर्णन है। कैवल्यपाद मुक्ति की सर्वोच्च अवस्था है।

यम व जैन दर्शन :– योग दर्शन में यम से तात्पर्य निवशति से है। इसके पॉच अंग हैं–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। जैन दर्शन ये प्रख्यात पॉच व्रत हैं जिन्हे योग दर्षन ने प्रमुखता प्रदान कर आधारभूत प्रथम अंग में स्थान दिया है। किसी प्राणी मात्र को मन, वचन, काय से उसके शरीर या मन को कष्ट पहुँचाना हिंसा है।[15] हिंसा का त्याग ही अहिंसा है। यदि किसी प्राणी को मारने या सताने भाव भी कर लिया व वह मरा नहीं न ही सताया जा सका फिर भी भाव हिंसा होती है। बिना प्रमाद के अगर जीव मर जाता है तो हिंसा नहीं होती है। रागादि के द्वारा असत्य बोलने का त्याग करना और पर को ताप पैदा करने वाले वचनों का त्याग करना सत्य व्रत है।[16] जब भी बोले तब सावधानी से बोलना चाहिए कि मुख से कोई ऐसी बात न निकल जाए जो दूसरों को कृटकर हो। प्रमाद के योग से बिना दी हुई किसी वस्तु के ग्रहण करने को चोरी कहते हैं। चोरी भी हिंसा का अंग है क्योंकि इसमें जिसकी वस्तु चुराई जाती है, उसको दुख होता है। चोरी के त्याग को अचौर्य कहते हैं।[17] बृद्धा, बाला एवं युवती के भेद से तीन प्रकार की स्त्रियों एवं उनके प्रतिरूप को माता, पुत्री, और बहिन के समान देखना एवं उनके प्रति काम का भाव नहीं लाना। स्त्री राग कथा–श्रवण त्याग, उनके सुन्दर अंगों को देखने का त्याग, अव्रती अवस्था में किए गए भ्रगों–विषयों के स्मरण का त्याग, कामवर्द्धक रस का त्याग, अपने शरीर के कामोद्दीपक संस्कारों का त्याग करना आदि निवृति है, वह ब्रह्मचर्य महाव्रत है।[18] गृहस्थ के लिए अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य समस्त स्त्रियों के साथ काम भाव का त्याग ब्रह्मचय अणुव्रत है।[19]

नियम और जैन दर्शनः– योग दर्शन में नियम से तात्पर्य सदाचार के पालन से है। मनुष्य को कर्त्तव्य परायण बनाने एवं जीवन को सुव्यवस्थित करने हेतु नियमों का विधान किया गया है। इनमें निम्नलिखित आचरण हैं– शौच (पवित्रता), संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईष्वर की आराधना करना आदि। जैन धर्म में उक्त उद्देश्यों के अन्तर्गत आठ मूल गुण, बारह उत्तर गुण, छह कर्त्तव्य, एवं दस धर्मो का पालन का निर्देश है। श्रावकों (गृहस्थों) के लिए जैनाचार्यों ने आठ मूलगुण का निर्धारित किया। विभिन्न आचार्यो ने अलग–अलग आठ मूलगुण निष्चित किये। रत्नकरण्ड, श्रावकाचार में मद्य, मांस, मधु, हिंसा, असत्य, चोरी, कुषील एवं परिगृह का त्याग ये आठ मूल गुण बताएं है।[20] उत्तरगुण बारह प्रकार के बतलाए हैं, पॉच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। हरिवंश पुराण में गृहस्थों को मद्य, मांस, मधु, जुआ, रात्रि भोजन, परस्त्रीगमन व वेश्यागमन से विरक्त होना नियम कहा है।[21] प्रशस्त

कार्यों (दानपूजा व व्रतादि) में प्रवृत्ति करना और अप्रशस्त (निन्द्य) कार्यों (मिथ्यात्व) के त्याग करने को गृहस्थों का व्रत कहा गया है।

सागरधर्मामष्त में वर्णित है कि एक आदर्श गृहस्थ वही है है जो न्यायपूर्वक आजीविका उपार्जन करता है। हितकारी और सत्यवाणी बोलता है। धर्म, अर्थ और काम पुरूशार्थों का परस्पर अविरोध से सेवन करता है। इन पुरूशार्थो के योग्य स्त्री, भवन आदि को धारण करता है। लज्जाशील होता है, अनुकूल आहार विहार करने वाला होता है। सदाचार को अपने जीवन की विधि मानने वाले सत्य पुरूषों की सेवा में सदा तत्पर रहता है। हितहित विचार में दक्ष, जितेन्द्रिय और कृतज्ञ होता है। धर्म की विधि को सदा सुनता है उसका मन दया से द्रवीभूत रहताहै तथा पाप भीरू होता है। उक्त चौदह विशेषताओं से भूशित व्यक्ति ही एक आदर्श गृहस्थ की श्रेणी में समाविष्ट होता है।[22] गृहस्थो के छह कर्तव्य भी निश्चित किए गए हैं, देवपूजन, गुरू की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये गश्हस्थों के छह धार्मिक कर्त्तव्य हैं।[23] उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य एवं उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस धर्म है।[24] (1) उत्तम क्षमा– क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी क्रोध नही करना उत्तम क्षमा है। क्षमा कायरता नही है। अपितु सच्ची वीरता है। मन मे कलुशता न आने देना उत्तम क्षमा है। (2) उत्तम मार्दव–चित्त मे मष्दुता और व्यवहार मे विनम्रता मार्दव है, जाति, कुल, रूप, ज्ञान, तप, वैभव, प्रभुत्व और ऐष्वर्य संबधी अभिमान मद कहलाता है। इन्हे विनष्वर समझकर मान कशाय को जीतना उत्तम मार्दव कहलाता है। (3) उत्तम आर्जव : आर्जव का अर्थ है ऋजुता या सरलता, मायाचार का त्याग, माया कशाय को जीतकर मन वचन और काय की क्रिया मे एकरूपता लाना उत्तम आर्जव है। (4) उत्तम शौच– शौच का अर्थ होता है–पवित्रता या सफाई, मद, क्रोध आदि बढाने वाली इतनी दुर्भावनाएँ है उनमे लोभ सबसे प्रबल है इस लोभ पर विजय पाना ही उत्तम शौच है। (5) उत्तम सर्त्य–यथार्थ बोलना सत्य है। दूसरो के मन में संतान उत्पन्न करने वाले, निश्ठुर और कर्कष, कठोर वचनो का त्याग कर, सबके हितकारी और प्रिय वचन बोलना उत्तम सत्य धर्म है। (6) उत्तम संयम : पाँचो इंद्रियो की प्रवृत्तियो पर अंकुश रखकर उनकी अनर्गल प्रवृत्तियो पर नियंत्रण रखना उत्तम संयम है। (7) उत्तम तप–इच्छा के निरोध को तप कहते है। तप धर्म का प्रमुख उद्देश्य चित्त की मलिन वृत्तियो का उन्मूलन है। (8) उत्तम त्याग–परिग्रह की निवृत्ति को त्याग कहते है। बिना किसी प्रत्युपकार की अपेक्षा के अपने पास होने वाली ज्ञान–धन आदि संपदा को दूसरो के हित व कल्याण के लिए लगाना उत्तम त्याग है। (9) उत्तम आकिंचन्य– ममत्व के परित्याग को आकिंचन्य कहते है लौकिकता मे अनाशक्ति भाव उत्पन्न होना उत्तम होना आकिंचन्य धर्म है। (10) उत्तम ब्रह्मचर्य–ब्रह्म अर्थात आत्मा मे रमण करना ब्रह्मचर्य है। रागोत्पादक साधनों के होने पर भी उन सबसे विरक्त होकर आत्मोन्मुखी बने रहना उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है। क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच ये आत्मा के भाव है, जो क्रमशः क्रोधामान–माया–लोभ विकारो के अभाव मे प्रकट होते है। सत्य, संयम, तप और त्याग आत्म स्वभाव की प्राप्ति के उपाय है। आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य धर्मो का सार है।

आसन एवं जैन दर्शनः– यह शरीर की क्रिया है जिसमें उसे एक निश्चित स्थिति में रखा जाता है। यह शारीरिक अनुशासन है। इसके कई प्रकार है– पद्मासन, शीर्षासन व कायोत्सर्ग आदि। जैन धर्म में सामायिक और प्रतिक्रमण एक ही स्थान पर बैठकर कहा गया है। चारो दिशाओं मे तीन–तीन कुल बारह आवर्त और एक–एक चार प्रणाम कर अभ्यंतर और बाह्य परिग्रह रहित मुनि के समान खड्गासन या पद्मासन अवस्था मे मन, वचन, काय, षुद्ध रख सुबह, दोपहर और सायं के समय सामायिक करने वाला व्यक्ति सामायिक प्रतिमावान कहलाता है। जैन धर्म में मुख्यतः उपरोक्त दो ही बताए गए हैं। ध्यान एवं प्रतिक्रमण इन दो ही आसनों में होता है। मौर्य काल से वर्तमान तक जो भी तीर्थंकर प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं है वह ध्यान मुद्रा में ही प्राप्त हुई हैं जो पद्मासन एवं खडगासन मुद्रा में ही होती हैं।

प्राणायाम एवं जैन धर्मः– मन की चंचलता को रोकने व नाड़ी शोधन व जागरण के लिए श्वास और प्रश्वास का नियमन प्राणयाम है। आत्मा की अतल गहराइयों में जाने के लिए आचार्य महाप्रज्ञ प्राचीन जैन ग्रन्थों के आधार पर सार रूप में प्रेक्षा ध्यान को प्रस्तुत किया है। आचार्य ने प्रेक्षाध्यान के अन्तर्गत कई प्रयोग निर्दिश्ट किए हैं। 1. श्वास प्रेक्षा, 2. चैतन्य प्रेक्षा 3. शरीर प्रेक्षा 4. लेश्या ध्यान या रंगों का ध्यान 5. अनुप्रेक्षा स्वतः सूचन। प्रेक्षाध्यान के नियमित अभ्यास से प्रकृतिगत पद्धति सक्रिय बनती है और उसे स्वस्थ एवं प्रसन्न बनाती है। श्वास प्रेक्षा मन की एकाग्रता में वृद्धि करती है। यह मन को अधिक कार्य करने व अधिक उत्पादन बनाने में के लिए प्रशिक्षित करता है। श्वास प्रेक्षा से श्वसन सही होता है तथा मन अच्छे व बुरे के बीच विभेद व कारणों को सही सीखता है। शरीर स्वस्थ है तो मन स्वस्थ है। प्रेक्षा ध्यान हार्मान्स को संयाजित करता है फलतः व्यक्तित्व उन्नत बनता है।

कायोत्सर्ग प्रेक्षाध्यान का एक चरण है जो शिथिलीकरण की विधिवत एवं उन्नतिकारक प्रकिया है। कायोत्सर्ग परानुकम्पीनाड़ी तंत्र को सक्रिय बनाता और तनाव के मुल कारण को बदल देता है। कायोत्सर्ग शरीर के अतिरिक्त दबाब को दूर करने में सक्षम है और इससे षरीर व मन को गहन शिथिल स्थिति में ले जाया सकता है। कायोत्सर्गतनाव के दुष्प्रभावों से बचाता है। जैन ग्रन्थ मोक्षशास्त्र में ध्यान की परिभाषा में शारीरिक संगठन को प्रथम स्थान प्रदान करते हुए कहा है कि ध्यान के साधने के लिए व्यक्ति का दैहिक संहनन उत्तम कोटि का होना चाहिए।[26] इसका अर्थ यह नहीं कि सबल–प्रबल देह का धनी स्वाभवतः उच्च मनोबल का भी धनी होगा। पर इतना अवश्य है कि जिसका स्वास्थ्य समृद्ध है वह ध्यान साधना में सफल अपेक्षाकृत ज्यादा होगा। अस्वस्थ शरीर में मन का स्थिरता कम हामती है। इस प्रकार उत्तम सहनन के लिए भी प्राणायाम महत्वपूर्ण है।

प्रत्याहार एवं जैन धर्मः– इन्द्रियों के विषयों से हटाने का नाम प्रत्याहार है अर्थात भौतिक सुखों का त्याग करना। जैन धर्म में गृहस्थ के लिए क्रमशः त्याग के लिए ग्यारह सोपानों का प्रावधान किया है जिससे वह स्वयं को मुक्ति के मार्ग में स्थापित कर सके।

दर्षन, व्रत सामायिक, प्रोशध, सचित्त, त्याग, रात्रि भोजन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग ये श्रावक के ग्यारह श्रेणियाँ या प्रतिमाएँ कही है।[27] अपने–अपने दर्जे के गुण पहले–पहले दर्जे के गुणों सहित क्रम से बढते हुए रहते है अर्थात अगली प्रतिमा धारण करने वाले को पहले की प्रतिमाओ की क्रियाओ को भली प्रकार करना आवश्यक होता हैं। इन ग्यारह सोपानों से गृहस्थ अपने चारित्र का विकास करता है। एवं साधुओं दोनों के लिए अट्ठाईस मूल गुण निर्धारित किये गये है– पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, केश का लौंच, शठ आवश्यक क्रियाएँ, दिगम्बर अवस्था, स्नान न करना, भूमि कर सोना, दातून नही करना, खडे होकर भोजन करना, दिन मे एक बार भोजन करना। बारह तप और बाईस परीशह मिलाकर चौतीस उत्तर गुण होते है।[28] ध्यान की पात्रता प्राप्त करने के लिए उपरोक्त नियमों का पालन व विभिन्न त्याग की आवश्यकता होती है।

धारणा और जैन दर्शनः– चित्त को एक स्थान विषेश पर केन्द्रित करना धारणा है। धारण–ध्यान परस्पर अन्तर्संबंधित हैं। ध्यान के अन्तर्गत ही धारणा एक प्रक्रिया है। ध्यान के आलम्बन के प्रशस्त विषयों में परमात्मा या ईश्वर का स्थान सर्वोपरि है। जैन दार्शनिकों ने भी ध्यान के आलम्बन के रूप में वीतराग परमात्मा को ध्येय के रूप में स्वीकार किया है। जैन दर्शन में आत्मा और परमात्मा भिन्न नहीं हैं। आत्मा की शुद्ध दशा ही परमात्मा है। इसलिए जैन दर्शन में ध्याता और ध्येय अभिन्न हैं। साधक आत्मा ध्यान साधना में अपने ही षुद्ध स्वरूप को ध्येय बनाता है। आत्मा, आत्मा के द्वारा आत्मा का ही ध्यान करता है। ध्यान वह कला है जिसमें ध्याता अपने को ही ध्येय बनाकर स्वयं उसका साक्षी बनता है। हमारी वृत्यिॉ ही हमारे ध्यान का आलम्बन होती हैं और उनके माध्यम से हम अपना ही दर्षन करते हैं।[29] आचार्य देवसेन ने सर्व इन्द्रिय व्यापार के निग्रह को महत्व देते हुए कहा ध्यान वह प्रक्रिया है जिसमें एक ही पदार्थ का चिन्तन होता है अन्य का नहीं। वही ध्यान नाना विकल्पों से युक्त होकर चतुर्विधरूप को प्राप्त करता है जिसे आचार्य ने पिण्डस्थ, रूपस्थ पदस्थ और रूपातीत कहा है। पिडस्थ ध्यान– इसमें यह ध्यान किया जाता है कि आत्मा अत्यंत शुद्ध है उसमें से सफेद किरणें निकल रहीं हैं। रूपस्थ ध्यान– पिडस्थ ध्यान में स्वषरीर में स्थित अपने ही शुद्ध निर्मल आत्मा का ध्यान किया जाता है परन्तु रूपस्थ ध्यान में षरीर के बाहर स्वषुद्ध निर्मल अत्यंत दैदीप्यमान और शुद्ध स्वभाव आत्मा का ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है। पदस्थ ध्यान– समोवशरण में विराजमान अष्टप्रतिहार्य सहित अनन्त चतुष्टय सहित भगवान अरिहंत परमेष्ठी का ध्यान करना वह पदस्थ ध्यान है। एक पद मंत्र, एक अक्षर मंत्र, या अधिक अक्षरों के मंत्र का जप करना पदस्थ ध्यान है। जैनाचार्यो ने यह माना है कि इससे विभिन्न लब्धियॉ या अलौकिक शक्तियॉ प्राप्त होती है, किन्तु वे साधक को उनसे दूर रहने का रहने का ही निर्देश देते हैं, क्योंकि उनका लक्ष्य चित्त को एकाग्र करना है, न कि भौतिक उपलब्यिॉ प्राप्त करना। यह कर्मों का नाश करने करने का साधन है। रूपातीत ध्यान– जहॉ न शरीर में स्थित शुद्ध आत्मा का चिन्तन होता और न शरीर के बाहर, न स्वगत आत्मा का ध्यान और न ही पंचपरमेश्ठी का ध्यान किन्तु आलम्बन के किसी

पदार्थ का ध्यान होता है अपने चित्त को अन्य समस्त चिन्तनों से हटाकर किसी एक पदार्थ में लगता है वहॉ रूपातीत ध्यान होता है। रूपातीत ध्यान करने वाला योगी अपने आत्मा को अपने ही आत्मा में लीन कर लेता है। जहॉ ध्यान में इन्द्रियों के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं रागद्वेष का अभाव हो जाता है वहॉ रूपातीत ध्यान होता है।[30]

ध्यान–समाधि और जैन दर्शन

"ध्यैचिन्तायाम" धातु से ध्यान शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है चिन्तन/एक विषय में चिन्तन को स्थिर करनात्यागो ध्यानम अर्थात ध्यान है। चित्तविक्षेपचित्त विक्षेप त्याग ध्यान है।[31] ध्यानं आत्मस्वरूप चिन्तनम अर्थात आत्मस्वरूप का चिन्तन ध्यान है। तत्वानुशासन में कहा गया है किसी भी सहायता से रहित आत्मा में जो चिन्ता का निरोध है वह ध्यान है अथवा जो चिन्ता के अभाव व स्वसंवेदन स्वरूप है वह ध्यान है। ध्यान वह स्थिति है जिसमें चित्त वृत्ति की चंचलता समाप्त हो जाती है और वह किसी एक विषय पर केन्द्रित हो जाती है। जब चिन्तन अन्यान्य विषयों से हटाकर किसी एक ही वस्तु में केन्द्रित कर दिया जाता है तो वह ध्यान बन जाता है। विद्वानों के अनुसार व्यक्ति जिस समय जिस विचार भाव का चिंतन करता है उस समय वह उन्हीं विचारों में तन्मय हो जाता है जैसे वह यदि किसी देवता मंत्र या आत्मा पर अपने विचारों को केन्द्रित करता है, अन्य मानसिक क्रियाओं को दूर रखता है, उस एक विषय में ही अपने आपकों केन्द्रित कर लेता है, इच्छाओं को पूर्ण रूप से रोककर किसी एक विषय का आलंबन लेकर अन्य सभी से अपनी वृत्ति को हटा लेता है, वही ध्यान है।[32] वही योग सूत्र में ध्यान के विषय में कहा है कि – धारण में जहॉ चित्त को धारण किया जाता है वहीं पर जो प्रत्यय की एकाग्रता है विसदृश परिणाम को छोड़कर जिसे धारणा में आलम्बनभूत किया गया है। उसी के आलम्बन रूप से जो निरंतर ज्ञान की उत्पत्ति होती है। उसे ध्यान कहते हैं।

ध्यान के प्रकारः–जैन आगम ग्रंथों में ध्यान के चार प्रकारों का प्रमुखता से वर्णन मिलता है। आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान, एवं शुक्ल ध्यान। आर्त और रौद्र ध्यान अशुभ रूप होने से अप्रशस्त ध्यान हैं,अप्रशस्त ध्यान संसार के कारण हैं और प्रशस्त ध्यान मोक्ष के कारण हैं। [33] समस्त भोग सामग्री की प्राप्ति के लिए जो चिन्तन मनन होता है, उसी का नाम आर्त्त ध्यान है। हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री सेवन, एवं अन्य प्रकार कलुषित कर्मों से उत्पन्न परिणाम के कारण जो चिन्तन होता है वह रौद्र ध्यान है। धर्म ध्यान– स्त्री, पुत्र, ध ान–सम्पत्ति, तथा सभी प्रकार की भोग सामग्री के प्रति ममत्व भाव इस ध्यान में कम होता चला जाता है। धीरे–धीरे आत्मचिन्तन की ओर प्रवृति बढती चली जाती है। यह आत्म विकास का प्रथम चरण है। द्वादशॉग जिनवाणी, इन्द्रिय, गति, काम, योग, वेद, कशाय, संयम, ज्ञान, दर्षन, लेष्या, भव्याभव्य, सम्यक्त्व, सन्नी–असन्नी, आहारक, अनाहारक, इस प्रकार चौदह मार्गणा, चौदह गुण स्थान, बारह भावना, दस धर्म का चिन्तवन करना धर्म ध यान है।[34] धर्म ध्यान के चार भेद हैं– आज्ञाविचय, अपाचविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय।[35] आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान ये ध्येय हैं। इन ध्येय विषयों पर चित्त

एकाग्र किया जाता है। इनके चिन्तन से चित्त–निरोध के साथ उसकी शुद्धि होती है। सर्वज्ञ प्रभु के उपदेशों के अनुसार चिन्तन करना आज्ञाविचय है। आज्ञाविचय से वीतराग भाव की प्राप्ति होती है। दोषों और कारणों का चिन्तन कर उनसे छुटकारा पाने पर विचार करना, अपायविचय है। अपायविचय से रागद्वेष और मोह और उनसे उत्पन्न होने वाले दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है। पूर्वकर्मों के विपाक के परिणम स्वरूप सुख–दुःख विभिन्न अनुभूतियों का वेदन करते हुए उनके कारणों का विश्लेषण करना विपाकविचय है। विवाकविचय से दुःख प्राप्ति का मूल कारण परिज्ञात होता है। शारीरिक गतिविधियों पर चित्तवृतियों को केन्द्रित करने को भी संस्थान विचय धर्म ध्यान कहा जाता है। संस्थानविचय से अनासक्तभावों की वृद्धि होती है और आसक्ति नष्ट होती है। धर्म ध्यान के चार लक्षण हैं– आज्ञारूचि, निसर्गरूचि, सूत्ररूचि, एवं अवगाढरूचि। धर्म ध्यान के चार आलम्बन हैं– वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, और अनुप्रेक्षा।[36] अनुप्रेक्षा चार प्रकार की हैं– 1. एकत्व अनुप्रेक्षा– मैं अकेला हूँ ऐसा चिन्तन करना 2. अनित्य अनुप्रेक्षा– सब संयोग अनित्य हैं ऐसा चिन्तन 3. अशरण अनुप्रेक्षा– दूसरा कोई भी व्यक्ति त्राण नहीं 4. संसारनुप्रेक्षा– जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है, इस प्रकार चिन्तन करना। इस प्रकार धर्म ध्यान से चित्तविशुद्धि का अभ्यास किया जाता है।

शुक्ल ध्यान :– जिस ध्यान से आठ प्रकार के कर्मरज से आत्मा की शुद्धि होती है उसे शुक्ल ध्यान कहते हैं। शुक्ल ध्यान का शाब्दिक अर्थ है उज्जवल और स्वच्छ ध्यान। यह धर्म ध्यान के बाद की स्थिति है। षुक्ल ध्यान के द्वारा मन को शॉत और निश्कम्प किया जाता है। इसकी अंतिम परिणति, मन की समस्त प्रवृतियों का पूर्ण निरोध है। शुक्ल ध्यान चार प्रकार का है [37] – 1. पृथकत्ववितर्कसविचार – इसमें विचार होते हैं लेकिन तर्क नहीं होते हैं। इसमें साधक मनोयोग, वचनयोग, और काययोग इन तीनों में से किसी एक योग का आलम्बन होता है। फिर उसे छोड़कर अन्य योगों का आलम्बन लेता है। वह कभी द्रव्य तो कभी पर्याय का चिन्तन करने लगता है लेकिन ध्येय द्रव्य एक ही रहता है।2. एकत्व वितर्क अविचार– इसमें प्रथम ध्यान की तरह संक्रमण की स्थिति नहीं रहती है। इसमें उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य में से किसी एक पर्याय का चिन्तवन होता है। 3. सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती – जब मन और वाणी के योगों का पूर्ण रूप से निरोध नहीं होता है ष्वासोच्छवास की सूक्ष्म क्रिया षेश रहती है।4. समुच्छिन्नक्रियाअनिवृत्ति – ध्यान की इस अवस्था में मन, वचन और काय की समसत प्रवृतियों का निरोध हो जाता है और कोई भी सूक्ष्म क्रिया षेश नहीं रहती है। इस प्रकार साधक अंत में सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेता है जो धर्म साधना और योग साधना का अंतिम लक्ष्य है। शुक्ल ध्यान के चार लक्षण हैं[38] – 1.अव्यथ– व्यथा से पीड़ित होने पर भी क्षोभ का अभाव 2. असंमोह– मूढता अभाव या मोहित नहीं होना 3. विवेक – शरीर और आत्मा के भेद का परिज्ञान 4. व्युत्सर्ग – शरीर और अन्य उपाधियों के प्रति ममत्व भाव का पूर्ण त्याग। शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन हैं – क्षमा, मुक्ति (निर्लोभता), मार्दव–मृदुता एवं आर्जव–सरलता। शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ हैं [39] –

1. अनन्तवृत्तिता अनुप्रेक्षा – संसार में परिभ्रमण की परम्परा पर चिंतन करना 2. विपरिणम अनुप्रेक्षा– वस्तुओं के विविध परिमाणों का विचार करना 3. अशुभानुप्रेक्षा– पदार्थों की अशुभता पर चिंतन 4. अपाय अनुप्रेक्षा– दोशों पर चिंतन। शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन बताए गए हैं। प्रारम्भ में मन का आलम्बन समूचा संसार होता है किन्तु शनैः शनैः अभ्यास होते होते वह एक परमाणु पर स्थिर हो जाता है। केवल ज्ञान प्राप्त होने पर मन का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। योग परम्परा में भी समापत्ति के चार प्रकार बतलाए गए हैं जो कि जैन परम्परा के षुक्ल ध्यान के चारों प्रकारों के समान ही लगतें हैं। समापत्ति के वे चार प्रकार निम्नानुसार हैं – 1. सवितर्का 2. निर्वितर्का 3. सविचारा और निर्विचारा।[40] शुक्ल ध्यान के पहले दो चरणों में शुक्ल लेश्या होती है। तीसरे चरण में परमशुक्ललेष्या होती है और चौथे चरण में लेश्या नहीं होती। शुक्ल ध्यान का अंतिम फल मोक्ष है।

सन्दर्भ

1. समण सुत्तं;1/4
2. योग सूत्र;1/2
3. तत्वार्थ सूत्र;9/27
4. आदि पुराण;21–22
5. तत्वार्थ सूत्र;9/20
6. प्रमाण सागर; जैन धर्म व दर्शन, जबलपुर, 1998, पृ. 189
7. पंचास्किाय; गाथा 144
8. पंचास्किाय; कुन्द–कुन्द प्रकाशन, जयपुर,1984, पृ. 211
9. तत्वार्थ सूत्र;6/1
10. तीर्थंकर पत्रिका; वर्श 17, अंक 5, 1987, पृत्र 140
11. योगषास्त्र;12/2
12. योगशास्त्र; 12/5–6, सागरमल जैन, जैन साधना और ध्यान, पृ.64, jainlibrary.org
13. मूलाचार; गाथा 694
14. वही; गाथा 695–712
15. तत्वार्थ सूत्र; 7/13
16. मूलाचार;गाथा 6
17. पुरूशार्थ सिद्धियुपाय;श्लोक 102
18. मूलाचार; गाथा 8
19. पुरूशार्थ सिद्धियुपाय;श्लोक 109–110
20. पुरूशार्थ सिद्धियुपाय;श्लोक 66
21. हरिवंश पुराण; 58/157
22. सागर धर्मामश्त; श्लोक 01
23. यशस्तितिलक; सोमदेव सूरि, बनारस,1960, पृ. 47

24. तत्वार्थ सूत्र; 9/6
25. रत्नकरण्ड श्रावकाचार; श्लोक 139
26. मोक्षशास्त्र; 9/27
27. कैलासचंद षात्री; जैन धर्म, बनारस, पृ.184
28. जिनेन्द्र जैन; प्राचीन जैन साहित्य और संस्कृति, इन्दौर, 2005, पृ. 182
29. सागरमल जैन; जैन साधना और ध्यान, पृ.68, jainlibrary.org
30. ज्योति बाबू जैन; ध्यान का स्वरूप व परिणम, अर्हत वचन, अंक 22, 2010, पृ. 50–51
31. सर्वाथसिद्धि; 9/20
32. ज्योति बाबू जैन; ध्यान का स्वरूप व परिणम, अर्हत वचन, अंक 22, 2010, पृ. 48
33. सर्वाथसिद्धि; 9/28
34. षिवमुनि; आगम साहित्य में ध्यान का स्वरूप, पृ. 242, www.jainlibrary.org
35. स्थानांग; 4/65
36. स्थानांग; 4/68
37. स्थानांग; 4/69
38. स्थानांग; 4/70
39. स्थानांग; 4/72
40. सगरमल जैन; जैन साधना और ध्यान, पृ.76, jainlibrary.org

9

योग द्वारा मृत्युंजय साधना

प्रोफेसर लाल अमरेन्द्र सिंह

योग मनोशक्तियों के चरम विकास का साधन है। सामान्यतया मानव मस्तिष्क अपनी क्षमताओं का केवल छः प्रतिशत उपयोग कर पाता है। योग्यतम वैज्ञानिक भी आठ प्रतिशत क्षमता का उपयोग कर पाता है। इन्द्रियों की वाह्य संलग्नता, रुचि विस्तारीकरण, ध्यान का विभक्तीकरण, सतत् ध्यान विचलन की दशा, संज्ञान क्षेत्र की बहुलता, मन की अस्थिर दषा, सांवेगिक दुष्प्रभाव, दैहिक–हारमोनल विकार व्यकित की एकाग्रता को नष्ट करते हैं, जिससे मनोक्षमता बुद्धि क्षमता घट जाती है। योग क्रिया, दैहिक, मानसिक, चारित्रिक व मस्तिष्कीय संतुलन व नियमन के द्वारा मानव क्षमताओं के मुक्त भंडार को जाग्रत करता है और प्रबल एकाग्रता के बल पर परामनोशक्तियों प्रकट कर देता है। जिससे मस्तिष्क 50–60 प्रतिशत क्षमता का उपयोग करने से समक्ष हो जाता है। योग का लक्ष्य है, अतिमानस 'प्रथवा देवत्व' की दशा तक पहुंचना। ऐसी मान्यता है कि परमशक्ति जिसने संसार प्रथवा प्रकृति (प्रकृति) प्रवीणता से रची गयी कृति की रचना की है (जो स्व विकसित व सुसंचालित हैं) अपार ज्ञानशक्ति, असीम कार्यक्षमता व अतुलनीय संतुलन की स्वामी है वह शक्ति उसे अजर, अमर अविकारी, अविनाशी भी कहा गया। जो 'पुरुष शाश्वतं दिव्यं आदि देवंअजं विभुम' (गीता 10/11) कही गयी है, उस आदि शक्ति की अद्भुत रचना है। यह संसार जिसने अनेक जीव बनाये और उनमें से सवोत्कृष्ट रचना है मानव की। जिसमें उस आदि शक्ति ने अपने स्वरुप का अंष भी डाल दिया (माम् एव अंश लोके, जीव भूत सनात्) मानव को विकसित अंग दिये, भाशा दी, विचार क्षमता दी ज्ञान अर्जन की शक्ति दी, मानव प्रवणता दी, बुद्धि दी और उचित अनुचित निर्णय करने की शक्ति भी दी। अब उस मानव को निर्णय करना था कि भोग में डूब जाय या विकसित विचार शक्ति का उपयोग अपने विकास के प्रयास में करे। उस आदि शक्ति का गुण अंश अजर (बुढ़ापा न आने देना) अमर (मृत्यु से पराजित न होना) मानव की देह में समाया था, साथ में था इतर जीवों की तरह विकास का,

जीवन–मरण का तत्व भी। मानव संसार में रहकर जन्म जन्मांतर के अनेकानेक विकार भी ग्रहण करता चला गया। वही संस्कार इस जन्म के प्रभाव व संस्कार से मिलकर जीवन ढ़ालते हैं। यदि पूर्व जन्म के संस्कार अच्छे मिलते हैं तो वह आदि शक्ति उसे ऐसे परिकर में जन्म देती है जो सुसंकारित हो और व्यकि् का विकास हो (शुचीतां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टो अभिजायते (गीता 6/41 त्रेच तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्व देहिकम (6/43) यदि मानव के सद् प्रयास चलते रहे तो 'अनेक जन्म संसिद्धिः स्ततो यात् परम गतिः, अनेक पीढ़ियों के विकासमय प्रयास से अन्त में वह परम पद (आदि शक्ति के समान अजर, अमर) प्राप्त कर लेता है और जन्म–मरण से मुक्ति मिल जाती है।

योग ऐसी वैज्ञानिक सुविचारित विधि है कि उसके पूर्ण पालन करने से इसी जन्म में ही न रोग होते हैं, न बुढ़ापा आक्रान्त करता है और न मृत्यु भी शरीर को छू पाती है (यथपि मानव शरीर रचना में ही वृद्धि–हास और क्षीणता पाते पाते नाश की अवस्था पाने का सूत्र छिपा है) ज्ञानियों और ज्योर्ति विज्ञान की गणना के अनुसार मानव की अधिकतम जीवन्तता 120 वर्ष आंकी गयी है। दैहिक विज्ञान का सूत्र है कि जितने वर्ष में देह का पूर्ण विकास होता है उसकी पांच गुणा उस जीवन की जीवन्तता होती है। इस रुप में भी अधिकतम आयु 110 से 120 वर्ष के बीच मानी गयी है। जिसे हम खान–पान, रोग–शोक, उत्तेजना–तनाव, नषा–वासना से विकार पैदा कर पूर्णायु घाटा लेते हैं। वैसे ही इन तत्वों पर पूर्ण नियंत्रण कर हम आयु बढ़ा सकते हैं। इसीलिए योग में आसनों द्वारा देह चर्या का विधान है। यम नियम एवं आहार–विहार से विकार–वासना पर बंधन लगाये गये हैं। प्रव्याहार द्वारा वाह्य जगत से न्यूनतम संबन्ध रखने की व्यवस्था है और प्राणायाम द्वारा जीवनी शक्ति (वाइटल फोर्स) बढ़ाने की व्यवस्था की गयी है। उसके आगे की योग क्रियाएं अति महत्वपूर्ण बन जाती है। ध्यान, धारणा और समाधि की सम्मिलित दशा को 'संयम' कहा गया है। पतंजलि योग दर्शन में इसका सूत्र ''त्रयम् एकत्र संयमः'' (3:4) यही संकेत देता है। संयम या कहें पूर्ण संयम ही जन्म जन्मान्तर के संचित विकार–वासना क्रम को पूर्णतया नष्ट कर देने की कुंजी है। जितना अधिक विशुद्ध ध्यान और समाधि उतना ही अधिक विकार नष्ट होंगे। जन्म जन्मान्तर की कन्डीशन्ड दैहिक क्रिया भी पूर्ण संयम के प्रभाव से बदल जाता है। योगी की मनोक्षमता (संकल्प शक्ति) इतनी प्रबल हो जाती है कि वही दैहिक क्रियाएं (जो अभी तक स्वचालित थी) योगी की मनोशक्ति के अधीन हो जाती है। योगी न केवल अपने वरन दूसरे व्यक्ति के शरीर पर जैसा चाहे प्रभाव डाल सकता है। यहां तक की इच्छा मात्र से रोग नष्ट कर सके, मनोपरिवर्तन ला सके और देह क्रिया नियमन कर सके। यही सिद्ध गुरु की विशिष्टता होती है। श्वेत ष्वेतार उपनिशद के अनुसार सिद्ध योगी में अपार शक्तियां आ जाती है। ''न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्रस्य योगा नियमन शरीरं'' (2/12) यह वाक्य सर्वथा सत्य है। इस युग में भी तैलंग स्वामी ऐसे योगी हुए हैं जो 285 वर्ष की आयु तक जीवित रहे और जीवन ढ़ोते ढ़ोते ऊब कर इच्छा मृत्यु प्राप्त की। अन्तिम समय तक उनके शरीर में कोई विकार नही आ पाया। कुछ किलोमीटर चलकर प्रतिदिन काशी में गंगा स्नान

को पैदल जाते रहे और घण्टों तक जल में तैरना व डुबकी लगाये रखना उनका दैहिक क्रम था। अमंगबोध, आश्रम महाराज 100 वर्ष से अधिक आयु में काशी में गंगोत्री तक लगातार पैदल यात्रा करते रहे। जाड़ा–गर्मी, बरसात कभी भी उन्हें एक वस्त्र की भी आवष्यकता नही हुई। तैलंग स्वामी महाराज की तरह उन्हें भी लंगोटी तक की आवश्यकता नही थी। ऐसे ही अनेक महात्मा हिमालय क्षेत्र में है जिनकी आयु कई सौ वर्ष है। आयुर्वेद विज्ञान में काया कल्प के द्वारा आयु बढ़ाने की प्रक्रिया दी गयी है। जिसमें 90–100 वर्ष की आयु में शरीर क्रिया में पूर्ण परिवर्तन आ जाता है सफेद बाल काले हो जाते हैं। झुर्रियां समाप्त होकर त्वचा पूर्ववत हो जाती है आन्तरिक अंग भी सुदृढ़ जो जाते हैं। आंवला, प्रसगंध, तुलसी एवं जिनसिंग में ऐसे तत्व पाये जाते हैं। सोमलता और अश्टवर्ग में भी आश्चर्यकारी गुण बताये गये हैं। ये औषधियां रेडियो एक्टिव मेटल के समान रेडियो एक्टिव वनस्पतियां बतायी गयी है। लक्ष्मण की गहन मुर्छा के समय लंका के सुषेपा वैद्य ने बाल्मीकि रामायण के अनुसार वीर हनुमान से चार प्रकार की औषधियां मंगाई थी जो केवल हिमालय में प्राप्त थी और और रेडियो एक्टिव जड़ी–बूटी होने के कारण रात में चमकती थी। ये थीं, विशल्याकरणी, संधानकरणी, सुवर्णकरणी एवं संजीवनीकरणी। विशल्याकरणी औषधि गहरे धंसी वाण की नोक को बाहर कर देती है। संधानकरणी कुछ देर में ही कटी फटी मांस पेशियां जोड़ देती है। सुवर्णकरणी ऊपरी त्वचा के दाग मिटाकर पूर्ववत कर देती है और संजीवनीकरणी खोयी जीवनीशक्ति पुनः ला देती है।

चरक संहिता ग्रन्थ की एक अंग्रेजी भाषा की टीका में, जो तीन भागों में श्री भट्टाचार्य द्वारा लिखी गयी थी। लेखक ने सोमलता द्वारा पुर्नजीवन देने की क्रिया का वर्णन पढ़ा था। लगभग दो दशक बाद 'क्लोनिंग' विवि के द्वारा एक सूक्ष्म टिश्यू से सम्पूर्ण शरीर की जीवन्त रचना कर पाने की विधि जानने का अवसर मिला। आष्चर्य यह हुआ कि आधुनिक 'क्लोनिंग' की विधि पूर्णतया उसी आधार और क्रिया विधि का उपयोग करती है जो कि सोमलता औशधि के प्रयोग में अपनाया गया था। दो हजार वर्श पूर्व ऋशियों ने प्रज्ञा शक्ति से वही वैज्ञानिक आधार और प्रक्रिया जान ली थी जो आधुनिक युग में कुछ पशुओं में अपनायी गयी और प्रारम्भिक दश में है।

ऋग्वेद का मंत्र ''अपाम सोमं अमृतम् अभूय'' हमनें सोम का पान किया (ग्रहण किया) और उसके द्वारा अमर हो गये संभवत् इसी प्रकरण का उल्लेख करता है। सोम क्रिया कई रुपों में मानी गयी है। 'पुरुष' को सोलह कला का अवतार (स्वरुप) कहा गया है। ये सोलह कलायें चन्द्र (सोम) के क्रमिक विकास चक्र को दर्शाती है। पन्द्रहवी कला पूर्णचन्द्र (पूर्णम्असित्रपूर्णमासी) को कही गयी है। सोम (चन्द्र) शीतलता का स्वामी है। जन्म जन्मान्तर ने ग्रहण विकारो को शीतल कर विषुद्धमय दशा पाना ही पूर्णचन्द्र की दशा है उसके पश्चात् ही प्रकट हो पाती है चन्द्र (सोम) की सोलहवीं कला जिसे अमृत कला कहा गया है। वही अमृत कला प्राप्त कर पाने पर सिद्ध देह (अमरत्व) या दिव्य देह प्राप्त हो जाती है।

तंत्र शास्त्र में चतुष्चन्द्र साधना का उल्लेख आता है। देह रस (वीर्य) को अमृत का स्वरुप कहा गया है। क्षुब्ध देह रस (उत्तेजना से प्रभावित) अधोगामी क्रिया करता है। स्वर्णिक सुख अवष्य देता है परन्तु क्षणिक ही उस देह रस (वीर्य) की क्षुब्धता (उत्तेजना) समाप्त करते हैं तभी वीर्य (बिन्दु) का शुद्ध स्वरुप प्राप्त होता है जो ध्यान द्वारा मन की निर्मल दशा आ जाने पर ही सम्भव है। तब अमृत रस वन कर वीर्य उर्ध्वगमन की वृत्ति अपनाता है। प्रथम स्वरुप आदिचन्द्र (मूल स्थान) छोड़कर ऊपर की ओर गमन करता है। उस दशा को 'निज चन्द्र' कहा गया है। यही शुद्ध अमृत रस की कुंडलिनी यात्रा कही गयी है। कुंडलिनी शक्ति द्वारा शटचक्र भेदन इसे ही कहा गया यह रस भेद की क्रिया कहलाती है। तीसरी दषा में उन्मन्त चन्द्र की। देह की उत्तेजनायें जो हरमोनल इफेक्ट से होती है। इन्हें षान्त करने की विधि है, प्राणवायु का नियमन, जो प्राणायाम क्रिया से प्रारम्भ होता है और ध्यान की दषा में पूर्ण निरुद्धता प्राप्त कर पूर्ण होता है। उन्मुत्त चन्द्र (या उत्पातित सोम अथवा वीर्य) के शान्त होने पर कुंडलिनी क्रिया सहजता से उर्ध्वगमन कर सहस्चार चक्र (मस्तिष्क का अन्तिम छोर) तक पहुंच पाती है। वहां उल्टे हुए सहस्चार को सीधा कर दशमद्वार (ब्रम्हरंन्ध्र) बन्द कर सहस्चार सोम (अमृत) का पान करता है तभी उसके प्रभाव से दिव्य देह (अजर अमर देह) बन पाती है। सह अन्तिम दशा ही गरहचन्द्र (अमृतमयी) कही गयी है। ऊपर की तीन चन्द्र (अस्थिर) दशायें रोककर चौथी दशा में प्रवेश सम्भव है तभी सिद्ध देह (अमरता) प्राप्त हो पाती है।

मानव जीवन का रचना में भी आदि शक्ति – शिव और शक्ति का प्रभाव होता है। शक्ति अथवा मातृ शक्ति का रुप होता है रज का, उससे जब शिव तत्व का स्वरुप 'वीर्य' का सम्मिलन होता है तभी नये जीव की रचना होती है। अर्थात रज और वीर्य का वीज रुप मिलन ही नूतन जीवन को जन्म देता है। कल्पना है कि कभी शक्ति से रज का क्षरण होकर पृथ्वी पर गिरा और अभ्रक के रुप में बन गया। उसी तरह शिव का अंश क्षरण होकर पृथ्वी पर गिरा और पारद (पारा, करकरी) का रुप ग्रहण कर लिया। बौद्ध ज्ञानी नागार्जुन ने इन्हीं सिद्धान्तों का आधार लेकर 'रस क्रिया' को जन्म दिया। अभ्रक और पारद में नव निर्माण की अद्‌भुत क्षमता थी। इनके विधिवत् योग से नूतन सृष्टि सम्भव बन गयी। नागार्जुन ने इन्हीं दो तत्वों की मदद से तत्व को स्वर्ण में परिवर्तन कर दिया। फिर इन्हीं दो तत्वों का जीव के ऊपर प्रयोग करके पुर्नजीवन या पुर्नयौवन की क्रिया प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार 'रस प्रक्रिया' के प्रथम आचार्य नागार्जुन हो गये। नाथ संप्रदाय (जो वौद्धमत के वज्रयान मत से प्रारंभ हुआ, नागार्जुन जिसके आचार्यो में से थे) के अनेक योगियों ने इन औषधियों के प्रयोग से दिव्य देह और अमरता प्राप्त की। बत्तीस सिद्धो की परम्परा मान्य है जिसमें कि सभी अमरत्व को प्राप्त बताये जाते हैं। गुरु गोरखनाथ, चर्पटी नाथ, घोड़ाचोली, मन्थान भैरव, काक चन्डी श्वर, नागार्जुन, नित्यनाथ, बिन्दुनाथ, सुरानन्द, कपालीनाथ, कनेरीनाथ कंथरीनाथ, बैलीनाथ, टिटिणीनाथ, बत्ररंटक, नागदेव, भालुकीनाथ, कन्दलायन, खंड कापालिक, गोविन्द नायक और गोविन्द भिक्षु ऐसे अमरत्व प्राप्त सिद्ध योगी कहे गये हैं। अनुमान है कि वे अभी

भी हिमालय और अन्य गिरि स्थलों में साधनारत हैं। पंडित गोपीनाथ कविराज ने स्वामी विशुद्धानन्द की जानकारी के अनुसार कई पुस्तकों में हिमालय में स्थित गुप्त योग केन्द्र ज्ञानगंज का उल्लेख किया है जहां पर आज भी अनेक योगी जिनकी आयु हजार वर्ष के ऊपर है, साधनारत चल रहे हैं। बौद्ध योगी उस स्थली को शाम्बला के नाम से जानते हैं। सिक्किम में रह रहे महान बौद्ध लामा करमापा काल सिपोचे से अमरीका महिला नैन्सी कुक सन् 1984 में मिली उन्होंने हिमालयन योग पीठ का वर्णन करते हुए बताया कि वहां पर बीसों योगी सैकड़ो वर्ष की आयु वाले साधनारत हैं। उसमें से एक 100 वर्ष के लिए प्रमुख चुना जायेगा जो कि संसार में भ्रष्ट धर्म और चारों ओर फैली अराजकता पायेगा। वह अपनी शक्ति से सारे इलेक्ट्रो मैगेनेटिक फोर्स व यंत्रों का नष्ट कर देगा। कठोर शासन लाकर वह पुनः षान्ति व सुख साम्राज्य पैदा करेगा। नैन्सी कुक की पुस्तक 'वियान्द्र द गुरुज (1992) में पृश्ठ 464 में इस संदर्भ का उल्लेख है।

अमरत्व की रस क्रिया पर नागार्जुन का हस्तलिखित ग्रन्थ भारत में उपलब्ध नही परन्तु नैपाल की राष्ट्रीय लाइब्रेरी में उपलब्ध है। अन्तिम सिद्ध गोविन्द भिक्षु का तत्संम्बन्धी ग्रन्थ 'रस हृदय' उपलब्ध है। काल दहन तंत्र और मष्त्युजंय महातंत्र ऐसे ग्रन्थ है जो कि काया सिद्धि प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं।

गोरखनाथ के नाथ संप्रदाय में पूर्व में काया सिद्धि की चार प्रकार की विधियां उपयोग में लायी जाती थी। प्रथम थी नागार्जुन की 'रस क्रिया' जिसके जानकार अब नही हैं। दूसरी विधि है प्राणशोधन की जिसमें कि प्राणायाम और ध्यान के गहन अभ्यास से देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि के विकार नष्ट कर शुद्ध बुद्ध आत्मा को पुनः प्राप्त कर पाने का प्रयास होता है जो कि योग विज्ञान का मुख्य अंग है। तीसरी क्रिया है बिन्दु (वीर्य) के शुद्धीकरण की। जिसके लिए अति प्रबल संकल्प शक्ति (Volitional Force) की आवश्यकता होती है जो कि प्राणायाम और ध्यान द्वारा प्राप्त की जाती है। क्षुब्ध वीर्य के शान्त हो जाने से उसकी अधोगामी क्रिया (शरीर से बाहर चले जाना) समाप्त हो जाती है और बिन्दु का प्रवाहु उर्ध्वगमन की ओर हो जाता है यही कुंडलिनी जागरण की प्रक्रिया है जो नाथयोग की विशिष्टता थी। चौथी विधि है बौद्ध मत की बज्रयानी पद्धति, जिसमें कि वज्रोजी मुद्रा सहजोली व अमरोली मुद्रा की अभ्यास द्वारा बिन्दु संरक्षण किया जाता है और बिन्दु को सहस्चार में चढ़ाकर मृत्यु को जीत लिया जाता है। लेखक पिछले साठ वर्ष से अधिक से इनके प्रमुख केन्द्र गोरक्षपीठ के निकट सम्पर्क में था। तीन पीठाधीश्वरों से निकटता भी थी परन्तु काया सिद्ध और कुंडलिनी जागरण में स्नात कोई भी सिद्ध योगी नही मिल पाया गुप्त साधना होने से संभवतः ऐसा योगी दृष्टि में न आया हो। सन् 1941 के पूर्व वहां पर अन्तिम सिद्ध पुरुश गुरु गंभीरनाथ थे जिनके षिश्य डॉ0 अक्षय कुमार बनर्जी (पूर्व प्रोफेसर, ढाका वि0वि0) अवष्य अध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न महापुरुष थे। लेखक उनके निकट सम्पर्क में था। योग और अध्यात्म विषयक ज्ञान के लिये उन्ही का ऋणी है। गुरु गम्भीरनाथ की यद्यपि काया सिद्धि में रुचि नही थी फिर भी वह सिद्ध योगी थे और पतंजलि दर्शन में उल्लिखित

अनेक पराशक्तियों के स्वामी थे। दिवंगत गुरु अवैद्यनाथ महाराज ने वहां पर योग विषयक विशाल पुस्तकालय और अतिथि गृह स्थापित किया है आज भी पचासों नाथ योगी वहां पर साधनारत रहते हैं। हठयोग विषयक अनेकानेक अमूल्य पुस्तके इस प्रसिद्ध पीठ ने प्रकाशित की है।

काया सिद्धि आज के युग में लुप्त प्राय योग विधि हो गयी है अभ्यासित योगी इच्छा शून्य व अस्मिता शून्य हो जाता है इस कारण देह सिद्धि और अमरत्व पाना उसके लिए व्यर्थ प्रयास हो जाता है। इसी मठ के योगी सुन्दरनाथ (पूर्व पीठाधीश्वर) काया सिद्धि में प्रवीण थे जो किसी गिरि–कन्दरा में योगरत हैं। उनकी आयु लगभग दो सौ वर्ष है। उनके एक कथन के अनुसार 2021 के वाद सिद्ध योगी पुनः लोक कल्याण हेतु प्रकट होंगे और अध्यात्म मार्ग पुनः प्रशस्त होगा।

पतंजलि दर्शन के अनुसार ''जन्मौशधि मंत्र तयः माधिजा सिद्धयः (4/1) जन्म से बालखिल्य मुनि, व्यासपुत्र शुकदेव आदि ज्ञानी और सिद्ध देह थे। औषधि, मंत्र, तप और समाधि के द्वारा जो काया सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, उसका संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास किया गया है। यह विषय अत्यंत गूढ़ एवं रहस्यमय है अतएव सामान्य चर्चा से परे है।

संदर्भ ग्रंथ

1. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती योग दर्शन बिहार योग विद्यालय, मुंगेर।
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती मुक्ति के चार सोपान, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, 1994
3. पातंजल योग प्रदीप गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
4. शिवसंहिता कैवल्यधाम श्रीमत्याधव योग मंदिर समिति लोनावला पुणे (महाराष्ट्र)
5. भारद्वाज ईश्वर मानव चेतना, सत्यम प्रकाशन दिल्ली, 2011,
6. स्वामी विवेकानंद, राजयोग, पी.एम. प्रकाशन दिल्ली, 2014

10

“आचार्य शंकर के अद्वैत चिन्तन में भक्ति निरुपण”

डॉ० सत्येन्द्र दत्त अमोली[1]

सच्चे और निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज को भक्तियोग कहते हैं। इस खोज का आरम्भ, मध्य और अन्त प्रेम में होता है। ईश्वर के प्रति प्रेमोन्मत्तता का एक क्षण भी हमारे लिए मुक्ति देने वाला होता है।[2] स्मृति पुराणादि ग्रन्थों में ईष्वर का साकार रूप बहुधा वर्णित किया गया है। तथा उन रूपों से जुड़े कई प्रकरणों का भी समावेष इन ग्रन्थों में मिलता है। जिसमें वह ईश्वर भक्तों की साधना तप अथवा विपत्ति से रक्षा के लिए विविध रूपों में अवतरित होता है। उस ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण का नाम ही भक्ति है। जब भक्त अपने ईष्वर के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है, तब वह (ईश्वर) उसके सभी पाप पुण्यों तथा शुभाशुभ कर्मों का नाश कर उसे अपनी शरण में ले परमानंद का अधिकारी बना देता है। और यही उस भक्त की परिणति है। शंकर का भक्ति दर्शन इसी साकार ईष्वर के प्रति अखण्ड भाव है।

भक्ति का स्वरूप :– सामान्यतः यह मान्यता है, कि शंकर ज्ञानवादी ब्राह्मण थे। और उनका जीवन अद्वैत दर्शन के प्रसार में पूर्ण रूप से समर्पित था। किन्तु यदि उनके जीवन पृष्ठों का गहनता से अध्ययन करें तो हमें उनके जीवन दर्शन में लोकसंग्रहार्थ कर्म और कर्म में भक्ति का लीला विलास दृश्टिगोचर होता है। जो उनके दर्शन का ही एक अंश है। – आचार्य शंकर विवेकचूड़ामणि में भक्ति का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि अपने शुद्ध स्वरूप का स्मरण करना ही भक्ति है। [3] शंकर ने भक्ति विशय पर अपनी अनेक कृतियों में भक्ति की विशद् विवेचना प्रस्तुत की है। वे भक्ति को दो श्रेणीयों में विभक्त करते है। स्थूल व सूक्ष्म [4] – स्थूल भक्ति के लक्षणों के विषय में शंकर कहते हैं कि ‘‘वर्णाश्रम, धार्मिक कर्मों का अनुष्ठान, नित्य भगवान श्री कृष्ण का पूजन अर्चन तथा सत्संग, सत्यभाशण, स्त्री भोग

से वंचना, तीर्थभ्रमण तथा भगवद् चिन्तन करते हुए प्राण त्याग ये सब स्थूल भक्ति के लक्षण हैं।'' [5] आगे सूक्ष्म भक्ति के विशय में उपदेश देते हैं कि ''स्थूल भक्ति का अभ्यास करते करते श्री कृश्ण के अनुग्रह से सूक्ष्म भक्ति का उदय होता है।'' [6]

मानसिक भक्ति के लक्षणों में शंकर मुख्यतः भगवान की मूर्ति का मनस् में ध्यान, अहिंसा, सत्य, संतोशादि का पालन, परिवार के प्रति मोह का त्याग, दया व समता का भाव, द्वन्द सहन करने की प्रवृत्ति, निद्रा व आहार संयम आदि [7] का समावेष मानते हैं। इसी पक्ष को ध्यान में रखते हुए आचार्य शंकर ने षिव, शक्ति, विष्णु, कृष्ण, नदी, तीर्थ आदि विभिन्न देवि देवताओं पर स्तोत्रों की रचना की जिसमें उन्होनें कई स्थलों पर नवधा भक्ति [8] के अंगों को समावेशित किया है। यथा – श्रवण भक्ति का उल्लेख उन्होनें प्रबोध सुधाकर में भगवद् कथा के श्रवण का निर्देश देकर किया है। [9] वहीं कीर्तन भक्ति का अनुशासन वे स्वयं माँ भगवती के स्तोत्रों में करते हैं।[10] शंकर गीताभाश्य में स्मरण भक्ति हेतु कहते हैं, कि भक्त ईष्वर को स्मरण करता हुआ उन्हें ही प्राप्त होता है। [11] तथा उनके चरणों की छाया में वेदान्त का अध्ययन करते हुए उनके पादामृत सेवन का निर्देश कर वह पादसेवन भक्ति के महत्व को स्पष्ट करते हैं। वह उनके श्री चरणों में पत्र पुश्पार्पण द्वारा अर्चन भक्ति के विधान को भी निर्धारित करते हैं।[12] आचार्य शंकर करूणावरूणालया माँ मीनाक्षी देवी का नित्यप्रति वंदन कर वंदन भक्ति [13] तथा माँ अन्नपूर्णा से वैराग्य की भिक्षा मांग उनके प्रति दास्य भाव प्रकट करते हैं। [14] तथा भगवान श्री कृष्ण को श्रेष्ठ सखा के रूप में स्वीकारना ही सख्य भक्ति का निरूपण है। [15] और उनके द्वारा अनेकानेक कृतियों में अपने आत्म तत्व को ईष्ट के प्रति समर्पित करनें का निर्देश उनकी आत्मनिवेदन भक्ति को इंगित करते हुए शंकर दर्शन में नवधा भक्ति के स्वरूप को प्रकाशित करता है।

---

[4]प्रबोधसुधाकर : द्विधा भक्तिप्रकरण – 171
[5]प्रबोधसुधाकर : द्विधा भक्तिप्रकरण –172–174
[6]प्रबोधसुधाकर : द्विधा भक्तिप्रकरण :175
[7]प्रबोधसुधाकर : द्विधा भक्तिप्रकरण :176–180
[8]श्रवणं कीर्तनं विश्णोः स्मरणं पादसेवनं। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।।
(श्रीमद्भागवत् : 7/5/23)
[9]प्रबोधसुधाकर : द्विधा भक्तिप्रकरण : 173
[10]कनकधारा स्तोत्र : 14
[11]गीताषांकरभाष्य : 8/9
[12]गीताशांकरभाष्य : 9/26
[13]मीनाक्षी पंचक : 1
[14]अन्नपूर्णा स्तोत्र : 11
[15]कृष्णाष्टक

आचार्य शंकर भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कर्म घोषित करते हैं, वह स्पष्ट कहते है, कि कर्म वह है, जो कृष्ण को प्रिय है। ऐसे शिव व कृष्ण पूजन रूपी कर्म में पछताना नहीं पड़ता। [16] शंकर अद्वैत के प्रतिष्ठापक होते हुए भी साकार ईश्वर के परम् उपासक थे। इसी कारण उन्हें शट्मतस्थापनाचार्य की उपाधि से अलंकृत किया जाता है। अर्थात् वे एक ऐसे आचार्य थे, जिन्होनें शैव, शाक्त, सौर, वैष्णव, गाणपत्य व कपालिक जैसे साकार ईश्वरोपासक मतों कि विध्वित् स्थापना की। [17] सर्वत्र आत्म दर्शन ही उनकी एकात्म निष्ठा थी और यही भक्ति का परम् प्रयोजन है। आदि शंकर के दर्शन में भक्ति के स्वरूप का सार यही है, कि अनंत अनादि तथा नाम रूप उपाधियों से अपरिच्छिन्न निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान तभी सम्भव है, जब नाम रूप तथा सविशेष सगुण ब्रह्म की लीलाओं का ज्ञान किया जा सके और उसे प्राप्त करने का एक मात्र साधन भक्ति है।

भक्ति का स्थान :— भक्ति साधना का शंकर दर्शन में अभिन्न स्थान है। जितना हम शंकर को अद्वैत की पृष्ठभूमि में व्याप्त पाते हैं उतना ही एक ईश्वर उपासक के रूप में आचार्य शंकर का परिचय हमें ज्ञात है। एक ओर मोक्ष हेतु आचार्य जहाँ ब्रह्मज्ञान का उपदेष देते हैं वहीं दूसरी ओर वह मुक्ति के हेतुओं में भक्ति को श्रेष्ठ बताते हैं। [18] इसका तात्पर्य यह नहीं की आदि शंकर दो तरह का उपदेश कर रहे हैं। उनका इस प्रकार का उपदेष दो तरह की प्रवृत्ति वाले मनुष्यों के लिए है। पहले वह जिनके अंतःकरण में ज्ञानाग्नि का स्फुरण पूर्व विद्यमान है किन्तु उस पर अविद्या का आवरण है जिसके क्षरण हेतु निर्गुण की उपासना का उपदेश किया गया है। दूसरे वह मनुष्य जिनके अंतःकरण में ज्ञान का लेश मात्रा भी स्फुरण नहीं है। उनके लिए सगुण मार्ग पर चलने का उपदेश किया गया है। यदि हम अद्वैत मत को इतर कर देखें तो भक्ति का स्थान श्रेष्ठ है। और यदि अद्वैत पक्ष को दृष्टिगत् करें तो वहाँ भक्ति मोक्ष हेतु एक साधन के रूप में व्यवस्थित है। अद्वैत पक्ष में भक्ति का स्थान गौण प्रतीत होता है किन्तु शंकर के सार्वभौम दर्शन में उसका स्थान विशेष है। अद्वैत पक्ष में शंकर अपरोक्ष रूप से निर्गुण ब्रह्म की भक्ति का उपदेश देते प्रतीत होते हैं।

भक्ति का तात्पर्य मात्रा प्रतिमा के सम्मुख बैठ ध्यानार्चन ही नहीं यह तो उसका परा स्वरूप है अपरा रूप में तो वह ब्रह्म भाव कि ही भांति है। जिसमें निर्गुण, निर्विकल्प, निर्मल, गुणातीत, निराकार परमानंद ब्रह्म की भक्ति का उपदेश है। इस प्रकार यदि हम विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि शांकर दर्शन में भक्ति का स्थान अद्वितीय है भक्ति के द्वारा ही ईश्वर अथवा ब्रह्म तक पहुँचा जा सकता है। अर्थात् ब्रह्म तक जाने वाला मार्ग भक्ति से ही होकर गुजरता है। इस सगुण से निर्गुण की प्राप्ति वाले तथ्य का समर्थन आचार्य शंकर

---

[16]मणिरत्नमाला : 22,31

[17]राधाकृष्णन् : भारतीय दर्शन : भाग 2/पृष्ठ – 573

[18]विवेकचूड़ामणि : 31

द्वारा कुछ इस प्रकार से किया गया है।– ''जो अज्ञेय होकर भी सम्पूर्ण वेदान्त के सिद्धान्त वाक्यों से जाने जाते हैं उन परमानंद स्वरूप सद्गुरू देव श्री गोविन्द को मैं प्रणाम करता हूँ।'' [19]

भक्ति और साकार ईश्वर :– अद्वैत दर्शन ज्ञान की चरमता का परिचायक है और इसी पक्ष में आचार्य शंकर भी ज्ञानवादी ब्राह्मण थे। किन्तु उन्होनें मूर्तिमान भक्ति अर्थात् सगुण ईश्वरवाद का भी अनुसरण किया। सर्वप्रथम उन्होनें वेदान्त दर्शन में ही सोपाधिक ब्रह्म की अभिकल्पना प्रस्तुत कि जो उस समाज को प्रभावित कर सकी जिसमें ईष्वर की रूपोपासना का विधान था। शंकर मानव की उस प्रवृत्ति से भिज्ञ थे जिसमें वह अपने ईश्ट के स्वरूप को देखने का निरंतर अभिलाशी बना रहता है और वह मानव की इस प्रवृत्ति का सम्मान भी करते थे। अतः उन्होनें देव वंदना हेतु अनेकानेक स्तुति प्रार्थनाओं और स्तोत्रों कि रचना की जिसमें उन्होनें विभिन्न देवी देवताओं के साकार रूप को प्रस्तुत किया। एक स्थल पर उन्होनें माँ भगवती के परम् मनोरम स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि – ''वह त्रिभुवन मोहनी आँखों में काजल लगाये हुए है, मस्तक पर कुंकुम धारण किये है, उसके कमर पर मोतीयों की माला शोभायमान हो रही है, वह स्वर्ण जड़ीत वस्त्रों को धारण किये है तथा सदा किशोरावस्था में स्थिर है।'' [20] इसी प्रकार भगवान षिव के दिव्य रूप का वर्णन शिवाष्टक में श्री कृष्ण के स्वरूप का वर्णन कृष्णाष्टक में तथा और भी अन्य देवी देवताओं के दिव्य स्वरूप का वर्णन अतिमनोरम भाव में किया है। जो जनसामान्य के हृदय में सहज ही भक्ति के सागर में ज्वार उत्पन्न कर देते हैं।

शंकर ने ईश्वर की सगुणोपासना के सहारे अनेक अंधविश्वासों का भी अंत किया अपनी दिग्विजय यात्रा के समय उन्होनें कई तीर्थ स्थलों का भ्रमण किया। यथा – मीनाक्षी मंन्दिर (मदुरै), कामाख्यादेवी (असम), जगन्नाथ धाम (पुरी), महाकाल (उज्जैन), द्वारीका धाम, बद्रीनाथ व केदारनाथ आदि। और वहाँ व्याप्त अनाचार को समाप्त कर वैदिक पद्धति द्वारा पूजा विधान की स्थापना की। जो उनके प्रबल सगुण ईश्वरोपासक होने का प्रमाण है। उन्होनें भक्ति को मात्र मूर्तिपूजा तक ही सीमित नहीं रखा वरन् उनका उद्देश्य सगुण के सहारे जनमानस में निर्गुण भाव को उत्पन्न करना था, क्योंकि वह जानते थे कि सामान्य मानव का अन्तःकरण उतना शुद्ध नहीं की वह उस शुद्धतम् ब्रह्म का संकल्प कर सके अतः सगुण की भक्ति कर उन्होंने अन्तःकरण की शुद्धता का उपदेश दिया।

आनंदलहरी में वह माँ भगवती की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि ''जिस प्रकार लोहा पारस को छू जाने पर स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है, गन्दा जल गंगा में पड़कर पवित्र हो जाता है उसी प्रकार भिन्न भिन्न पापों से मलिन हुआ मेरा अंतःकरण यदि प्रेम पूर्वक तुझमें आसक्त हो तो वह कैसे निर्मल नहीं होगा?''[21] अन्यत्र भी आचार्य द्वारा मूर्तिमान ईश्वर की

[19]विवेकचूड़ामणि : 1

[20]आनन्दलहरी : 12

[21]आनन्दलहरी : 3

आवष्यकता अंतःकरण की शुद्धि हेतु उपदेशित की गयी है। मानव का अंतःकरण प्रकृति के प्रति भी शुद्ध हो इस हेतु उनके द्वारा नदी तथा तीर्थ स्थलों पर भी स्तोत्रों की रचना की गयी। यथा – गंगाष्टक, यमुनाष्टक, नर्मदाष्टक, मणिकर्णिका स्तोत्र, काशी पंचक आदि। शंकराचार्य द्वारा रचित स्तुतियों में हमें सर्वव्यापी आध्यात्मिक दृष्टिकोण की झलक मिलती है। आचार्य शंकर का चिन्तन अपनी आत्मा की तरह सभी वस्तुओं के पीछे एक परमात्मसत्ता का दर्शन कराता हैं। वे उसका ध्यान करते हुए अनुभव करते हैं कि वे ब्रह्म के साथ अभिन्न हैं –

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत् स्वप्नजागरसुशुप्तमवैति नित्यं तद् ब्रह्म निश्कलमहं न च भूतसंघः।। [22]

अर्थात् ''मैं प्रातः काल अपने हृदय में ज्योतिर्मय आत्मतत्त्व का स्मरण करता हूँ, जो सच्चित् सुख स्वरूप है, परमहंस संन्यासियों की परमगति है और तुरीय है, जो स्वप्न जाग्रत और सुशुप्ति अवस्थाओं से परे और नित्य है। मैं वही निश्कल ब्रह्म हूँ, भूतों का समूह नहीं।''

एक यथार्थ ऋशि शंकर सभी ईश्वरीय भावों में एक ही परमात्मसत्ता को पहचानते हैं। वे गुरू को प्रणाम करते हैं, और उनमें भी उसी नित्य अनन्त सत्ता का दर्शन करते हैं :

विष्वं दर्पणदृश्यमानगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरूते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरूमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।। [23]

अर्थात् ''जो माया द्वारा निद्रा में, विश्व को दर्पण में प्रतिबिंबित नगरी की तरह अपने भीतर होते हुए भी बाहर देखता है, तथा जो प्रबोध के समय अपने अद्वय स्वरूप का साक्षात्कार करता है, उस मंगलमय गुरूरूप में प्रकट दक्षिणामूर्ति को मैं प्रणाम् करता हूँ।'' शंकराचार्य कि मान्यता है कि शिव, विष्णु तथा अन्यान्य देवी देवता उस अनन्त को ही व्यक्त करते हैं, जो ससीम को सत्ता प्रदान करता है। शिव की स्तुति करते हुए वे कहते हैं :

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोकांरवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्रा विश्वम्।। [24]

अर्थात् ''मैं उस एक अद्वय, जगत् के आदिकारण, निरीह, निराकार, ओंकारवेद्य परमात्मा को प्रणाम् करता हूँ, जो जगत् की सृष्टि, पालन और विनाश करने वाले ईश्वर हैं।'' भगवान विष्णु के प्रति प्रगाढ़ भक्ति के साथ वे प्रार्थना करते हैं :

---

[22]प्रातःस्मरण स्तोत्र : 1
[23]दक्षिणामूर्ति स्तोत्र : 1
[24]वेदसारषिव स्तोत्र : 5

अविनयमपनय विश्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः।। [25]

अर्थात् ''हे सर्वव्यापी प्रभू ! मेरे अविनय को दूर करो, और मेरे मन को षांत करो। विषयमृगतृष्णा को नष्ट करो। समस्त प्रााणियों के प्रति दया का मेरे हृदय में विस्तार करो और मुझे संसार सागर से पार करो।'' इस पद के आगे वे कहते हैं – ''तरंगें सागर में विलीन होती हैं, सागर तरंगों में नहीं। इसी तरह हे नाथ ! समस्त भेदों के समाप्त हो जाने पर मैं तुममें लीन होता हूँ, तुम मुझमें नहीं।'' [26]

इस महान अद्वैत वेदान्ती का हृदय माँ जगदम्बा की प्रेम पूर्वक पुकार के प्रति सबसे अधिक आकृष्ट होता है और वे स्वयं को एक सामान्य भक्त मानकर अत्यन्त मार्मिक प्रार्थना करते हैं :

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेशां मध्ये विरलतरलोऽशहं तव सुतः।
मदीयोऽष्यं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।। [27]

अर्थात् ''हे जननि ! पृथ्वी में तुम्हारे अनेक योग्य पुत्र हैं, उनमें मैं एक अयोग्यतम् पुत्र हूँ। फिर भी हे षिवे ! मेरा त्याग करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है, क्योंकि कुपुत्र जन्म ले सकता है, लेकिन कुमाता कभी नहीं हो सकती।'' उनकी दृष्टि में कोमलतम भावनाओं की अद्भुत लीला के होते हुए भी माँ जगदम्बा ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है और उनका मानवीय रूप उसका एक प्रतिबिंब मात्र है। उसी जगदम्बा ने लीला के लिए एक अद्वितीय चैतन्य सत्ता को ईश्वर और जीवों में विभक्त कर दिया है। और उन्हीं की सत्ता में शंकर स्वयं को विलीन करना चाहते हैंः

कदा वा हृशीकाणि साम्यां भजेयुः कदा वा न शत्रुर्न मित्रं भवानि।
कदा वा दुराशाविशूचीविलोपः कदा वा मनो मे समूलं विनृयेत्।। [28]

अर्थात् ''हे जगदम्बे ! कब मेरी इन्द्रियाँ संयत होंगी, कब मेरे शत्रु अथवा मित्र नहीं रहेगें, कब दुराशा रोग का विलोप होगा, कब मेरा मन समूल नष्ट होगा ?'' शंकर भक्ति में ईश्वर का महत्व भलिभांति जानते थे। उन्होनें अपनी रचनाओं में उस ईश्वर को निर्गुण का ही सगुण रूप कहा –

---

[25]विष्णुषट्पदी : 1
[26]विष्णुषट्पदी : 3
[27]देव्यापराधक्षमापन स्तोत्र : 3
[28]देवी भुजंगप्रयात स्तोत्र : 20

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमः पारमाद्यान्त हीनं
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्।। [29]

अर्थात् ''जो अजन्मा है, नित्य है, कारणों का भी कारण है, कल्याण स्वरूप है, एक है, प्रकाशकों का भी प्रकाशक है, अवस्थात्रय से विलक्षण है, अज्ञान से परे है, आदि और अनंत है। उस परम् पावन अद्वैत स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।'' उदाहरणतः यदि हम जानना चाहते हैं कि मिठास क्या है ? तो हमें मीठा पदार्थ चखना होगा तभी प्रत्यक्ष रूप से हम मिठास के बारे में जान सकेगें इसी प्रकार सगुण की उपासना किये बिना निर्गुण का ध्यान कठिन है। [30] शंकर दर्शन में भी भक्ति का ईष्वर से अटूट संबन्ध है। जिसकी घोशणा वे स्वयं करते हुए कहते हैं कि ''भक्ति से ईश्वर कृपा सहज हो जाती है।'' [31]

भक्ति की आवश्यकता :– शांकर दर्शन में निर्विशेष ब्रह्म माया के द्वारा आवृत्त होने पर जब सगुण रूप में आभासित होता है तब उसे ईश्वर की संज्ञा दि जाती है। वह ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय का हेतु है और यह क्रिया उसकी लीला मात्रा है। [32] शंकर द्वारा मायोपहित ब्रह्म (ईश्वर) की अभिकल्पना भक्ति हेतु कि गई। चूकिं ईश्वर जगत का स्वामी तथा नियन्ता है अतः जीव उसकी भक्ति करता हुआ उसे दया, दाक्षिण्य, करूणा आदि दिव्य गुणों से मण्डित करता है। भक्ति एक व्यवहारिक गुण है और ईष्वर से व्यवहार हेतु यही एक मात्र साधन है।

यह संसार भाववैचित्र्य से परिपूर्ण है यहाँ सुख दुःख की विचित्रता सर्वत्र व्याप्त है। अतः उस परम् चैतन्य जो सदा सर्वदा आनंदमय परमानंद है, से जीव का सम्बन्ध भक्ति द्वारा ही होता है। भक्ति ही उस आनंदघन के साथ जीव का संबंध स्थापित कराती है। अर्थात् उस परमानंद के साथ तारतम्य का नाम ही भक्ति है और यह भक्ति ही मोक्ष का हेतु होती है। [33] गीताभाश्य में शंकर भक्ति की आवश्यकता को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं विवेक परमात्म आत्म विशयक ज्ञानरूप भक्ति से ही प्राप्त होता है। [34] मुक्ति के लिए भी शंकर भक्ति को आवश्यक मानते हैं। [35] भक्ति अंतःकरण को निर्मल करने का एक साधन है जिसके द्वारा निर्मल हुए अंतःकरण में ब्रह्म की भावना करना सरल हो जाता है। और इस ब्रह्मभाव में स्वात्मतत्व का अनुसंधान ही भक्ति है। [36]

[29] वेदसारशिव स्तोत्र : 7
[30] श्री जयेन्द्रसरस्वती : हमारी प्राचीन संस्कृति : पृष्ठ – 62,63
[31] विवेकचूड़ामणि : 33
[32] ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य : 2/9/33
[33] प्रबोधसुधाकर : द्विधाभक्तिप्रकरण – 166, 167
[34] गीताशांकरभाष्य : 8/22
[35] मणिरत्नमाला : 17
[36] विवेकचूड़ामणि : 32

भक्ति की परिणति :— शंकर दर्शन के अनुसार एक विवेकशील जीव का चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार अर्थात् जीव में ब्रह्म भाव का अवतरण है। भव बंधन से मुक्ति दिलाने वाली एक मात्र वस्तु भगवान की कृपा है जो अनेको जन्मों से साधना के बाद एक मात्र भक्ति से प्राप्त हो जाती है उनकी इस निर्हेतुकी कृपा से शुक देवादि भवबंधन से मुक्त हो सके।[37] अर्थात् भक्ति की परिणति मोक्ष में होती है। अन्यत्र दर्शनों में भी ईश्वर भक्ति का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति ही है।

गीताभाष्य में आचार्य शंकर भक्ति की परिणति के विषय पर कहते हैं कि जो समस्त इन्द्रियों द्वारा ईष्वर का भजन करता है वह उसी में लीन हो जाता है।[38] अन्यत्र भी वह स्वीकारते हैं कि भक्त ईश्वर का स्मरण करता हुआ उसे ही प्राप्त होता है।[39] साकार ब्रह्म की उपासना से उस परम्ब्रह्म को प्राप्त करने की ईच्छा तीव्र से तीव्रतर हो जाती है जैसे जैसे यह अभिलाषा तीव्र होती है वैसे वैसे भक्ति अपनी चरमावस्था तक पहुँचती जाती है। और जहाँ पर ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो जाती है वहीं भक्ति की भी परिणति समझनी चाहिए। इस प्रकार शंकर ने अद्वैत वेदान्त के जटिल पक्ष से कुछ सरल मार्ग की परिकल्पना कर उन साधकों के लिए एक ऐसे मार्ग का निर्माण किया जो ब्रह्म प्राप्ति के दुर्गम मार्ग पर सीधे चलने में समर्थ नहीं हैं वे भक्ति के मार्ग से उसी परिणति को प्राप्त होते हैं जिससे अद्वैत के ज्ञानमार्ग से। अतः यह स्वयमेव ही सिद्ध हो जाता है कि शंकर दर्शन में भक्ति मोक्ष दायनी है।

[37]सर्ववेदान्त सार सिद्धान्त संग्रह : 11

[38]गीताशांकरभाश्य : 4/55

[39]गीताशांकरभाश्य : 8/14

11

प्राचीन साहित्य में चिकित्सा

डॉ. कृष्णकुमार त्रिपाठी

इहलौकिक जगत में प्रत्येक जीवधारी का भौतिक शरीर नश्वर है तथापि मानव शरीर को लौकिक सुख–सुविधाओं और असीमित आनंदानुभूति का साधन माना गया है। इसलिए 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' जैसी उदात्त भावना में शरीर का, धार्मिक साधना के लिए स्वस्थ होना आवश्यक है। परंतु लोक–जीवन की आत्मिक सुखानुभूति एवं तृप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति अथवा जीवमात्र के लिए शरीर का पूर्ण स्वस्थ होना अथवा शरीर के प्रति अनुरक्त होना सहज़ स्वाभाविक हैं संभवतः यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर अद्यतन गृहस्थ और विरक्त सभी का मानव जनित शारीरिक व्याधियों या स्वास्थ्य–चिंतन के प्रति संवेदनशीलता और पथ्य–भैशज्य–सम्मत खान–पान तथा चिकित्सा के प्रति सचेष्टता दिखाई देती हैं।

काय–क्लेश, प्रधान तप में विश्वास और शरीर के प्रति प्रायः उदासीन भाव रखने वाले ऋषि–मुनि, साधु–संत, आजीवक, परिब्राजक, श्रमण, भिक्षु एवं श्रावक आदि भी धार्मिक साधना के निमित्त स्वस्थ–शरीर की आकांक्षा रखते थे। गृहस्थों के लिए भी चार में से तीन पुरूषार्थों–धर्म, अर्थ और काम की साधना के लिए शरीर का निरोगी रहना अत्यंत आवश्यक है। भौतिक काया को स्वस्थ रखने के लिए संतुलित आहार और प्राकृतिक चिकित्सा मूल उपाय है।

मानव, सृष्टि के आरंभ से लेकर वैदिक–पौराणिक काल की ऋषि–कुल परंपरा में अग्रसर सामाजिक जन–जीवन, प्रकृति के सानिध्य में रहकर सुखी और स्वस्थ जीवन के लिए पंचतत्वों (आकाश,जल, अग्नि, पृथ्वी तथा वायु मरुत) की अभ्यर्थना करता था। ऋग्वेद, में वर्णित आकाश, अंतरिक्ष और पृथ्वी की दिव्य शक्तियों में वरुण, सूर्य, सविता, मित्र, विष्णु एवं उषा के साथ स्वर्ग के देवताओं के रूप में इन्द्र रूद्र तथा वायु और पृथ्वी के देवों में अग्नि, सोम, वृहस्पति, और स्वतः पृथ्वी–देवी उनके रक्षक थे। वस्तुतः वैदिक ऋषि और

समाज, प्रकृति के मुक्त वातावरण मे रहते थें जिस समय उन्हें जो शक्ति प्रभावित करती थी, उसे ही वे परमदेव मानकर उसकी स्तुति कर प्रसन्न करते थे और अपने जीवन की रक्षा करते थे। अथर्ववेद से रोग–निवारण के लिए औशधि प्रयोग, तंत्र–मंत्र, झाडू–फूंक, जादू–टोना तथा समाजशास्त्र के संबंध में जानकारी मिलती है। उत्तर वैदिक काल में आयुर्वेद, शल्यशास्त्र (चीरफाड़) एवं धातु–विज्ञान आदि की भी उन्नति हुई।

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में यज्ञ–पुरुष से प्रकट होने वाले चतुर्वेदों–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद से आयुर्वेद पाँचवाँ उपवेद बना। महर्शि कश्यप का मत है– एवमेवायमृग्वेद यजुर्वेद, सामवेदार्थव वेदेभ्यः पडमों भवत्यायुर्वेद इति (कश्यप संहिता, विमानस्थान)। महर्षि चरक तथा सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद बताया है।

प्राचीन वैदिक ग्रंथों तथा पुराणों के अनुसार धनवन्तरि भगवान् ने आयुर्वेद की रचना की थी, जो कि चिकित्सा–पद्धति तथा स्वास्थ्य के लिए जीवनोपयोगी शास्त्र हैं।

पौराणिक साहित्य के अनुसार धनवन्तरि की उत्पत्ति देवासुर संग्राम में गंभीर रूप से हताहत देवताओं की जीवन–रक्षा के लिए हुई थी। देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् विशु ने देवताओं को रोग, जरा (वृद्धावस्था) तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए देवों तथा असुरों को एक साथ क्षीर सागर–मंथन करने का आदेश दिया। देवताओं के अनुरोध पर समुद्र मंथन से निकलने वाली वस्तुओं के समान बंटवारे के प्रलोभन के परिणामस्वरूप राक्षसगण समुद्र–मंथन के लिए राजी हो गए। भगवान् विष्णु ने स्वतः कच्छप अवतार (कूर्मावतार) धारण कर मंदिरगिरि (मंदराचल) को समुद्र के अंदर अपनी पीठ पर धारण कर नागराज वासुकि को रस्सी (नेती) के रूप में प्रयुक्त कर और क्षीरसागर में अनेक औशधियों, जड़ी–बूटियों को डालकर देवों तथा असुरों के अपार श्रम के साथ समुद्र–मंथन किया गया, जिसके परिणामस्वरूप श्री मोहिनी (लक्ष्मी), रम्भा आदि अप्सराऐं, कालकूट (विश) वारुणी (मदिरा), शंख, कौस्तुभमाणि, ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवा अश्व, कामधेनु, धनुश, चंद्रमा, पारिजात, कल्पवृक्ष तथा अंत मे अत्यंत धवल–श्वेत वस्त्र धारण किए तथा हाथ में अमृत घट लिए भगवान् धनवन्तरि प्रकट हुए। चतुर्भुज धनवन्तरि साक्षात् भगवान् विष्णु के अंश से प्रकट हुए थे, इसलिए उनका स्वरूप श्रीहरि के समान श्यामल वर्ण, दिव्य, शौर्य एवं आभायुक्त था।

देवों में अमृत वितरण के पृचात् देवराज इन्द्र के अनुरोध पर धनवन्तरि ने अमरावती (देवपुरी) में रहना स्वीकार कर लिया। कुछ समय पृचात् पृथ्वी लोक में अनेक व्याधियाँ फैली। भू–लोकवासी मानव, व्याधियों से कष्ट पाने लगे। तब इन्द्र की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् धनवन्तरि ने काशिराज दिवोदास के रूप में पृथ्वी पर अवतार धारण किया। इन्हें आदिदेव, अमरवर, अमृतयोनि, अब्ज, धन्व तथा दीर्घ आदि नामों से संबोधित किया गया है। लोक–कल्याण, वृद्धावस्था के कष्ट एवं रोगों के निवारण के लिए कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी धनतेरस के दिन भगवान् विष्णु स्वयं धनवन्तरि के रूप में प्रकट हुए। इसीलिए भक्तगण एवं आयुर्वेद के विद्वान प्रतिवर्ष कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को आरोग्य–देवता के रूप में धनवन्तरि जयंती का आयोजन कर लोक–कल्याण की प्रार्थना करते हैं।

पुराणों के अनुसार ब्रह्मा ने सबसे पहले, आयुर्वेद की रचना की थी। तत्पश्चात् दक्ष, अश्विनी कुमारों, इन्द्र तथा धनवन्तरि को आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। धनवन्तरि ने वृह्द आयुर्वेद को अष्टवर्गों, शल्य तंत्र (सर्जरी) शालाक्यतंत्र, कल्प, चिकित्सा, अगदतंत्र, भूतविद्या, कौमार भृत्य, रसायन शास्त्र तथा बाजीकरण आदि में विभक्त किया। उन्होंने इनके अतिरिक्त नरायुर्वेद, गौवायुर्वेद, अृवायुर्वेद एवं हस्त्यायुर्वेद की रचना की। वृक्षायुर्वेद तथा शालिहोत्र संहिता के अनुसार जीव–जंतुओं की चिकित्सा पद्धति का विकास भी धनवन्तरि ने किया।

विष्णु पुराण, चरक, सुश्रुत संहिताओं, महाभारत (उद्योग पर्व) तथा कतिपय अन्य ग्रंथों में धनवन्तरि के स्वरूपों का वर्णन मिलता है, जो देवों तथ भूलोकवासियों को रोग, जरा और मष्त्यु के भय से मुक्त कराते हैं। इस प्रकार धनवन्तरि जहाँ एक ओर लोक स्वास्थ्य के कल्याण का कार्य करते हैं, वहीं उनके नाम स्मरण से भी अनेक व्याधियों का निवारण भी होता है।

प्रसंगवंश यहां यह कहना उपयुक्त होगा कि प्राचीन काल में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वाराणसी, चिकित्सा–शास्त्र, के अध्ययन–अध्यापन के विशिष्ट केन्द्र थे। राजकुमार सिद्धार्थ (गौतमबुद्ध) ने जन्म, जरा, रोग, मरण आदि मानव–दुःखों के कारण ही गृह तथा राज्य का परित्याग कर समग्र मानवता के कल्याण का मार्ग खोज निकाला।

महात्मा बुद्ध के समय या उससे कुछ पहले तक्षशिला में चिकित्सा शास्त्र के प्रधान आचार्य आत्रेय थे। बुद्ध के समकालीन वैद्य जीवक ने तक्षशिला में रहकर ही आयुर्वेद का अध्ययन किया था। बौद्ध जातक कथाओं में जीवक और अन्य अनेक चिकित्सकों की आश्चर्यजनक भैशजिक प्रक्रियाओं का वर्णन मिलता है। विनयपिटक, (भैशज्य स्कंधक) से ज्ञात होता हैं कि बौद्ध संघ में भिक्षुओं के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये चिकित्सा–भैशज्य की अनुज्ञा देकर बुद्ध ने भिक्षुओं के साथ–साथ तत्कालीन राजन्य एवं श्रेणि वर्ग के साथ सामान्य जनों का भी कल्याण किया। जीवक कौमार भृत्य ने मागध श्रेणिक, बिंबिसार, राजगृह के श्रेष्ठि गृहपति, बनारस के श्रेष्ठि पुत्र, राजाप्रद्योत के पाण्डुरोग तथा तथागत का उपचार किया था।

स्ट्रेबो के अनुसार ये चिकित्सा–औषधि की अपेक्षा भोजन द्वारा रोगों को निवारण करना अधिक पसंद करते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (2.8) में अनेक प्रकार के चिकित्सकों का उल्लेख मिलता है। ''उत्तर पश्चिमी भागम् पण्य भैशज्यगृहम्'' नगर के उत्तर–पश्चिम भाग में पण्य भैशज्य–गृह, जहां औषधियों की पण्य (बाजार) रूप में ब्रिकी की जाती हो, स्थापित किये जाये। भिशक और जांगलीविद् के अतिरिक्त अनेक प्रकार के चिकित्सकों का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में किया गया है। इन्हें गर्भ, व्याधि वैद्य या सूतिका चिकित्सक कहा गया है। विभिन्न प्रकार की औषधियों और चिकित्सा के काम आने वाली वनस्पतियों के उत्पादन के लिय राज्य की ओर से व्यवस्था की जाती थी, जिन्हें विक्रय के लिए भैशज्यागारों में भेज दिया जाता था।

मौर्य–सम्राट् अशोक के शासन काल में मगध साम्राज्य के साथ–साथ चोल, पाण्ड्य, सतियपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णि, यवनराज अंतियोक और उसके पड़ोसी देशों में भी सर्वत्र मनुष्य चिकित्सा और पशु–चिकित्सा की व्यवस्था की गई एवं मनुष्योपयोगी और पशुपयोगी औषधियों जहाँ–जहाँ नहीं थी, लाई गई और रोपी गई (अशोक का गिरनार शिला–प्रज्ञापन–2)।

बौद्धग्रंथ विनयपिटक (भैषज्य स्कंधक) में उल्लेखित चिकित्सा भैषज्य का मूल स्रोत हमें वैदिक ग्रंथों से जहां एक ओर निःसृत दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर तथागत द्वारा अनुमोदित चिकित्सा–भैशज्य संघीय नियंत्रण में प्रतिष्ठित हुआ।

कालान्तर में मौर्य–सम्राट अशोक की संवेदनशीलता एवं लोकोपयोगी उदात्त भावना का प्रश्रय प्राप्त कर आयुर्वेद, बहुजन–हिताय, बहुजन–सुखाय का आधार बना।

'संयुक्त निकाय' के अनुसार वैषाली की कूटागार शाला के निकट स्थित एक ग्लानशाला (रोगीकक्ष) में स्वयं बुद्ध रोगियों की मनःशांति के लिए उपदेश भी देते थे। परवर्ती मुद्राभिलेखों से पाटलिपुत्र की आरोग्य षाला पर प्रकाश पड़ता है। चिकित्सा और चिकित्सा संबंधी पुरातात्विक–अभिलेखीय प्रमाणों में कुम्राहार उत्खनन, पटना से प्राप्त अभिलिखित मृण्मुद्रा और एक पात्रखंड पर गुप्तकालीन ब्राह्मीलिपि में क्रमशः उत्कीर्ण– 'श्री आरोग्य बिहारे भिक्षु संघस्य' और आरोग्य बिहार, जैसे अभिलेखों में इस बिहार का चिकित्सालय अथवा आरोग्यशाला होना प्रमाणित होता है। ऐसी सुविधायुक्त, आरोग्य षला में भिक्षु–भिक्षुणी तो स्वास्थ्य लाभ करते ही रहे होंगे तथा पित्त रोग पीड़ित गृहस्थ भी चिकित्सा तथा परामर्ष के लिए यहां आते रहे होंगे (दुबे, सीताराम–प्राचीन बौद्ध संघ में स्वास्थ्य, चिंत्तन और रुग्ण विचार–विष्वंभरा, भाग दो पृ. 500–01)।

रसायन तथा धातु विज्ञान के ज्ञाता नागार्जुन के अनेक परीक्षणों द्वारा विभिन्न धातुओं, खनिज–पदार्थों की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा रोगों की चिकित्सा की विधि बतलाई। गुप्तकाल आयुर्वेद चिकित्सा के लिए विकास का युग था। इस समय चरक तथा सुश्रुत ने चिकित्सा–विज्ञान के क्षेत्र में नवीन प्रयोग तथा अनुसंधान किए। गुप्तकाल में वनस्पतियों, पारद धातुओं तथा भस्मों के प्रयोग द्वारा विविध जीवनदायिनी औषधियाँ बनाई जाती थीं।

चरक संहिता आयुर्वेद संबंधी सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता हैं चरक को कुषाण सम्राट् कनिश्क का वैद्य भी कहा जाता है। जब राजा कनिष्क की रानी गंभीर रूप से बीमार पड़ी, तब चरक ने उनकी चिकित्सा की थी। वर्तमान चरक संहिता, ई. आठवीं–नवीं शती के कश्मीरी दृढ़बल द्वारा संषोधित संस्करण है। आहार, रोग, रोग–विज्ञान, शरीर विज्ञान, निदान, चिकित्सा एवं भ्रूण विज्ञान आदि विशयों का इसमें समावेश मिलता है। चरक को सांख्य, न्याय और वैशेषिक दर्शन का भी अच्छा ज्ञान था।

चरक की भांति आयुर्वेद के दूसरे ख्याति प्राप्त आचार्य सुश्रुत थे, जिन्होंने सुश्रुत संहिता की रचना की थी। महाभारत के अनुसार सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र थे और नागार्जुन ने इनके कार्य को आगे बढ़ाया। नवीं–दसवीं शताब्दी तक इनकी ख्याति कंबोडिया तथा अरब देशों

तक पहुँच गई थी। जैय्यट, गयदास, चक्रपाणिदत्त ने 11वीं–12वीं शताब्दी में और दल्लण ने 13 वीं शताब्दी में इनकी रचना पर टीकायें लिखी। चन्द्रट ने सुश्रुत की संहिता का संशोधन किया। वाराणसी के राजा दिवोदास के अधीन सुश्रुत ने अध्ययन किया था। चरक संहिता के समान इसमें सूत्र–स्थान, निदान–स्थान, शरीर–स्थान, चिकित्सा स्थान, कल्पास्थान और उत्तरतंत्र का समावेश मिलता है। जहाँ तक व्यावसायिक नैतिकता का संबंध है, सुश्रुत ने वैद्यों से उच्च स्तर बनाए रखने की अपेक्षा की है। चक्रपाणिदत्त ने आयुर्वेद दीपिका टीका नाम से सुप्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रंथ, चरक संहिता पर लिखी थी। क्या विश्वमित्र सुश्रुत एवं वैद्य सुश्रुत एक ही थे ? क्या विष्वमित्र एवं दिवोदास समकालीन थे ? ये प्रश्न विचारणीय हैं।

सारांशतः आयुर्वेद की चर्चा वैदिक काल से ही उपलब्ध होती हैं और दूसरी शदी ई. पूर्व तक चरक संहिता और सुश्रुत संहिता ने अपना स्वरूप स्थापित कर लिया था। उसकी महत्ता और ख्याति के कारण ही, कदाचित गुप्तकाल में हमें बागभट्ट के अष्टांग संग्रह के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रंथ का पता नहीं चलता, इसकी रचना ई. छठी शती ई. में हुई। संभवतः इसी काल में 'नाव नीतिकम' नामक ग्रंथ की रचना भी हुई थी। ई. 1890 में इस ग्रंथ की प्रति पूर्वी तुर्किस्तान स्थित कुचर नामक स्थानक से बाबर नामक एक सैनिक अधिकारी को मिली थी। जिसे बाबर मैन्युस्क्रिप्ट (पाण्डुलिपि) कहा गया है। यह आयुर्वेद का विवरणात्मक ग्रंथ न होकर किसी चिकित्सक के नुस्खों का संग्रह मात्र है। इन नुस्खों को भेल संहिता, चरक संहिता और सुश्रुत संहिता से संगृहीत किया गया है। यह संग्रह चरक एवं सुश्रुत के अतिरिक्त हारीत, जातुकर्ष क्षारपाणि और पाराशर संहिता के आधार पर लिखा गया हैं। ये ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं हैं।

प्राचीन साहित्यिक अनुश्रुति के अनुसार चंद्रगुप्त द्वितीय की राज्यसभा में विद्यमान नवरत्नों में धनवन्तरि भी एक था। धनवन्तरि को आयुर्वेद का प्रथम मुख्य आचार्य माना जाता है। संभवतः गुप्तकाल में धनवन्तरि नाम का अन्य राजवैद्य रहा होगा, जिसका नामोल्लेख, कुम्राहार–उत्खनन (पटना), से प्राप्त पात्रखण्ड पर उत्कीर्ण मिला है।

पशु–चिकित्सा संबधी ग्रंथ भी इस काल में लिखे गए थे। गुप्तोत्तर काल में रचित, हस्त्यायुर्वेद नामक ग्रंथ के 160 अध्यायों में हाथियों के मुख्य रोगों, उनके निदान और शल्य–चिकित्सा का वर्णन है। यह अंग नरेश रोमपाद और ऋषि पालकाप्य के बीच बातचीत के रूप में है।

शालिहोत्र लिखित अश्वशास्त्र भी संभवतः छठवीं शती ई. की रचना है। ह्वेनसांग और तारानाथ के अनुसार सुविख्यात् महायान दार्शनिक नागार्जुन रासायनिक और खनिज शास्त्री भी थे। सोना, चांदी, लोहा, तांबा आदि खनिज धातुओं में भी रोग–निवारण की शक्ति है। यह तथ्य उद्घाटित कर उन्होंने इस चिकित्सा का आविष्कार किया था। चिकित्सा के निमित्त पारद और लौह के उपयोग का उल्लेख वराहमिहिर ने भी किया हैं।

प्रसंगवश उल्लेखित है कि यौगिक–क्रियाओं के माध्यम से शरीर को पूर्ण स्वस्थ्य एवं निर्विकार रखने की भारतीय प्राचीन वैदिक परम्परा सनातन है। हमारे ऋषि–मुनियों ने योग–साधन के माध्यम से मानव शरीर को स्वस्थ्य–निरोगी रखने पर विशेष बल दिया है।

योग–दर्शन शरीर, इन्द्रिय तथा मन पर नियंत्रण रखने पर जोर देता है। चित्त की परिशुद्धि तथा बुद्धि की निर्मलता की प्राप्ति के लिए योगाचार्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। इस मार्ग के आठ अंक हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारगा, ध्यान तथा समाधि। इनमें प्रथम पाँच बहिरंग साधन हैं तथा षेश तीन अंतरंग साधन है।

सामान्तया हम जो शारीरिक व्यायाम करते हैं, उससे मानव इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती हैं। परन्तु योग का वास्तविक स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निःसृत 'श्रीमद्भगवतगीता' के अठारह अध्यायों में वर्णित है।

यौगिक क्रियाओं के माध्यम से 'इन्द्रिय–निग्रह', कर स्वस्थ्य–सुन्दर शारीरिक–सौष्ठव प्राप्त किया जा सकता है, जिससे मानव–शरीर निरोगी बना रहता है। अष्टांगिक मार्गों– यम,नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, तथा समाधि पर चलकर साधन करने से 'ब्रह्म–दर्शन' दिया जा सकता है। महर्षि पातंजलि ने योग–दर्शन की व्यापक व्याख्या की है।

भारतीय वैदिक, पौराणिक, सांस्कृतिक परंपरा में भगवान् धनवन्तरि का भू–लोक में अवतरण आयुर्वेद चिकित्सा का मूलाधार बना। स्वस्थ शरीर ही पहला भौतिक सुख कहा गया है– 'पहला सुख निरोगी काया'। इसीलिये भारतीय जन–मानस में श्री धनवन्तरि जयंती, आयुर्वेद के आचार्यों, चिकित्सकों तथा चिकित्सा संस्थानों द्वारा विश्व की मानवता के कल्याण के लिए प्रतिवर्ष कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को समारोह पूर्वक आयोजित की जाती हैं और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः' की उदात्त भावना के शास्वत संदेश को जन–जन तक पहुंचाने की मंगल कामना की जाती है।

प्रसिद्ध योगा मुनिभिः प्रयुक्ताष्चिकित्सकैर्ये बहुषोऽनुभूताः।
विधीयते वैद्यवरेण तेशां सुसंग्रह सज्जन रज्नाय।।
शार्ग्धर संहिता)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राहुल सांस्कृत्यायनः विनयपिटक (महावग्ग), महाबोधि (अनुवादक), ग्रंथमाला–3 सारनाथ (बनारस), 1935, पृ. 215–225 (भैषज्य–स्कंधक)
2. विनय पिटक, महावग्ग (भिक्षु जगदीक्ष कश्यप द्वारा संपादित तथा नालंदा देवनागरी पाली सिरीज में प्रकाशित, पृ. 293–295 इत्यादि। पाली पब्लिकेशन बोर्ड, बिहार शासन, 1956) दृष्टव्य, अत्रिदेवः
3. आयुर्वेद का इतिहास (हिन्दी समिति) ग्रंथ माला–33; विद्यालंकार, 1960, पृ. 91–110 प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ.प्र.

4. आयुर्वेद का इतिहास (प्रतापसिंह कविराज), विक्रम स्मृति ग्रंथ, वि.सं. 2001पृ. 809–820.
5. होम ले : स्टडीज इन द मेडिसीन ऑफ ऐंश्येंट इंडिया.
6. रॉकहिल : लाइफ ऑफ द बुद्ध
7. मुखोपाध्याय,जी, सर्जिकल इन्स्ट्रूमेन्ट्स इन ऐन्श्येंट इंडिया
8. विद्यालंकार, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृ. 303–8.
9. पाण्डेय, गोविन्दचन्द, बौद्ध–धर्म के इतिहास का विकास, लखनऊ, 1978.
10. पाण्डेय, राजबली, अशोक के अभिलेख (अशोक का शिला प्रज्ञापन–2, गिरनार, जूनागढ़, गुजरात) पंक्ति 1–7.
11. हुल्ष, कार्पस इंसि. खण्ड 1, पष् 2–4; सेलेक्ट इन्सक्रपम्, खण्ड–1, पष् 17–18
12. वाजपेयी, कृष्णदत्त तथा अन्य :ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, पष् 69–72, (जयपुर 1972)
13. संयुक्त निकाय, 26.7.8 (पाठमगेलंज सुत्त)।
14. शास्त्री, अजयमित्र, एन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, 1965, पृ0 122.
15. अल्तेकर, रिपोर्ट आन कुम्रहार एक्सकेवेशन्स, 1851–55, अभिलिखित मृण्मुद्रा, पृ. 106, पीरियेड 4–5 संख्या 17 के. आर–4, डी और अभिलिखित पात्र खंड, संख्या–एक.
16. दुबे, सीताराम–प्राचीन बौद्ध संघ में स्वास्थ्य–चिंतन और रुग्ण विचार, पृ. 498–510 (विश्वम्भरा, भाग–दो) नई दिल्ली, 1995 (प्रो .विश्वंभरशरण पाठक अभिनंदन–ग्रंथ)।
17. दुबे, सीताराम, सम्पादक बौद्ध युगीन भारत, प्रतिभा–प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पष् 149–159 दृष्टव्य त्रिपाठी, कृष्णकुमार : बौद्ध साहित्य में वर्णित चिकित्सा भैशज्य का विवेचन।
18. पद्मभूषण डॉ. ईष्वरी प्रसाद एवं शैलेन्द्र वर्मा, भारतीय इतिहास मीनू पब्लिकेशन, इलाहाबाद (1990)।
19. श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र तथा श्रीवास्तव, एम., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद 1991.
20. यादव, अच्छेलाल, भगवान धनवन्तरि और काशी, कला–सरोवर, वाराणसी, (प्रधान संपादक डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी) पृ. 10–13 1991–संख्या 1 अंक 5.
21. विश्वकर्मा, ईश्वर शरण, संसार का पहला स्वास्थ्य सेमीनार, रसरंग, 4 मई, 1997 (दैनिक भास्कर); भोपाल।
22. आयुर्वेद–सारसंग्रह, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, झाँसी, तृतीय संस्करण, संवत्–2011 (भूमिका) पृ. 1–13.

12

भावातीत ध्यान एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ0 नीलम श्रीवास्तव

ट्रान्सेन्डेन्टल मेडीटेशन 'भावातीत ध्यान' भारतीय योग प्रणाली एक गौण अंश है जो कि अमेरिका आदि अन्य देशों में पिछले दो दशकों में अधिक प्रचारित किया गया है। स्वर्गीय स्वामी ब्रहमानन्द, जगतगुरू शंकराचार्य, ज्योर्तिमठ अच्छे योगाभ्यासी और तांत्रित थे। उनके एक शिष्य महेश योगी ने भावातीत ध्यान के नाम से जो साधना प्रणाली प्रचारित की वह न तो साधना मार्ग और न योग की उच्च क्रिया। न इसे 'ध्यान' माना जा सकता है क्योंकि योग की परिभाषा में तो ध्यान अन्तिम लक्ष्य के निकट की दशा है जिसमें कि श्वसन क्रम इतना धीमा हो जाता है कि मिनट में एक बार या इससे भी कम होता है। न इसे 'भावातीत अर्थात् संवेग और मनो अनुभवों से परे कह सकते हैं क्योंकि इसका अभ्यास प्रातः सायं केवल कुछ मिनट के लिये किया जाता है, अन्य समय में पश्चिमी जगत में व्याप्त भागा दौड़ी और आपाधापी उसी रूप में बनी रहती है। फिर भी टी0 एम0 प्रणाली से मनोसंतुलन एवं मनोस्वास्थ्य में आशातीत लाभ हुआ है जो कि सैकड़ों प्रायोगिक अध्ययनों से स्पष्ट है।

भावातीत ध्यान की विधि शिथिलीकरण क्रिया और प्राणायाम के प्रारम्भिक योगों का समिश्रण है। शरीर को विश्रमिक दशा में रखकर चयापचय क्रिया मेटाबोलिज्म को घटाना, मांसपेशियों के तनाव को मनो सुझावों के माध्यम से कम करना, और मानसिक तनाव को भी शिथिलीकरण के द्वारा शान्त करना टी0 एम0 के अंग हैं।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक नील.ई. मिलर ने 'बायोफीडबैक' क्रिया द्वारा स्वचालित मांसपेशीय व्यवहार में परिवर्तन सिद्ध किया है। मिलर ने इस प्रयोगों को 'आपरेन्ट' कण्डीशनिंग विधि पर आधारित किया है, परन्तु ये प्रयोग शताब्दियों पूर्व भारत और जापान में योग ध और जेन साधना द्वारा सिद्ध किये जा चुके हैं। नोवेल प्राइज विजेता शरीर शास्त्री डा0 बाल्टर आर हेस नेविल्लियों पर अभिनव प्रयोग किया। उनके मस्तिष्क में हाइपोथेलेमस के एक भाग में उत्तेजना देने पर उनमें आक्रमण या पलायन प्रतिक्रिया (फाइट आर फ्लायट

रिसपोन्स) उत्पन्न कर दी गई। परन्तु जब हाइपोथेलेमस के दूसरे भाग में विद्युतीय उत्तेजना दी गई तो ध्यान की ऐसी शान्त मनोदशा उत्पन्न हो गई जो कि आक्रमण या पलायन प्रतिक्रिया की विरोधी दशा है।[1] इस दशा को उन्होंने ट्रोफोट्राफिक प्रतिक्रिया का नाम दिया जो कि अधिक संत्रास का सुरक्षात्मक उपाय बताया है। बिल्ली की उक्त शान्त दशा को मानव में शिथिलीकरण क्रिया के समकक्ष माना गया है। उसी आधार पर जर्मन मनोचिकित्सक एच0 एच0 शूल्ज ने 'आटोजीन ट्रेनिंग' को विकसित किया है, यह विधि शिथिलीकरण की क्रिया ही है।[2] एक अन्य मनोचिकित्सक ई.जैकोबसन रे 'प्रोग्रेसिव रेलैक्शेसन' के नाम से शिथिलीकरण की एक अन्य विधि का प्रसार किया जिसके द्वारा तनाव और मनो उद्वेलन को शान्त करने में सफलता मिली। मैनफ्रेड क्लाइनेज ने सेन्टिक साइकिल्स (Sentic cycles) के नाम से एक अन्य शिथिलीकरण की क्रिया का मनोविकार नियंत्रण में उपयोग किया है।[3] एक अन्य मनोवैज्ञानिक डा0 रावर्ट ई0 ओर्नस्टीन ने ध्यान द्वारा परिवर्तित चेतना स्तर (आल्टर्ड स्टेट आफ कान्शसनेस) की उपलब्धि स्पष्ट की है। उन्होंने तो कहा हे कि पाश्चात्य वस्तुपरक, व्यक्तिविहीन, वैज्ञानिक धारणा केवल तर्क और विश्लेषण को महत्व देती है। उसके लिये ऐसे मनोविज्ञान की कल्पना भी नहीं स्वीकारता है जो कि व्यक्ति के आन्तरिक अस्तित्व, अर्न्तज्ञान (इनट्यूशन) और पूर्णता मय (गेस्टाल्ट) धारणा पर आधारित हो। टी0 एम0 की विधि शिथिलीकरण और भारतीय श्वसन नियंत्रण किया पर आधारित है।

महेश योगी ने योग में से प्राणायाम का प्रारम्भिक रूप लिया जिसमें कि श्वसन क्रिया को धीमा और कुछ गहरा किया जाता है। षान्त वातावरण में बैठकर शरीर के मांसपेशीय तनाव को सुझाव द्वारा शिथिल किया जाता है उसी के साथ–साथ धीमी और गहरी श्वसन क्रिया जोड़ी जाती है। कभी–कभी इस दशा के साथ दो चार शब्दों के कोई मंत्र भी दोहराये जाते हैं जिससे कि मनोवैज्ञानिक प्रभाव कुछ गहरा हो सके इस दषा में दस से लेकर बीस मिनट तक प्रातः सायं अभ्यास करते हैं, इस विधि का अभ्यास दैनिक रूप से कई माह तक किया जाता है जिससे कि मानसिक तनाव से मुक्ति अधिक अच्छा मनोसंतुलन और सामाजिक सामंजस्य की सुधरी दशा प्राप्त होती है। हरवर्ट वेन्शन एवं विलियम क्लीपर की पुस्तक दि रिलेक्षेषन रिस्पोन्स नामक पुस्तक एवं टी0 एम0 फीडरेशन प्रोसेडिंग्स 1971 में भावातीत ध्यान संबंधी अनेकों अध्ययन प्रकाशित किये गये जिनसे स्पष्ट होता है कि मनोस्वास्थ्य के लिये टी0 एम0 उपचार एक उपयोगी विधि है।

हैरोल एच. ब्लूम फील्ड ने टी.एम. का प्रभाव मनोस्वास्थ्य के ऊपर जांचा उन्होंने अवसाद एवं पैरोनायड रोगियों पर प्रयोग किया। छः माह के अभ्यास के बाद एम.एम.पी. आई. परीक्षण के द्वारा उनके मनोस्थिति की जांच की गई और उसमें सुधार पाया गया।[4] डेविड औमीजोन्शन एवं अन्य ने टी.एम. का उपयोग औषधि सेवन करने वाले व्यसनग्रस्त रोगियों पर किया इन्होंने भी उनके मनोस्वास्थ्य में कुछ माह के अभ्याास के बाद सुधार पाया। इस शोध हेतु भी एम.एम.पी.आई. परीक्षण का उपयोग किया गया।[5] इसी प्रकार डेलडिक एवं रावर्ट रैग लैण्ड ने भी टी.एम. की उपयोगिता को एम.एम.पी.आई. के माध्यम

से जांचा और मनोस्वास्थ्य सुधारने में इसे उपयोगी माना। थियोफेहर एवं सिवली टोरवर ने सामान्य वर्ग पर टी.एम. का कुछ माह तक उपयोग किया इसके पश्चात फ्राई वर्गर पर्सनाल्टी इनवेन्टरी (एफ.पी.आई.) के माध्यम से उनकी मनोस्थिति जांची गई जिससे ज्ञात हुआ कि इन व्यक्तियों में नरवसनैस में कमी, मनोदैहिक विकारों में कमी, अवसाद की घटी दशा, चिड़चिड़ेपन में कमी एवं अधिक सहनशीलता, अधिक सामाजिकता एवं अधिक जिन्दादिली एवं अधिक आत्मविश्वास अधिक सहज व्यवहार, सहज प्रक्रियायें, अधिक सांवेगिक संतुलन आदि दशायें मिली। फिलिप फर्म्यूसन एवं जॉन क्रोर्वान[6] ने टी.एम. अभ्यास के बाद मनोस्वास्थ्य का मापन नैर्थरिज डबलपमेन्टल स्केल के माध्यम से किया इनके निश्कर्शों के अनुसार ऐसे व्यक्तियों में मनोअवसाद एवं मनस्ताप (न्यूरोटीसिजम) में घटती होती है। लम्बी अवधि के अभ्यासियों में कम अवधि के अभ्यासियों की तुलना में अधिक सुधार पाया गया। इन्होंने ही उसी मापक द्वारा आत्म परिपूर्णता की मात्रा का भी मापन किया जो लम्बी अवधि के अभ्यासियों में उच्चतम पाई गई आत्म परिपूर्णता अब्राहिम मैसलो द्वारा प्रतिपादित उच्चतम मनोविकास की स्थिति है। फर्ग्यूसन एवं क्रोवार्न ने भी टी.एम. के अभ्यासियों पर मनश्चिन्ता की मात्रा जानने का प्रयास किया। इस्पील वर्गर स्टेट ट्रेट इनजायरी इनवेन्टरी और कैटेल इनजायटी स्केल का उपयोग किया गया है। 43 माह के टी.एम. अभ्यासियों में मनश्चिन्ता की मात्रा सबसे कम पाई गई इसी प्रकार के परिणाम माउरिन स्टर्न के प्रयोगों द्वारा भी प्राप्त हुये जिन्होंने की 37 टी.एम. अभ्यासियों (6 माह से 6 वर्ष तक का अभ्यास) और 15 कन्ट्रोल ग्रुप के व्यक्तियों पर प्रयोग करने से प्राप्त हुये दोनों वर्गों में .01 स्तर का अंतर टी टेस्ट द्वारा प्राप्त हुआ। जो लाजर एवं लारेन्स फौरविल ने इपाट इनजायरी स्केल के द्वारा बारह सप्ताह के इक्कीस टी.एम. अभ्यासियों पर मनश्चिन्ता का मापन किया। प्री टेस्ट स्कोर एवं पोस्ट टेस्ट के माध्यम से .001 स्तर का अंतर ज्ञात हुआ अभ्यास के पष्चात मनश्चिन्ता की मात्रा घटी हुई पाई गई।[7] होबार्ड शेटर ने कनाडा के 80 स्कूल विद्यार्थियों पर टी.एम. अभ्यास का प्रभाव जांचा, 14 सप्ताह के अभ्यास के बाद जैक्शन पर्सनाल्टी इनवेन्टरी दी गई इस वर्ग में इन विद्यार्थियों की सहनशीलता की मात्रा बढ़ी हुई पाई गई जोन शैपीरो ने 180 प्रयोज्यो (औसत आयु 32 वर्ष) पर नार्थरिज डवलपमेन्टल स्केल एवं एस.टी.ए.आई. ऐक्जाइटी स्केल द्वारा मापन किया गया इस समूह को चार माह तक टी.एम. का अभ्यास कराया गया था। मनश्चिन्ता की मात्रा, मनस्तापीय स्थिति अवसाद दशा, आक्रामकता मात्रा और नकारात्मक व्यक्तित्व गुणों में कमी पाई गई जो कि .001 स्तर पर सार्थक रही। इसके साथ ही आत्म परिपूर्णता के स्तर में काफी मात्रा में बढ़ोत्तरी पाई गई। ये सारे अध्ययन सिद्ध करते हैं कि शिथिलीकरण एवं श्वसन नियंत्रण के द्वारा यथेष्ठ सीमा तक मनोदशाओं में नियंत्रण किया जा सकता है और उसके माध्यम से सामान्य मनोविकारों को रोकने में सफलता मिलती है।[8]

हर्वाट बेन्सन, मार्जेटा, रोजनर एवं क्लेमचक के द्वारा टी.एम. का मनोदैहिक रोगों पर भी प्रभाव जांचा गया। 86 प्रयोज्यों को छः सप्ताह तक टी.एम. विधि का अभ्यास कराया गया। परीक्षण पूर्व एवं परीक्षण पश्चात इनके रक्तचाप का मापन किया गया। ये सभी उच्च

रक्त चाप के रोगी थे। अध्ययन के दौरान भी अभ्यास के पूर्व एवं पश्चात रक्त चाप का मापन किया जाता रहा। इस दौरान उनके द्वारा ली जाती रही औषधि की मात्रा, भोजन की प्रका एवं धूम्रपान की मात्रा का भी ध्यान रखा गया। इनमें से केवल 36 व्यक्तियों ने औषधि की मात्रा या प्रकार में कोई परिवर्तन नहीं किया इसलिये अध्ययन केवल इन्हीं प्रयोज्यों तक सीमित रखा गया। अभ्यास पूर्व औसत सिटोलिक रक्त चाप 146 एम.एम.एच.जी. था। अभ्यास के पश्चात औसत सिस्टोलिक रक्त चाप 137 एम.एम.एच.जी. पाया गया। अभ्यास पूर्व डाइस्टोलिक रक्त चाप 93.5 एम.एम.एच.जी. था जो कि अभ्यास पश्चात घटकर औसत रूप में 88.9 एम.एम.एच.जी. हो गया। ये अन्तर सांख्यिकीय रूप से सार्थक पाये गये। ऐसा अनुमान है कि भावातीत ध्यान के अभ्यास से सेम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम पर प्रभाव पड़ता है और उसकी क्रिया की बढ़ी मात्रा घटती है। यह परिणाम अन्य दैनिक प्रभावों जैसे आक्सीजन उपयोग की मात्रा, हष्दयगति, श्वसन गति आदि के द्वारा प्रतिबिम्बित होता है।

वेन्सन एवं क्लिपर ने टी.एम. एवं अन्य शिथिलीकरण की विधियों का दैनिक बेरोमीटर के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन भी दिया है जो कि महत्वपूर्ण है।[9] यह निम्न रूप में प्रकट होता है।

इससे स्पष्ट होता है कि शिथिलीकरण की क्रियायें दैहिक प्रक्रिया में लाभकारी अन्तर लाती है। टी.एम. में इसके साथ श्वसन नियंत्रण भी जुड़कर मनोदशाओं में सकारात्मक परिवर्तन लाता है। जो कि मनोस्वास्थ्य एवं मनो संतुलन हेतु सहायक बनता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. उलमैन : हैण्डबुक आफ क्लिनीकल साइकोलौजी (1964) मैक्ग्रोहिल।
2. वेन्शन एवं क्लिपर : दि रिलेक्शेसन रिस्पांस (1975) कालिन्स सन्सक्लासगो, पृष्ठ75.
3. आर्नस्टीन : दि साइकोलौजी आफ कन्शसनेस (1975) फ्रीमैन लंदन
4. ब्लूम फील्ड (1975) दा यूजिज ऑफ टी.एम. इम साइकियाट्री टी.एम. प्रोग्रेम करेक्टिड पेपर्स भाग एक एम.आई.यू. प्रेस न्यूयार्क डेबिड आर्मी जोन्शन दा टी.एम. प्रोग्राम फार ड्रग येवियूज काउन्सलर्स टी.एम. प्रोग्राम कलेक्टिड पेपर भाग एक (1975) एम.आई.यू. प्रेस न्यूयार्क
5. फेहर एण्ड टौरवर : एफ.पी.आई. स्टडी ऑफ 49 इनडिवीयुलस, साइन्टीफिक रिसर्च ऑन टी.एम. प्रोग्राम भाग एक.
6. फर्ग्यूसन एवं कोर्बानः साइकोलौजीकल फाइन्डिग्स ऑन टी.एम. साइन्टीफिक रिसर्च आन टी.एम. प्रोग्राम भाग 1 (1975)
7. जौ लाजर एवं फारविल : दा इफेक्ट ऑफ टी.एम. आन इनपायरी ड्रग एब्यूज इटीसी, साइन्टीफिक रिसर्च ऑन टी.एम. प्रोग्राम एम.आई.यू. प्रेस (1975)
8. जौन शेपीरो : दि रिलेशनशिप आफ सेलक्टेड कैरेक्टरिस्टक्स ऑफ टी.एम. टेकनीक, इन ओमी जान्सन : साइन्टिफिक रिसर्च ऑन टी.एम. प्रोग्राम (1975) एम.आई.यू. प्रेस
9. वेन्शन एवं क्लियर : दि रिलैक्शेसन रिसपान्स (1975) कालिन्स ग्लासगो, पृष्ठ 70–71

शिथिलीकरण विधि	आक्सीजन उपयोग	श्वसन गति	हृदय गति	रक्त चाप	मांस पेषीय तनाव	अल्फा बेव
टी.एम.	घटा हुआ	घटी हुई	घटी हुई	घटा	माप नहीं	बढ़ी हुई
जैन / योग	घटा हुआ	घटी हुई	घटी हुई	घटा	मापन नहीं	बढ़ी हुई
आटोजीन ट्रेनिंग	मापन नहीं	घटी हुई	घटी हुई	स्पष्ट नहीं	घटा हुआ	बढ़ी हुई
प्रोग्रेसिव रिलैक्सेशन	मापन नहीं	मापन नहीं	मापन नहीं	स्पष्ट नहीं	घटा हुआ	मापन नहीं
सम्मोहन शिथिलीकरण सुाव सहित	घटा हुआ	घटा हुआ	घटी हुई	स्पष्ट नहीं	मापन नहीं	मापन नहीं
सेन्टिक साइकिल (क्लाइनीज)	घटा हुआ	घटा हुआ	घटी हुई	मापन नहीं	मापन नहीं	मापन नहीं

13

मंत्र योग की वैज्ञानिकता का विवेचनात्मक अध्ययन

सुनील कुमार श्रीवास

मानव जीवन का लक्ष्य अपने को परिश्कृत, परिमार्जित, विशुद्ध कर अपनी उत्पत्ति के कारण में ही लय कर देना है। यद्यपि 'नाद' ही 'तत्व' (परम सत्य) का अभिव्यंजक है किन्तु जब तक नाद का अन्त नहीं हो जाता, तब तक तत्वबोध नही होता। इस 'नाद' का भी लय कर देने पर तत्वबोध या आत्मसाक्षात्कार होता है और यही पर जीवन का सम्पूर्णतम् सत्य है। वेदान्त व उपनिश दों में इसे ही आत्मा बह्म व तत्वमसि का रूपक दिया गया है।

मंत्र द्वारा हम जहाँ पर हैं वही से हमारा विकास प्रारम्भ हो जाता है और यह विकास व्यक्तित्व की निम्नतर परतों से चेतना के शिखर तक सम्भव है। इस क्रम में व्यक्तित्व में जो घटना घटती है वह विवेक की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि है किन्तु यह क्रम मंत्र साधक पर निर्भर है कि उसे जाना कहाँ है, करना क्या है, पाना क्या है ? स्वयं भगवान, महामानव, सिद्ध पुरूष, ऋषि–मुनि इत्यादि जब इस धरा धाम पर आते है तो वे भी अपने उद्‌देश्य को पूरा करने के लिए किसी न किसी मंत्र का अवलम्बन लेते है और उस युग की माँग के अनुसार मंत्र के रूप में एक प्रेरणा पुंज दे जाते है। विश्वामित्र ने गायत्री मंत्र का अनुसंध ाान किया और भगवान राम ने भी असत्य पर सत्य की, अधर्म पर धर्म की विजय के लिए गायत्री मंत्र की उपासना की। गीता में योगेश्वर श्रीकष्ण जो सदा अपनी चेतना की पूर्णावस्था में रहते है, वे अपनी विभूतियाँ गिनाते हुए कहते है कि **''गायत्री छन्दसामहम''** अर्थात् छन्दों में मैं गायत्री छन्द हूँ। मंत्रों के रूप में परमेश्वर ही प्रस्फुटित होता है, जो की सर्वव्याप्त है।

मंत्र का अर्थ व परिभाषा :– मंत्र शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञानवर्धक 'मन्' धातु में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय लगा देने से बनता है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'ईश्वरी आदेशों को बताने वाला होता

है। ''मन्यते (ज्ञायते) ईश्वरादेश अनेन इति मंत्रः।''[1] मंत्र वह शब्द या शब्द समूह है, जिससे किसी देवता की सिद्धियाँ या अलौकिक शक्ति की प्राप्ति हो।[2] यह एक शब्द या ध्वनि है जो मन को एकाग्र और क्रेन्द्रित करने के लिए किया जाता है।[3]

मंत्र की अपने आप में पूर्ण व स्वतंत्र सत्ता है। जीवन के पार्थिव–अपार्थिव, चेतन–अचेतन, निष्क्रिय और सक्रिय जीवन में मंत्र को सर्वोपरि महत्ता है। बिना मंत्र के जीवन का अस्तित्व संभव नहीं है। वेदों में मन्त्र को सर्वोच्च सत्ता व ब्रह्म के समान माना गया है। हमारे जीवन में जो कुछ घटित हो रहा है, उसके मूल में मंत्र की सत्ता विद्यमान है। मंत्र शब्द अत्यंत व्यापक है। यह मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। वह ज्ञान का द्वार तथा समस्त दैवी शक्तियों का वायव्य रूप है। मंत्र की दो स्थितियां होती है[4] – (1) गोपन, (2) स्फुट ।

मंत्र का अर्थ ध्वनि अथवा अनेक ध्वनियों का मेल होता है। इनकी शक्ति शब्दों में नही बल्कि उनकी ध्वनि तरंगों में छिपी रहती है। जो मन को प्रभावित करती है। मंत्र सिर्फ व्यक्ति तथा उसकी आत्मा के बीच एक प्रतिध्वनि उत्पन करता है। इसके माध्यम से व्यक्ति में निहित बह्माण्डीय शक्ति तथा ज्ञान के स्तोत्र उत्पन्न होते हैं।

वास्तव में सृष्टि का आरम्भ और अंत मंत्रो से ही होता हैं। मंत्र वास्तव में वायु, अग्नि के नाभिकीय विखण्डन है। परमाणु के केन्द्रक का सूक्ष्मतम विखण्डन कर आज विज्ञान ने अनेक चमत्कार कर दिखाए है। लेकिन मंत्रों के समक्ष तो परमाणु केन्द्रक –विभाजन शुरूवाती अवस्था सी लगती है, क्योंकि मंत्र–तत्वों की मूल शक्ति है और यह शक्ति आवृति के प्रयोग से सिद्ध हो जाती है। यह एक सर्वविदित बात है कि सारी सृष्टि में एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसमें विचार शक्ति है, मनन करने की शक्ति है। अतः मनन करके त्राण या साधक की रक्षा जो करे, वह मंत्र कहलाएगा। मंत्र में विद्यमान शक्ति उस व्यक्ति की मानसिक शक्ति से मिलकर कार्य करता है।

मंत्र का स्वरूप :– 'मंत्र' परमात्मा का शब्द–विग्रह है। मंत्र परमात्मा का शब्दावतार है। मंत्र का मूलाधिश्ठान 'नाद' है अर्थात् मंत्र का मूल तत्त्व–'नाद' है अतः तत्त्वतः 'मंत्र' नादमय है। चूँकि 'नाद' बिन्दु के रूप में परिणत होता है अतः सारे मंत्र–'बिन्दुरूप' भी है।[5]

मंत्र की सामर्थ्य :– वाक्, रूप, रस, गंध, स्पर्श का अनुभव करता है। शब्द रूपी आकाश से ही वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी तत्व का आर्विभाव हुआ है। इसी से वाक् को विश्वरूपिणी–बहूरूपिणी और देव शक्तियों की उसे अधिष्ठात्री कहा जाता है। अग्नि– भू लोक है वायु– भुवः लोक है और वरूण– स्वः लोक है। बैखरी जब मंत्र साधन द्वारा सूक्ष्म होती चलती है तो तीनों लोकों पर उसका अधिकार होता चला जाता है। लोक लोकान्तर में जो कुछ विद्यमान है उसके सम्बन्धित होती है– प्रभावित करती, नियन्त्रित रखती है और संचालन करती है परिष्कृत परावाक्। जिव्हा से उच्चारित बकवास में प्रयुक्त होती रहने वाली प्रक्रिया जब उलटकर मंत्र साधना में लगती है तब वह शक्ति रूप होती है। शक्ति भी ऐसी जिसकी परिधि में वह सब आ जाता है जिसे अद्भुत एवं महान कह सकते हैं।

मंत्रों की शक्तियाँ

1. **प्रामाण्य शक्ति** – मन्त्रों की प्रामाण्य शक्ति वह है जिसके अनुसार शिक्षा, सम्बोधन, आदेश का समावेश रहता है। इसे शब्दों से संबंधित कह सकते हैं।
2. **फल प्रदान शक्ति** – कुण्ड, समिधा, पात्र, पीठ, आज्यचरू, हवि, पीठ आदि को अभिमंत्रित करके उनके सूक्ष्म प्राणों को प्रखर करने का विधि–विधान से मंत्र की फलदायिनी शक्ति सजग होती है।
3. **बहुलीकरण शक्ति** – बहुलीकरण अर्थात् थोड़े को बहुत बनाना। यज्ञ में होमा हुआ जरा सा पदार्थ वायुभूत होकर समस्त विश्व में फैल जाता है। एक व्यक्ति की मंत्र साधना पदार्थों को, परमाणु जीवाणुओं तथा अनेक व्यक्तियों को प्रभावित करनें में बहुलीकरण शक्ति ही होती है।
4. **आयात यामता शक्ति** – आयातयामता शक्ति, किसी विशेष क्षमता संपन्न व्यक्ति द्वारा विषेश स्थान पर, विशेष व्यक्ति की सहायता से, विशेष उपकरणों के सहारे, विधि–विधान के साथ मंत्रोपासना करने पर शक्ति उत्पन्न होती है।

यह समस्त बह्माण्ड मंत्र से विनिर्मित हैं। जीवन की प्रत्येक हलचल मंत्र–संचालित हैं। मंत्र की उत्पत्ति कब और किसके द्वारा हुई इसका ठीक–ठीक वर्णन कही नहीं मिलता है। वास्तव में मंत्रों की जानकारी प्राचीनकाल से ही है।[7] मंत्र की अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र सत्ता हैं। जीवन के पार्थिव अपार्थिव चेतन, अचेतन, निश्क्रिय और सक्रिय जीवन में मंत्र की सर्वोपरि महत्ता है। बिना मंत्र के जीवन का अस्तित्व संभव ही नहीं। वेदों में मंत्र को सर्वोच्च सत्ता एवं उन्हें ब्रह्म के समान माना है। हमारे जीवन में जो भी घटित हो रहा है इसके मूल में मंत्र की सत्ता विद्यमान है। विज्ञान के अनुसार मानव जो भी शब्द उच्चारण करता है, वह पूरे विश्व के वायुमण्डल में तैर जाता है, उदाहरणार्थ रेडियों में किसी भी स्टेशन पर जो गीत की पंक्ति या भाषण का अंष बोला जाता है, वह उसी समय पूरे वायुमंडल में फैल जाता है और सात समुद्र पार किसी देष का श्रोता भी यदि चाहे तो अपने रेडियो के माध्यम से उस गीत की पंक्ति या भाषण का अंश सुन सकता है, आवश्यकता केवल इस बात की है, कि रेडियो में सूई उस फीक्वेन्सी पर लगाने की जानकारी हो। ठीक उसी प्रकार हम जो भी शब्द या ध्वनि उच्चरित करते है, वह समस्त विश्व में फैल जरूर गया हैं, आवश्यकता है उस ग्राह्यता की, जो उस ध्वनि को सुन सकें।

यह भी सच है, कि यह ध्वनि कभी भी मिटती नहीं। आज से हजार साल पहले भी यदि कोई ध्वनि उच्चरित हुई थी, तो वह आज भी वायुमंडल में ज्यों कीं त्यों व्याप्त है, आवश्यकता है, उस फीक्वेन्सी की जिसके माध्यम से हम उस ध्वनि को सुन सके। ऊंचे साधक आज भी महाभारत कालीन ध्वनियों को सुनाने में समर्थ हैं। हमारा भारतवर्ष इस क्षेत्र में सर्वोपरि था, क्योकि यहाँ के साधक और महर्षि अपने आप में मंत्रमय थे, उनका

पूरा जीवन मंत्र और उनके रहस्य को समझने–समझाने में बीतता था।

मंत्र–योग व अंगः– साधना में सफलता तभी मिल सकती है, जब हम उसके मर्म को, उसके मूल रहस्य को समझें। साधना का सीधा–सादा मर्म यह है, कि परमात्मा से भाव, भाव से नाम तथा नाम से संसार बना है, अतः विपरीत रूप से चलकर ही अर्थात् विश्व, विश्व से भाव तथा भाव से परमात्मा अर्थात् मंत्र सिद्धि तक पहुंचा जा सकता है।

ऋषि भारद्वाज ने मन्त्र योग संहिता में मंत्र योग के सोलह अंग बताये हैं[8] – 1. भक्ति, 2. शुद्धि, 3. आसन, 4. पंचांग सेवन, 5. आचार, 6. धारणा, 7. दिव्यदेश सेवन, 8. प्राणक्रिया, 9. मुद्रा, 10. तर्पण, 11. हवन, 12. बलि, 13. याग, 14. जप, 15. ध्यान, तथा 16. समाधि।

मंत्र विधि :– मंत्र का जाप एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसे जानकर करने से फल षीघ्र की प्राप्ति होती है। मंत्र जप से पूर्व मन्त्र विनियोग का पाठ करना चाहिए, इससे मंत्र के स्वरूप और लक्ष्य के प्रति साधना काल में जागरूकता बनी रहती है और कदम सही दिशा मे बढ़ते हैं। मंत्र विनियोग में 5 तत्व या अंग है [9]–

1.ऋशि 2. छन्द 3. देवता 4. बीज 5. तत्व। इनसे मिलकर मंत्र षक्ति सर्वांगपूर्ण बनती है। जिस प्रकार स्थूल शरीर पंच तत्वों से बना है, सूक्ष्म शरीर में 5 आवरण हैं, हमारी 5 ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, पृथ्वी पर 5 महाद्वीप हैं, उसी प्रकार मन्त्र विनियोग के 5 अंग हैं जिसके आधार पर मन्त्र प्रस्फुटित, प्रदीप्त और प्रयुक्त होती है।

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी आनंद के अनुसार ''मंत्र व देवता में तत्वः अभिन्नता है। जो मंत्र है वही देवता है और जो देवता है वही मंत्र है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अंतर केवल यह है कि एक नाम और दूसरा नामी है,

एक वाचक और दूसरा वाच्य है। देवता वाच्य है, नामी है और मंत्र वाचक है, नाम है।''[10] एक्सरे मषीन अल्टावायलेट उपकरण आकाश में से अपनी अभिष्ट किरणों को ही प्रयुक्त करते हैं। हंस दूध पीता, पानी छोड़ देता है। इसी प्रकार मंत्र के लिए ब्रह्म चेतना की किस दिव्य तरंग का प्रयोग किया जाए इसके लिए विधि–विधान निर्धारित है। स्थापना, पूजन, स्तवन आदि क्रियाएं इसी प्रयोजन हेतु होती है।

बीज – बीज का अर्थ है–उद्गम। मानवीय काय–कलेवर में विभिन्न शक्तियों के लिए विभिन्न स्थान निर्धारित हैं। शट्चक्रों, उपत्यिकाओं, शक्ति नदियों का निर्धारित स्थान हैं किसी मन्त्र के देवता का शरीर से संपर्क स्थान कहाँ है और किस विधि से प्रभावित किया जाये, इसी जानकारी को बीज विज्ञान कहते हैं। ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं, हूं, यं, वं, लं आदि बीज अक्षर है, जिन्हें मन्त्र में अतिरिक्त शक्ति भरने का सूक्ष्म इंजेक्शन कहते है।[11]

तत्व – तत्व को मंत्र की कुंजी कह सकते हैं। उनमें यह प्रतिज्ञा रहती है कि साधना का उद्देश्य क्या है, इसके माध्यम से हमें जाना कहां है और प्राप्त करना क्या हैं। स्थूल रूप में पांच तत्वों व पांच गुणों के रूप में भी मंत्रों की प्रकृति मिलती है तथा उसके तत्वानुरूप पूजा उपकरण इकट्ठे करके साधना की जाती है।

मंत्र जप के प्रकार :– भगवान् के किसी नाम को या मंत्र को श्रद्धा और आत्मीयता के साथ बार–बार दोहराना जप कहलाता है। मंत्र जप के तीन प्रकार होते है –

1. **वाचिक–** जप करते समय मंत्र यदि दूसरा पुरूष सुन सकें तो वह वाचिक जप कहलाता है।
2. **उपांशु–** जप करते समय मंत्र यदि अपने आपको ही सुनाई दें तो वह उपांशु जप कहलाता है।
3. **मानसिक–** जप करते समय यदि जीभ व होठ न हिलें तथा मन ही मन ध्यान करते हुए यदि जप किया जाय, तो वह मानसिक जप कहलाता है।

मंत्र जप में 108 दाने की माला की वैज्ञानिकता :–ज्योतिष षास्त्र में समस्त ब्रह्मांड को बारह भागों में विभाजित किया गया हैं। जिन्हें 'राशि' संज्ञा दी गई है। प्रमुख रूप से नौ ग्रह (नव–ग्रह) माने गये है। इस प्रकार 9ग 12त्र 108 होता है।''[12] इस प्रकार 108 की संख्या सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधित्व करने वाली सिद्ध होती है। ब्रह्माण्ड में 'सुमेरू' की स्थिति सर्वोच्च मानी गई है। अतः माला में भी सुमेरू सर्वोच्च है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से देखने पर भी ज्ञात होता है कि दिन व रात्रि अर्थात् 24 घण्टे में मुनष्य के श्वांसों की संख्या इक्कीस हजार छः सौ (21,600) है।

चूड़ामणि उपनिशद् के अनुसार :– ''शट्शतानि दिवारात्रौ सहस्त्राण्येकं विंशतिः।

एतत्संख्यात्कं मंत्र, जीवों जपति सर्वदा।।''[13]

इस प्रकार दिन के समय में 10,000 तथा रात्रि के समय 10,000 श्वांसों की संख्या होती है। जप उपांषु किया जाता

है, जिसका फल सौ गुना माना जाता है। इसलिये प्रातः एक माला करने से 10,000 व 1 माला सायं करने से 10,000 जप हुआ, ऐसा माना जाता है। ऐसा करने का मनुश्य जीवन मे महत्व है। ऋषियों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से इसकी महत्ता को जानने पर ही इस मंत्र जप को जीवन के लिये उपयोगी बताया है।

इन्हीं सब कारणों से हमारे पूर्वज ऋषि–मुनियों ने 108 दाने की माला को प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी माना। इसी 108 दाने की माला के ऊपरी भाग में एक बड़ा दाना रहता है, जिसे सुमेरू कहा जाता है, इसका भी विशिष्ट महत्व है। माला की गिनती सुमेरू से ही प्रारम्भ होती है। माला समाप्ति पर सुमेरू को इष्टदेव का ध्यान करते हुए मस्तक से स्पर्श किया जाता है।

मंत्र का आधार– ध्वनि विज्ञान :– ध्वनि अपने आप में एक शक्ति है। कौत्स मुनि ने मन्त्रों को अनर्थक माना है। अनर्थक का अर्थ यह है कि अर्थ को नहीं ध्वनि प्रवाह को, षब्द गुंथन को महत्व दिया जाना चाहिए। ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं आदि बीज मन्त्रों के अर्थ से नहीं

ध्वनि से ही प्रयोजन सिद्ध होता है।[14] ध्वनि सामान्यतः वायु के माध्यम से सुनी जाती है पर पृथ्वी की ध्वनि ग्राहक और प्रसारक शक्ति वायु से कहीं अधिक है।

प्रत्येक घटना ध्वनि का रूप धारण करती है। ध्वनि और प्रकाश दो ऐसे आधार हैं जिनके आधार पर स्थूल को सूक्ष्म में और सूक्ष्म को स्थूल में परिवर्तित किया जा रहा है। अंतरिक्ष में विविध स्तर के ध्वनि कंपन निरंतर गतिशील रहते हैं। जो इस स्तर की होती हैं कि उन्हें कान सुन सकते हैं।

विज्ञान ने ध्वनि को भी ऊर्जा वर्ग में गिना है। यह ऊर्जा आमतौर से कानों के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुंचती है और अपने लिए उपयुक्त संस्थानों को तरंगित करके अपने प्रभाव से प्रभावित करती है। इस ज्ञान के सहारे ही जीवन का अधिकांश काम चलता है। मन्त्रशक्ति ध्वनि विज्ञान पर आधारित है। हमारे पूर्वजों ने इसी का आश्रय लेकर ऐसी ऋचाओं का आविश्कार किया जिनके माध्यम से वे तरंगे सूक्ष्म वातावरण को प्रभावित करते थे एवं स्थूल रूप से विश्व के मानव–मस्तिष्क को भी। मनोयोग से लक्ष्य पर फेंकी गई ध्वनि तरंगें प्रभावोत्पादक होती है। इसी पुरातन ज्ञान के आधार पर इन्फ्रारेडियों तरंगों का आविश्कार किया गया है।

मंत्र ध्वनि की स्फोट शक्ति :– 'योग' और 'मंत्र' दोनों ही मार्ग इसके लिए प्रशस्त राजमार्ग है। प्रतीकोपासना के माध्यम से जब ब्रह्म का साक्षात्कार होता है तो उसका स्तवन इसी शब्द के द्वारा होता है। 'योग' वायु तत्व की साधना है तो 'मंत्र' आकाश तत्व की। साधारणतया वायु में दो तन्मात्राएँ– शब्द एवं स्पर्श होती है, इसलिए वह जटिल और दुष्कर है। मंत्र में चूँकि आकाश तत्व की उपासना होती है, इसलिए वह अपेक्षाकृत सुगम होता है, क्योंकि उसमें एक ही शब्द तन्मात्रा का भार होता है। प्राण वायु के झटकों से कुण्डलिनी का उद्बोधन होता है और उस उद्बोधन के बाद पिण्ड में जो ब्रह्माण्ड के दर्शन होते हैं, वे ही दर्शन शब्दोपासक को भी होते हैं। इसी स्थान तक योग और मंत्र भिन्न होते हैं। इससे आगे दोनों का एक ही मार्ग हो जाता है।[15] अंत में जिन सहस्र शिराओं के पुंजीभूत आकार को निर्गुणोपासक देखता है, उन्हीं को शेषशायी (सहस्रमुख) अथवा 'सहस्त्रशीर्ष पुरूषः' के रूप में अक्षर ब्रह्म का उपासक देखता है। उपलब्धि के रूप में दोनों ही एक है, किंतु पथ भिन्न है।

भाशा विज्ञान भौतिक विज्ञान है, अतः उसकी सीमा अतीन्द्रिय आध्यात्मिक ज्ञान तक नहीं जाती। व्याकरण और भाषा विज्ञान शब्दों के ज्ञेय स्थान और प्रयत्नों तक ही खोज करता है, इससे आगे नहीं, फिर भी भाष्यकार ने जिन पृयन्ती, मध्यमा और बैखरी वृत्तियों की स्थापना की है, वे उस शब्द के मूल उद्गम को नापने की विशिष्ट प्रयत्न के प्रतीक है। एक पक्की राग का गायक जब गाता है तो ध्वनि उसके कंठ से भी गहरे किसी स्थान से उत्पन्न होती है। यहीं तक भाष्यकार की पहुंच है। योगशास्त्र इस नादब्रह्म की उपासना में इससे दो कदम आगे है। वह शब्द की उत्पति के लिए शटचक्र का निर्देश करके ध्वनि विशेष किंवा नादविशेष की उपयुक्ततम स्थिति का ज्ञान कराता है। यह ज्ञान होने के बाद स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

मंत्र ध्वनि की वैज्ञानिकता :– इस दष्ष्य व अदृश्य जगत में जो कुछ भी है सभी के पीछे एक विज्ञान कार्य कर रहा है जहाँ तक सत्य को उसकी प्रक्रिया के साथ हम जान जाते है उसे विज्ञान की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देते है जब यह विज्ञान शरीर के स्तर पर होता है तो जीवविज्ञान, जब यह विज्ञान मन के स्तर पर होता है तो मनोविज्ञान और जब यह विज्ञान आत्मा के तल पर घटता है तो आध्यात्म विज्ञान होता है, किन्तु विज्ञान की इस त्रिवेणी की सूक्ष्मता में जाये तो इनके बीच–बीच में भी ज्ञान विज्ञान की बहुत सी शाखायें है किन्तु ये आपस में एक दूसरे से बहुत कुछ घुली–मिली हुई है।

अध्यात्म एक उच्चस्तरीय मनोविज्ञान है। ये सभी चीजें सत्य है किन्तु सत्य आज का नहीं यह तो तब का है जब से हमारी सृष्टि है किन्तु इसकी खोज सभ्यता के विकास के साथ–साथ हो रही है और क्रमशः विज्ञान की कसौटी पर जाँचा परखा और सही पाया जा रहा है। तंत्र में समस्त सषश्टि को केवल ऊर्जा के रूप में स्वीकारा गया है। अर्थात् प्रत्येक दष्ष्य व अदष्ष्य जगत के पीछे ऊर्जा ही कारण है। परमेश्वर ही समस्त सषश्टि और संहार के आडम्बर का प्रदर्षक है, वही स्वतंत्र है, वही प्रकाश है। वही शास्वत ऊर्जा है।[16]

मन्त्र का शरीर–क्रिया विज्ञान पर प्रभाव :– मंत्र के उच्चारण की षरीर विज्ञान की दृश्टि से विवेचना करें, तो हम पाते है कि मुख से जो शब्द निकलते हैं, उनका उच्चारण कण्ठ, तालु, मुर्धा, ओष्ठ, दन्त, जिव्हा मूल आदि मुख के विभिन्न अंगों द्वारा होता है। इस उच्चारण काल में मुख के जिन भागों से ध्वनि निकलती है, उन अंगों के नाड़ी तन्तु (Nerves) शरीर के विभिन्न भागों तक फैले रहते है। इन क्षेत्रों में कई ग्रन्थियाँ होती है, जिनपर उन उच्चारणों का प्रभाव अथवा दबाव पड़ता है।[17] जिन व्यक्तिों की यह ग्रन्थियाँ रोगग्रस्त या नष्ट हो जाती है, उनके मुख से कुछ शब्द अशुद्ध या रूक कर निकलते है। मानव षरीर में अनेक छोटी बड़ी दृश्य एवं अदृश्य ग्रन्थियाँ होती है। भारतीय योगियों ने अपने योग बल एवं तपों बल से इन ग्रन्थियों में विषेश शक्ति भण्डारों का पता लगाया है। इनमें मेरूदण्ड में स्थित शट्चक्र एवं सहस्त्रार कमल एवं उनको जागृत करने वाली साधना, भारतीय योग वैज्ञानिकों ने एक भाव से स्वीकार की है।[18]

कार्डियोवस्कुलर सिस्टम पर प्रभाव :– हृदय रक्ताभिषरण का केन्द्र बिन्दु है और वहाँ उत्पन्न होने वाली प्रचण्ड ऊर्जा का वह भण्डार है साथ ही भाव–संस्थान का केन्द्र बिन्दु हृदय को माना गया है। उच्चारण को मंत्र का कलेवर और भावनाओं को उसका प्राण कहा गया है। आचार्य पं. श्रीराम शर्मा के शब्दों में ''हृदय को शिव और जिव्हा को शक्ति कहते है। हृदय प्राण और जिव्हा रयि है। हृदय को अग्नि और जिव्हा को सोम कहते है। दोनो का समन्वय धन और ऋण विद्युत धाराओं के मिलने से जो शक्ति प्रवाह उत्पन्न होता है, वही मंत्र के चमत्कार के रूप में देखा जाता है।''[19]

आज की बीमारियों में सबसे बड़ी संख्या हृदय रोगियों की है इसके पीछे कारण मनुष्य की विकृत जीवन शैली है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध हमारी जिव्हा से है। इसके अतिरिक्त हृदय भावनाओं का केन्द्र है और आज के दौर में खान–पान के साथ–साथ भाव, विचार,

चिंतन आदि सभी विकृत हो चुके है जिसकी परिणति तनाव, चिन्ता, उत्तेजना इत्यादि के रूप में होती हैं और यही से जन्म हृदय सम्बन्धी अनेकों व्याधियों का होता है । किन्तु नियमित मंत्र जप में जिव्हा और हृदय के संयोग द्वारा मंत्र ध्वनि से सीधा हृदय का भाव आघात होता है और ध्वनि ऊर्जा के प्रभाव से हृदय का भाव, मंत्र के अनुरूप परिवर्तित हो जाता है।

सूर्य चक्र की स्थिति हृदय के पास ही बतायी गयी है गायत्री मंत्र के अतिरिक्त ऐसे अनेक मंत्रो से उत्पन्न ध्वनियाँ हृदय को सीधा प्रभावित करती है। जिनकी ध्वनियाँ हृदय के रोगों को दूर करती है क्योंकि ध्वनि तरंगों में प्रबल ऊर्जा का भण्डार छिपा होता है और लगातार के मंत्र जप से मंत्र ध्वनि की ऊर्जा व हृदय के कम्पन की ऊर्जा में एक रिजोनेन्स स्थापित हो जाता है। जो हृदय की क्षतिग्रस्त ऊर्जा (दूषित ऊर्जा)को ठीक करने में समर्थ होता है व ऊर्जा की कमी की पूर्ति कर पूरे कार्डियोवस्कुलर सिस्टम को प्रभावित करता है।

श्वसन तंत्र पर प्रभाव :– मंत्र तंत्र की नींव है। मंत्र अक्षरों व शब्दों से बनते हैं। मंत्र में जो ध्वनि हवा के घर्षण के कारण उत्पन्न होती है ऐसी ही ध्वनि सामान्य श्वास प्रक्रिया में ''सोहम्'' व ''हंसो'' की साधना के रूप में सुनी जाती है। मंत्र में ष्वास की ध्वनि का बड़ा वैज्ञानिक महत्व है क्योंकि मंत्र जप से स्वाभाविक प्राणयाम की क्रिया संपन्न होती है मंत्रयोग में स्वभाविक कुम्भक लगता है। प्राण के कारण ही मनुष्य प्राणि कहलाया है। जहाँ पर प्राण है जीवन भी वही पर है और जहाँ पर प्राण का अभाव है वहाँ पर पदार्थ तो होगा किन्तु जीवन का वहाँ अभाव होगा।

अन्तः स्रावी पिट्यूटरी ग्रंथियों पर प्रभाव :– मंत्र ध्वनि की दिव्य सामर्थ्य का प्रभाव शरीर और मन पर बिना पड़े नहीं रहता है। बायोकेमिकल सिद्धान्तों के अनुसार, मानव षरीर की क्रिया विज्ञान पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। इसका प्रभाव मस्तिष्क के सेरेब्रल कारटेक्स एवं स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के माध्यम से पड़ता है। मंत्र ध्वनि की स्वर लहरिया कान के अन्दर प्रवेश करती है और इलेक्ट्रीकल नर्व इम्पलस के रूप में परिवर्तित होकर न्यूरल नेटवर्किंग के माध्यम से सेरीब्रल कार्टेक्स में पहुँचती है। इसके पश्चात् इनकी यात्रा सबकार्टेक्स से होते हुए लम्बिक सिस्टम तक चलती है और स्वायत्त तंत्रिकातंत्र के माध्यम से सर्वत्र शरीर में प्रसारित कर दी जाती है।

प्रतिरोधी तंत्र पर प्रभाव :– प्रतिरोधी तंत्र षरीर की सुरक्षा का कार्य करता है। शरीर की जीवनी षक्ति कमजोर होने पर प्रतिरोधी तंत्र प्रभावित हो जाता है और शरीर विभिन्न प्रकार के रोगों की चपेट में आ जाता है। मंत्र जप द्वारा उत्पन्न ध्वनि के प्रभाव से षरीर के सुक्ष्म स्नायु संस्थानों पर प्रभाव पड़ता है जिसके द्वारा शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ती है और प्रतिरोधी तंत्र मजबूत होकर सुचारू रूप से कार्य करने लगता है जिसके प्रभाव से शरीर के समस्त संस्थान ठीक से कार्य करते है परिणामतः शरीर की जीवाणुओं तथा विशाणुओं से लड़ने की सामर्थ्य बढ़ जाती है।

चिकित्सा विज्ञान की भाषा में जिसे 'इम्यूनिटी' अर्थात रोग प्रतिरोधी क्षमता कहते हैं। वह और कुछ नहीं प्राणशक्ति की अधिकता ही है। इसके क्षीण होने पर मनुष्य रोगी बनता है। मंत्र का जप करते रहने पर समूची काया धीरे–धीरे प्राण प्रखरता से भरकर रोगाणुओं से षरीर की रक्षा करने के साथ–साथ दीर्घायु प्रदान करती है।

मंत्र के मनोवैज्ञानिक प्रभाव :– मंत्र में एक ओर जहां मन–मस्तिष्क को उच्चस्तरीय विचारणाओं, सत्प्रेरणाओं से परिपूरित करने, मनोविकारों का शमन करने की क्षमता है वहीं दूसरी ओर इसमें सूक्ष्म कायिक ग्रंथियों, शक्ति केन्द्रों, नाड़ी संस्थानों को प्रभावित उत्तेजित करने और उन्हें जागृत कर क्षमतावान बनाने का सामर्थ्य भी विद्यमान है। मन यदि मंत्र के स्पर्श में आये अथवा मन में यदि मंत्र स्पंदित होने लगे तो समझो कि मन की बीमारी ज्यादा देर तक टिकने वाली नही है। मानसिक चेतना में मंत्र नये प्राणो का संचार करता है। इसकी शिथिलता, निश्तेजता समाप्त होती है। एक नयी ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है। जैव विद्युत का परिपथ फिर से सुचारू होता है और प्राणों की अनिमितता समाप्त होती है।

मनोवैज्ञानिको ने चेतना को प्रशिक्षित करने के लिए जो दार्शनिक षैली में इन्हें ही (1) आत्म–निरीक्षण, (2) आत्म–शोधन, (3) आत्म–निर्माण और (4) आत्म–विकास कहते हैं। यह क्रमिक सोपान हैं। जप की चार सीढ़ियाँ हैं जिन पर चढ़कर ही आत्मा परमात्मा तक पहुँचती है। इनमें योगाभ्यास जैसी क्रियायें दिखाई न देने पर इतनी सुदृढ़ता है कि मात्र इसी एक आधार को अपनाकर व्यक्ति आत्म–निरीक्षण से आत्मोत्कर्ष तक की उच्च स्थिति तक जा पहुंचता है।

मस्तिश्कीय तरंगों में वष्द्धि :– मंत्रों का षरीर के विभिन्न अंगों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। मंत्रों के गुंफन से मस्तिष्क झनकृत होता है। मंत्र से अदृश्य तरंगें निकलती है। ये ऊर्जा के रूप में होती है। यह ऊर्जा अपने लिए उपयुक्त संस्थानों को तरंगित करके अपने प्रभाव से प्रभावित करती है। इस ज्ञान के सहारे ही जीवन का अधिकांश काम चलता है।

मंत्र जप मानवी चेतना को मथ डालने वाली संसार की सर्वाधिक शक्तिशाली प्रक्रिया है। मंत्र जप से मस्तिष्क विशेष रूप से प्रभावित होता है।[20] मस्तिष्क में जो भी भाव तरंगें उठती है उनका प्रभाव तत्काल शरीर के अणुओं–कोशिकाओं पर पड़ता है।[21] एक षोध में 18 पुरूष (25–45 वर्ष के) को 20 मिनट तब ऊँ का उच्चारण तीन सप्ताह तक कराया गया और एनोआ विश्लेषण से पाया कि विभिन्न समूहों के विविध मानसिक रोगों में ऊँ उच्चारण का सार्थक प्रभाव पड़ता है।[22] मंत्र जप से न केवल असाधारण शारीरिक मानसिक क्षमता प्राप्त होती है वरन् आत्मिक विभूतियों और भौतिक सिद्धियों को भी हस्तगत किया जा सकता है।

रोगोपचार के पीछे छिपा मंत्रोचार का विज्ञान :–मनुष्य का वाह्य जीवन कुछ नहीं उसके आन्तरिक जीवन की प्रतिच्छाया मात्रा है क्योंकि मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बोलता है, उसी के अनुरूप आचरण करता है और वैसा ही बन जाता है। आधुनिक

चिकित्सा विज्ञान की पहुँच अभी केवल षरीर के स्तर तक हैं और यह बीमारी का मुख्य कारण जीवाणु और विशाणु को बताता है किन्तु आज मनुश्य दवा खाता और ठीक नहीं हो पाता है, इसका कारण है मनुश्य केवल षरीर नहीं हैं यदि केवल षरीर होता तो ठीक हो जाता। जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ता है तो उसके मूल में उसका जैव मनोवैज्ञानिक सामाजिक तंत्र काम करता है यदि रोग को समूल नश्ट करना है तो हमें पत्तों को नहीं उसकी जड़ को सींचना होगा। जैव मनोवैज्ञानिक सामाजिक तंत्र व्यक्ति का त्रिआयामी बिन्दु है, जिसमें जैव(जीव) का संबंध षरीर से व उसमें घटने वाली प्रत्येक जैविक क्रिया से है। मनोविज्ञान का तल जैव से कही बड़ा है, इसमें हमारा चित्त या मन के सभी आयाम, मन की सभी लहरें अर्थात् मन के सभी अरोह–अवरोह समा जाते है।

आध्यात्मिक दर्षिटकोण :– आध्यात्म विद्या पूर्णतः वैज्ञानिक है। आध्यात्मषास्त्र की मंत्र विधा ध्वनि विज्ञान पर आधारित है। प्रख्यात न्यूरोलॉजिस्ट मार्टिन रूथ चाइल्ड का कहना है[23] कि ''जो आध्यात्मिक सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता पर बिना किसी प्रायोगिक निश्कर्शो के प्रष्न खड़ा करते है, उन्हें सबसे पहले अपने वैज्ञानिक होने की जाँच करनी चाहिए क्योंकि अवैज्ञानिकता की बातें करना स्वयं ही अवैज्ञानिक है।''[24]

आत्मोंत्कर्श के लिए जितनी साधनाएँ हैं, प्रायः उन में मन्त्र जप का समावेष किसी न किसी रूप में अवष्य होता है प्राचीनकाल के योगी, ऋशि और तत्वदर्षी महापुरूशों ने मंत्रबल से पष्थ्वी, देवलोक और ब्रह्मांड की अनन्त षक्तियों पर विजय पाई थी। मंत्र षक्ति के प्रभाव से वे इतने समर्थ बन गये थे कि इच्छानुसार किसी भी पदार्थ का हस्तान्तरण, षक्ति को पदार्थ और पदार्थ को ऊर्जा में बदल देते थे।[25] षाप और वरदान मंत्र का ही प्रभाव माना जाता है। एक क्षण में किसी का रोग दूर कर देना, पल भर में करोड़ों मील दूर की बात जान लेना, एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र की जानकारी और षरीर की 72 हजार सूक्ष्म नाड़ियों के एक–एक जोड़ की जानकारी तक मंत्र की ही अलौकिक षक्ति थी। वेद और कुछ नहीं एक प्रकार का मंत्र विज्ञान हैं जिसमें विराट् विष्व–ब्रह्मांड की उन अलौकिक सूक्ष्म और चेतन सत्ताओं तथा षक्तियों तक से सम्बन्ध स्थापित करने के गूढ़ रहस्य दिये हुए हैं। हमारा षरीर, हमारा जीवन जिस ऊर्जा के सहारे काम करता है, उसके सभी रूप प्रकारान्तर से विद्युत जैव विद्युत के विविध रूप है इसके सूक्ष्म अन्तर–प्रत्यन्तर मंत्र विद्या के अन्तर–प्रत्यन्तरों के अनुरूप प्रभावित, रूपांतरित व परिवर्तित किये जा सकते है।

अतः मनुष्य को सतत् आध्यात्मिक पुरुषार्थ करते रहना चाहिए, वह निश्चित ही फलित होगा। सांसारिक पूँजी तो समाप्त होनी ही है, वह तो क्षण भंगूर हैं पर आध्यात्मिक पूँजी योगभ्रश्ट होने पर भी नष्ट नहीं होती। वह समय पाकर फिर प्रकट हो जाती है। यह एक प्रकार से ऐसा डिपॉजिट है, जो आत्मसत्ता के साथ जुड़ा है। समाप्त नहीं होता–बढ़ता चला जाता है।

मनुष्य को अपने संपूर्ण उत्कर्ष के लिये स्वयं को जानना होगा, अपने अन्तरतम् में छिपी परतों को कुरेदना होगा। निरन्तर होते पतन के, अवनति के और भटकाव इत्यादि के कारणों

को खोजने के लिए उस गर्भ में जाना होगा, जहां से हम, हमारी यह सृष्टि और अखिल बह्माण्ड को जन्म मिला है।

आज के दौर में वैज्ञानिक चिकित्सा के सभी आयामों की अनेकों असफलताएँ व भारी दुश्प्रभाव देखे जा रहे है। दुनियाँ भर के कर्णधारों ने इस पर चर्चा भी की, चिन्ता भी जतायी परन्तु समाधान न खोज सके किन्तु जब सभी नें हार–थककर वैकल्पिक चिकित्सा की ओर कदम बढ़ाया तो इससे जो नतीजे मिले, उससे सभी को भारी अचरज हुआ, क्योंकि इनमें आशातीत सफलता मिली। इनसे मिलने वाली विश्रांति, घटने वाले तनाव, जीवनी शक्ति में भारी अभिवृद्धि आदि कुछ ऐसे परिणाम है, जिन्होंने सभी के दृष्टिकोणों को परिवर्तित किया है और इसे अवैज्ञानिक कहने वाले वैज्ञानिक इसकी वैज्ञानिकता को स्वीकारने पर विवश हुए है क्योंकि आध्यात्मिक सिद्धांतों व साधना से ही संपूर्ण जीवन बोध संभव है।

हमारे ऋषिगण योग–साधना के द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में छिपे पड़े हुए शक्ति–केन्द्रों को, चक्रों को, ग्रन्थियों को, मातृकाओं को, ज्योतियों को, भ्रमरो को जगाते थे और उस जागरण से जो शक्ति प्रवाह उत्पन्न होता था, उसे आद्यशक्ति के त्रिविध प्रवाहों में से जिसके साथ आवश्यकता होती थी, इसी प्रकार मंत्र साधना द्वारा शरीर के अर्न्तगत छिपे हुए और तन्द्रित पड़े हुए क्रेन्द्रों का, जागरण करके सूक्ष्म प्रकृति के शक्ति प्रवाहों से संबंध स्थापित हो जाता है, तो मनुष्य और आद्यशक्ति आपस में संबंधित हो जाते हैं। इस संबंध के कारण मनुश्य उस आद्यशक्ति के गर्भ में भरे हुए रहस्यों को समझने लगता है और अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग करके लाभांवित हो सकता है चूँकि संसार में जो कुछ है वह सब आद्यशक्ति के भीतर है, इसलिए वह संबंधित व्यक्ति भी संसार के सब पदार्थों और साधनों से अपना संबंध स्थापित कर सकता है।

वर्तमान में ध्वनि कम्पनों से बनने वाले रूप आकारों का अध्ययन करने वाली विज्ञान की एक नई शाखा 'साइमेटिक्स' जिसमें अनुसंधानरत वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया हैं कि हर स्वर, हर नाद, हर कथन एक विशेष आकार को जन्म देता है और ब्रह्माण्ड के प्रत्येक घटक का अपना एक वाद्य मण्डल होता है और अपना इलेक्ट्रॉनिक नाद होता है। यह ध्वनि सभी यांत्रिक ध्वनियों से शक्तिशाली है। इसका वैज्ञानिक रीति से उपयोग करके चेतना को समुन्नत बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. गैरोला, वाचस्पति– संस्कष्त साहित्य का इतिहास, पृ. 59
2. शर्मा, द्वारका प्रसाद– संस्कृत–शब्दार्थ–कौस्तुभ, पृ. 892
3. आलिन, आर. - द न्यू पेनगून इंग्लिस डिक्सनरी, पृ. 848
4. श्रीमाली, नारायण दत्त– मंत्र रहस्य, पृ. 94
5. श्यामाकान्त द्विवेदी– वरिवस्यारहस्यम्, पृ. 39
6. ब्रह्मवर्चस, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय–19 शब्द ब्रह्म–नाद ब्रह्म, पृ. 2.43
7. श्रीमाली, नारायण दत्त– मंत्र रहस्य, पृ. 21

8. वही पृ. 136
9. शर्मा, भगवती देवी– अखण्ड ज्योति, वर्ष 54, अकं 12, पृ. 26
10. द्विवेदी, श्यामाकान्त– श्री विद्या साधना, पृ. 126
11. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा– अखंड ज्योति, वर्ष 41, अंक 4, पृ 28.
12. खण्डेलवाल, उशा– आध्यात्मिक मान्यताओं का वैज्ञानिक प्रतिपादन, पृ. 252
13. चूड़ामणि उपनिशद् 32/33
14. ब्रह्मवर्चस, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड्ÿमय–19 शब्द ब्रह्म–नाद ब्रह्म, पृ. 2.44
15. यषपाल, योगीराज–मंत्र, तंत्र, यंत्र महाशास्त्र तांत्रिक चमत्कार, पृ. 78
16. मिश्र, परमहंस– तंत्रसार नीर क्षीर विवेक, पृ. 22
17. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा– अखंड ज्योति, वर्ष 72, अंक 4, पृ. 17
18. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा– अखंड ज्योति, वर्ष 35, अंक 6, पृ 36.
19. ब्रह्मवर्चस, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड्मय–14, गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृश्भूमि, पृ. 4.27
20. वही, पृ. 4.24
21. आचार्य, श्रीराम शर्मा– अखंड ज्योति, वर्ष 41, अंक 4, पृ 28.
22. पण्डया, प्रणव– आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति, पृ 116
23. वही, पृ 116
24. ब्रह्मवर्चस, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड्ÿमय–19 शब्द ब्रह्म–नाद ब्रह्म, पृ. 2.71
25. युगगीता खण्ड 4 पृ.169

14

महिलाओं पर योगनिद्रा व भ्रामरी प्राणायाम के प्रभाव

समर जीत सिंह

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य योगनिद्रा एवं भ्रामरी प्राणायाम का आत्म विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। प्रस्तुत अध्ययन भोपाल स्थित कैवल्यधाम योग प्रशिक्षण केन्द्र, भोपाल की 30 साधिकाओं पर किया गया जिसमें नियंत्रित एवं प्रयोगात्मक समूह प्रयोग में लिये गये। सभी प्रयोज्यों की आयु–सीमा 25–35 वर्ष के मध्य है। सभी साधिकाओं को एक महीने तक प्रतिदिन 30 मिनिट तक योग निद्रा एवं 20 मिनिट तक भ्रामरी प्राणायाम का अभ्याय कराया गया। प्रयोज्यों के आत्मविकास के स्तर को मापने के लिये अग्निहोत्री आत्मविश्वास अविश्कारिका का प्रयोग किया गया। अविष्कारिका का संचालन चयनित प्रयोज्यों पर किया गया जिसमें उन्हें एक महीने तक योग निद्रा एवं भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास कराया गया। तत्पृचात् ऑकड़े एकत्रित किये गये। परिणाम में यह ज्ञात हुआ कि योग निद्रा एवं भ्रामरी प्राणायाम के अभ्यास से साधिकाओं के आत्मविकास में सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

प्रयोगात्मक समूह की साधिकाओं ने अपने कार्यक्रमों के साथ–साथ योगनिद्रा एवं भ्रामरी प्राणायाम का नियमित अभ्यास किया जिसके परिणामस्वरूप प्रयोगात्मक समूह की साधिकाओं के आत्मविकास में वृद्धि पायी गयी। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के अंश 28 पर टी–मान की सारणी देखने में 0.05 एवं 0.01 स्तर पर निर्धारित मान क्रमशः 1.70 एवं 2.46 है जबकि सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त 2.22 है, जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक पाया गया। 0.05 वह स्तर है जो यह दर्शाता है कि 100 प्रयोज्यों में 95 प्रतिशत प्रयोज्यों पर किये गये योगनिद्रा एवं भ्रामरी के अभ्यास का प्रभाव पड़ा और 5 प्रतिशत प्रयोज्यों पर संयोगवश प्रभाव पड़ा–जैस–बाहर अशांति, सही तरीके से निर्देशन न चुन पाना

आदि के कारण नही पड़ा। अतः निष्कर्ष यह निकला कि योगनिद्रा एवं भ्रामरी के अभ्यास से साधिकाओं के आत्मविकास के स्तर पर वृद्धि हुई।

आधुनिक परिवेश में सामान्यतः मानव–जाति को कोइ न कोई समस्याओं को सामना करना पड़ रहा है। अब समस्या कुछ भी हो सकती है जैसे– शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक आदि प्रकार की समस्याएँ मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। मानव इन सभी प्रकार की समस्याओं को सुलझाने में कई बार अपने–आप को असफल पाता है, इन समस्याओं का मूल कारण जानने के लिये मैनें यह छोटा सा प्रयोग किया है, साधिकाओं में आत्म–विकास की कमी के कारण भिन्न प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रस्त हो रहे हैं जिसका परिणाम, भय, असुरक्षा, चिन्ता, आत्महत्या, अपराध करने की भावना आदि आने लगती है। वहीं दूसरी तरफ सन्देह, आत्महीनता आदि की भावना आने लगती है। व्यक्ति इसके अभाव में दूसरों का विश्वास, आत्मीयता, सहानुभूति आदि भी प्राप्त नहीं कर पाता। जहाँ भी इसका आभाव होता है वहाँ पर व्यक्ति की सफलता भी संदिग्ध के घेरे में आ जाती है। और उसका जीवन नीरस, उदार, खिन्न, दरिद्र बनने लगता है। यह दो शब्दों के योग से मिलकर बना है– योग और निद्रा, योग का अर्थ है आंतरिक चेतना से सम्पर्क या मिलना और निद्रा का अर्थ है गहरी नींद लेना। अर्थात् योग निद्रा का अर्थ हुआ एक ऐसी नींद लेना जिसमें आंतरिक चेतना शक्ति से संयोग या मिलाप हो। (स्वामी सत्यानन्द सरस्वती) स्वामी स्वात्माराम जी तो योग निद्रा को तुरीयावस्था मानते हैं– उन्होंने बहुत ही सुन्दर श्लोक में दूसरा वर्णन किया है जो इस प्रकार है–

अभ्यासेत खेचरी तावद्यावमत स्याद्योगनिद्रितः।
सम्प्राप्त योगन्रिदस्य कालो नास्ति कदाचन।।

हटप्रदीपिका (4/49)

अर्थात् ''जब तक योग निद्रा (समाधि) प्राप्त न हो तब तक खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते रहना चाहिए। योगनिद्रा प्राप्त हो जाने पर (वहाँ) काल कभी नहीं रहता है''(स्वामी दिगम्बर जी,)। योग निद्रा ऐसा अभ्यास है जो आधुनिक जगत में मानव जीवन को सुख–षांति प्रदान करने और उनकी योग्यता या क्षमता को जगाने या विकास करने हेतु सर्वत्र प्रयोग में लाया जाता है (स्वामी सत्यानंद सरस्वती जी)। महर्षि मार्कण्डेय मेधा ऋषि कहते हैं, कि योग निद्रा गहरी विश्राम की एक स्थिति है और इस उत्तम प्रक्रिया का उपयोग स्वंय भगवान विशु कर रहे हैं –

उत्पन्ने तदा लोके सा नितयाप्यभिधीयते।
योगनिद्रा यदा विण्णुर्जगत्येकार्णवीकृते।।

दुर्गासप्तशती (1/66)

अर्थात् ''महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं कल्प के अन्त में जब सम्पूर्ण जगत एकार्णव में निमग्न हो रहा था और सबके प्रभु भगवान विष्णु शेषनाग की शैय्या बिछाकर योग निद्रा का आश्रय ले सो रहे थे।''

दृण्टवा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनमं।

तुण्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रह्रदयस्थितः।।

दुर्गासप्तशती (1/69)

अर्थात् ''जब भगवान् ब्रह्मा जी ने भगवान् विष्णु को सोया हुआ देखा, तब एकाग्रचित होकर उन्होंने भगवान् विष्णु को जगाने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली योग निद्रा का स्तवन आरम्भ किया।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार– सफलता का प्रथम सोपान ही आत्मविश्वास है।

डॉ. प्रणव पण्डया के अनुसार– आत्मविश्वास सफलता का पर्याय और प्रतीक है।

भ्रामरी प्राणायामः–यह किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर किया जा सकता है। इसके अभ्यास से मानसिक, तनाव, क्रोध, चिंता आदि दूर होती है। जिससे हमारा आत्मविकास भी सदृढ़ होता है। इससे हमारी याददाश्त में भी बढ़ोत्तरी होती है। साधक का स्वर मधुर होता है और उसकी वाणी में मधुरता आने लगती है। इस प्रकार योगनिद्रा एवं भ्रामरी प्राणायाम के अभ्यास से महिलाओं के आत्म–विश्वास में गहरा प्रभाव पड़ता है जिससे उनके आत्मविश्वास में अन्तर आया है। अतः इससे उनको एक माह में उनके आत्म–विकास में अन्तर पाया गया।

प्रस्तुत अध्ययन में कैवल्यधाम योग प्रषिक्षण केन्द्र, भोपाल म.प्र. से आकस्मिक विधि का प्रयोग करते हुए 30 से 35 वर्ष की उम्र की महिलाओं को प्रतिदर्श के रूप में लिया गया है जिसमें से 15 को नियंत्रित समूह एवं 15 से प्रयोगात्मक समूह में रखा गया है।

प्रस्तुत शोध में स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर निम्नलिखित हैं :–

स्वतंत्र चर :– योग निद्रा एवं भ्रामरी

आश्रित चर :– आत्म–विकास (आत्मविस्वास)

अन्य चर :– आयु, लिंग, शैक्षिक योग्यता, अन्य यौगिक क्रियाएँ, और आध्यात्मिक वातावरण।

प्रक्रिया

30 प्रयोज्यों को आकस्मिक विधि के माध्यम से लेने के पष्चात् उनको दो समूह में बॉट दिया। तत्पष्चात् सभी प्रयोज्यों का इन्वेन्टरी द्वारा प्रारंभिक परीक्षण करने के पष्चात् प्रयोगात्मक समूह के 15 प्रयोज्यों को लगातार एक माह तक प्रातः 7:30 से 8:00 बजे तक 30 मिनिट का योग निद्रा एवं 20 मिनिट भ्रामरी प्राणायाम करवाया गया ताकि उससे प्राप्त आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया।

परिणाम एवं परिणामों की विवेचना

आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर मिलने वाले परिणामों को सारणी–1 एवं सारणी–2 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी क्र. 1 पूर्व परीक्षण आंकड़े

समूह	संख्या	मध्यमान	क
नियंत्रित समूह	15	26	10.21
प्रयोगात्मक	15	26.07	

सारणी क्र. 2 पष्चात् परीक्षण आंकड़े

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विलन	टी–वेल्यु	सार्थकता स्तर
नियंत्रित समूह	15	20.67	7.57	2.22	0.05
प्रयोगात्मक	15	14.53			
			क्थ्त्र28		

उपयुक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि प्रायोगिक समूह के प्रयोज्यों द्वारा 30 दिवसीय योगनिद्रा तथा भ्रामरी प्राणायाम करने से पूर्व एवं पश्चात् परीक्षण में प्रयोगात्मक समूह के आत्म–विश्वास के स्तर में मध्यमान के मान में 26.07 से 14.53 में कमी हुई है तथा नियंत्रित समूह के आत्म–विकास के स्तर में मध्यमान के मान में 26 से 26.67 की कमी आयी है। इसका कारण यह था कि नियंत्रित समूह की महिलाओं ने योगनिद्रा तथा भ्रामरी का अभ्यास तो नहीं किया परंतु कैवल्यधाम योग प्रशिक्षण केन्द्र में होने वाले नियमित अभ्यास का उत्साहपूर्वक पालन करती रहीं जिसके कारण उन साधिकाओं के भी आत्म–विकास में थोड़ी वृद्धि हुई लेकिन प्रयोगात्मक समूह को साधिकाओं ने योगाभ्यास के साथ–साथ योगनिद्रा एवं भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास लगातार किया जिसके परिणाम स्वरूप प्रयोगात्मक समूह को साधिकाओं के आत्म–विकास में आशातीत वृद्धि पायी गयी। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के अंश 28 पर टी–मान की सारणी में 0.05 एवं 0.01 स्तर पर निर्धारित मान क्रमशः 1.70 एवं 2.46 है जबकि सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त 2.22 है? जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक पाया गया। 0.05 वह स्तर है जो कि यह दर्शाता है कि 100 प्रयोज्यों में से 95 प्रतिशत प्रयोज्यों पर किये गये योगनिद्रा एवं भ्रामरी प्राणायाम के अभ्याय का प्रभाव पड़ा और 5 प्रतिशत प्रयोज्यों पर संयोगवश प्रभाव पड़ा। अतः निश्कर्ष यह निकला कि योग निद्रा एवं भ्रामरी के अभ्यास से साधिकाओं के आत्म–विकास में प्रभाव पड़ा एवं उनके आत्मविकास में वृद्धि हुई।

योगनिद्रा एवं भ्रामरी प्राणायाम के द्वारा आत्मविष्वास बढ़ने के कुछ वैज्ञानिक तथ्य–

आत्मविश्वास तब बढ़ सकता है जब साधक या कोई अन्य व्यक्ति किसी कार्य को कुशलता–पूर्वक और पूर्णरूप से जागरूक होकर संपादित करे, और उसमें सफलता प्राप्त कर ले। कार्य में कुशलता तब आयेगी जब व्यक्ति की बुद्धि जागृत हो जाये अर्थात् जब वह समझदारी के साथ किसी कार्य को करे।

मानव–जीवन में अनेक प्रकार की कठिनाईयॉ, उलझने, प्रिय, अप्रिय घटनाएँ,आदि आती रहती हैं। इन सभी के साथ मानव को एक दष्ढ़ संकल्प के साथ सदा लड़ते रहने के लिए उनको आत्म–विश्वास की जरूरत पड़ती है, जिसके माध्यम से वह सदैव अपने जीवन में सफलता पाता रहता है। यह ईश्वर का बहुत ही सुन्दर उपहार है जिस व्यक्ति ने इसको अपने अन्दर धारण कर लिया वह सफलता की हर ऊँचाई को छू सकता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, सफलता का प्रथम सोपान आत्मविश्वास है। अतः योग शिक्षा में मनुष्य मानसिक एवं शारीरिक रूप से शांत एवं स्थिर हो जाता है तथा अपने अन्दर विद्यमान शक्ति को पहचानने लगता है और आगे की ओर बढ़ने लगता है।

सन्दर्भ–सूची

1. आचार्य, पं, श्रीराम, आत्मविश्वास की शक्ति, अखण्ड ज्योति–संस्थान, मथुरा वर्श–26 अंक 5, (1963)
2. आचार्य, पं, श्रीराम, आत्मविश्वास की शक्ति, अखण्ड ज्योति–संस्थान, मथुरा वर्ष–26 अंक 12, (1963)
3. आचार्य, पं, श्रीराम, आत्मविश्वास की शक्ति, अखण्ड ज्योति–संस्थान, मथुरा साधना पद्धतियों का ज्ञान–विज्ञान, खण्ड–4, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, (1963)
4. स्वात्माराम स्वामी, हठप्रदीपिका चतुर्थ अध्याय, कैवल्यधाम, लोनावला, पूणे, महाराष्ट्र, (2001)
5. दत्त श्रीरामनारायण, श्री दुर्गासप्तशती, गीताप्रेस गोरखपुर, (2009)
6. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, तंत्र क्रिया और योग विद्या–योगनिद्रा (भाग–1) बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, (1993)
7. सरस्वती, स्वामी सत्यानंद, तंत्र क्रिया और योग विद्या–योगनिद्रा (भाग–2) बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, (1993)
8. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्दः योगनिद्रा, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार,(1993)

15

मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का यौगिक प्रबंधन (युवाओं के परिपप्रेक्ष्य में)

डॉ. नंदलाल मिश्र एवं रत्नेश पाण्डेय,

प्रस्तुत शोध पत्र में युवाओं की मानसिक समस्याओं के प्रबंधन के लिए यौगिक क्रियाओं का वर्णन किया गया है। युवाओं में प्रमुख रूप से असंयमित दिनचर्या ही अनेक मनोकायिक विकारों को जन्म देती हैं। मानसिक समस्याओं का समाधान यौगिक क्रियाओं जैसे सूर्यनमस्कार, आसन, प्राणायाम, शट्क्रियायें, ध्यान एवं ऊँ–उच्चारण आदि के माध्यम से सहजता के साथ किया जा सकता है।

इक्कीसवीं सदीं में मनुष्य ने अनगिनत मानसिक समस्याओं के साथ प्रवेश किया है। सूचना तकनीक, संचार क्रांति और भौतिकता ने मानव जीवन में साधन सुविधाओं की भरमार करने के साथ–साथ अनेक मानसिक समस्याएँ भी खड़ी की है। मनुष्य का जीवन अपेक्षाकृत अधिक तनावग्रस्त एवं विशादपूर्ण हुआ है। मानसिक चिकित्सा की प्रचलित विधियाँ इस चुनौती का सामना करने में प्रायः नाकाम रहीं हैं। दुनिया के प्रायः हर देश के युवाओं में मानसिक समस्याएँ बढ़ती जा रही है। इस कारण मनोवैज्ञानिकों ने विश्व के पुरातन ज्ञान भंडार में अपनी खोज शुरू की है। सभी की दृष्टि भारत के प्राचीन ऋषियों द्वारा अन्वेशित ''योग विज्ञान'' पर जा टिकी है। मानसिक स्वास्थ्य संकट के सार्थक व सक्षम समाधान योग के रूप में सजीव व प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ रहें हैं। इसी से मनुष्य की बिखरी और बटी हुई चेतना फिर से अपनी एकात्मकता व सम्पूर्णता प्राप्त कर सकती है। पूर्ण यौगिक अवस्था न केवल सभी मनोविकारों से छुटकारा दिलाती है अपितु दिव्य गुणों का अभिवर्द्धन एवं विकास भी करती है। यौगिक क्रियाओं को अपनाकर युवा वर्ग मानसिक स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं का निवारण कर सकते हैं।

युवा अवस्था मनोसामाजिक विकास की यह छठी अवस्था है, जो सामान्यतः 20 साल की आयु से प्रारंभ होकर 40 साल की आयु तक होती है इस अवस्था में युवा शादी–विवाह कर प्रारंभिक पारिवारिक जिंदगी में प्रवेश करता है। यहाँ युवक किसी न किसी व्यवसाय या नौकरी में अपने आपकों लगाकर अपना स्वतंत्र जीविकोपार्जन प्रारंभ कर देता है। ''मनोवैज्ञानिक, इरिक्सन'' के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति सच्चे अर्थ में दूसरों के साथ सामाजिक एवं लैगिंक घनिष्ठता कायम करने के लिए तैयार रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने भाईं, बहनों, माता–पिता तथा अन्य संबंधियों के साथ घनिश्ठ संबंध विकसित करता है तथा अपने पति / पत्नी के साथ घनिश्ठ लैंगिक संबंध विकसित करता है। व्यक्ति अपने आप के साथ भी घनिष्ठ संबंध विकसित कर एक स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास करता है। इस मनोसामाजिक अवस्था का खतरा यह है कि जब युवा दूसरों के साथ कुछ कारणों से संतोशजनक एवं घनिश्ठ वैयक्तियक संबंध नहीं विकसित कर पाता है और अपने आप में ही पूर्णतः खोया रहता है तो वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाता है। इस अवस्था को मनोवैज्ञानिक ने विलगन की संज्ञा दी है। ऐसे व्यक्ति द्वारा जो अर्न्तवैयक्तिक संबंध कायम भी किए जाते हैं वह भीतर से खोखला एवं सव ही होता है। ऐसे लोगों में अपना व्यवसाय एवं कार्य के प्रति नीरसता एवं व्यर्थता की मनोवृत्ति होती है। जब इसकी मात्रा अधिक हो जाती हैं तो व्यक्ति में गैर –सामाजिक व्यवहार या मनोविकारी व्यवहार की प्रबलता बढ़ जाती है।

चिन्ता, अवसाद एवं मानसिक तनाव आदि मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं को युवा वर्ग अनुभव करता है। शोधों से प्राप्त निष्कर्ष बताते है कि युवा वर्ग अगर यौगिक क्रियाओं को जीवन में उतार ले तो हर प्रकार की मानसिक समस्याओं का प्रबंधन कर सकता है। मानसिक स्वास्थ्य पर योग का प्रभाव जापान में युवा और वरिष्ठ प्रयोज्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन नामक विषय पर किए शोध में 15 प्रतिभागी 65 से 75 वर्ष आयु के एवं 10 प्रतिभागी 20 से 30 वर्ष आयु के प्रतिभागियों का चयन किया गया । 90 मिनट तक सप्ताह में एक से दो बार एक माह योग अभ्यास कराया गया। इसके बाद सेलीवरी एमिलेश गतिविधि को मापा गया एवं स्टेट ट्रेट ऐग्जाएटी इन्वेंटरी टेस्ट द्वारा मापा गया। निश्कर्श में कहा गया है कि एक माह के अभ्यास के बाद सेलीवरी एमिलेश गतिविधि में कमी देखी गयी, ऐग्जाएटी टेस्ट के स्कोर में भी सार्थक कमी पायी गयी। दोनों ही समूह में योग मानसिक स्वास्थ्य के सुधार में सहायता करता है। कॉलेज में पढ़ने वाले विद्यार्थियों पर इरेस्ट योग निद्रा का प्रभाव देखा। इन्होंने 18 से 56 वर्ष के 66 विद्यार्थियों को 8 सप्ताह तक योगनिद्रा का अभ्यास कराया। इसके बाद परीक्षण में पाया गया कि इसके अभ्यास से तनाव, चिंता, अवसाद के लक्षण कम होते हैं। पी 300 वेव में अनुलोम विलोम प्राणायाम (अल्टरनेट नोस्ट्रिल ब्रिदिंग) एवं ष्वास की सजगता के द्वारा परिवर्तन होता है नामक शोध अध्ययन में 20 वयस्क प्रतिभागियों को 3 महीने तक नाड़ी शोधन प्राणायाम एवं श्वास पर सजगता का अभ्यास कराया गया। शोध निष्कर्ष में सामने आया कि नाड़ी शोधन

प्राणायाम सकारात्मक रूप से संज्ञानात्मक प्रक्रिया को प्रभावित करता है। स्वस्थ युवा प्रतिभागियों को 3 माह तक नाड़ी शोधन प्राणायाम कराया गया उसके प्रभाव को विभिन्न पैरामीटर के आधार पर दर्ज किया गया। जिससे ज्ञात हुआ कि प्रतिभागियों में ह्रदय गति, जी.एस.आर. एवं पर्ल्स रेट पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। योग भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण धरोहर है। योग का हमारी संस्कृति, धर्म और दर्शन में अत्याधिक महत्व है। सर्वप्रथम योग का वर्णन वेदों में प्राप्त होता है, ऋग्वेद में योग का उल्लेख मिलता है। कुछ शोधकर्ताओं का यह मानना है कि योग की उत्पत्ति इससे भी प्राचीन है। सामान्य शब्दों में योग का अर्थ जोड़ना होता है। महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहॉ है ''योगष्चित्तवृत्ति निरोधः 1/2'' चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। आध्यात्मिक उन्नति या शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ्य होना हो या व्यवहारिक दृष्टि से उत्कृष्टता प्राप्त करनी हो यह सब योगाभ्यास द्वारा ही संभव है। योग एक ऐसा मार्ग है जिसे अपनाकर हम अपने आपको स्वस्थ एवं संतुलित रख सकते हैं। योग अपने स्वयं के वास्तविक स्वरूप में स्थित होने की विद्या है।

युवाओं की शारीरिक व मानसिक समस्याओं के समाधान के लिए अब तक खोजे गए उपाय प्रभावी नहीं है। युवा वर्ग अपनी जिंदगी से जुड़ी समस्याओं से लड़ते रहते हैं। लेकिन आज तक इनकी समस्याओ पर गंभीर रूप से विचार नहीं किया गया है। युवाओं की मानसिक स्वास्थ्य संबंधी इन समस्याओं का समाधान यौगिक प्रबंधन के द्वारा प्रभावी तरीके से किया जा सकता है। यौगिक प्रबंधन में जीवन का समग्रता के साथ आकलन एवं विश्लेषण किया जाता है और जो भी समस्या सामने आती है वह शारीरिक हो या मानसिक उसका समाधान यौगिक क्रियाओं के द्वारा किया जाता है।

यौगिक क्रियाओं में सूर्य नमस्कार, अनुलोम विलोम (ह.प्र. 2/7–10), भ्रामरी प्राणायाम (ह.प्र. 2/68), योगनिद्रा (संत्यानंद 2013) त्राटक, ध्यान, ऊँ–उच्चारण से हम युवाओं की मानसिक समस्याओं को दूर कर सकते हैं। सूर्य नमस्कार बारह आसनों का समूह है जो लयबद्ध तरीके से किया जाता है। स्थिरता पूर्वक आसनों के करने से मन और शरीर स्थिर अवस्था में आते है। जिसमें श्वास लेने और छोड़ने का एक निश्चित क्रम होता है। सूर्य नमस्कार से हमारे सिर, गर्दन, छाती, पेट, पीठ, रीढ़, कमर, जांघे, घुटने, पंजे आदि का सम्पूर्ण शरीर का व्यायाम हो जाता है। सूर्य नमस्कार का अभ्यास करने से कम भूख लगना, स्थूलता, दुर्बलता, श्वसन तंत्र एवं पाचन तंत्र से संबंधित व्याधियों के साथ–साथ मानसिक व्याधियाँ जैसे चिंता, क्रोध, चिड़चिड़ापन, विक्षिप्त मनोविकारों में लाभ मिलता है (सत्यानंद 1987)।

युवाओं में असंयमित दिनचर्या की वजह से नींद से जुड़ी समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। इन समस्याओं का समाधान योगनिद्रा के अभ्यास से हम मानसिक तनाव को दूर कर सकते हैं, योग निद्रा से तात्पर्य है सजगता के साथ सोना अर्थात नींद से सजग, चेतनावान रहना। योगनिद्रा के अभ्यास का प्रभाव सभी प्रकार के रोगों के उपचार में सहायक सिद्ध

हुआ है। योगनिद्रा के अभ्यास से तनाव, चिंता दूर होती है। स्वामी सत्यानंद जी के अनुसार योगनिद्रा से पेशीय तनाव, भावनात्मक तनाव एवं मानसिक तनाव दूर होता है। नाड़ी शोधन प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, ध्यान और ऊँ–उच्चारण के अभ्यास से सिम्पैथेटिक–पैरासिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम में सतुलन आता है जो तनाव, चिन्ता, क्रोध, चिड़चिड़ापन और अनिद्रा को कम करता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि मानसिक समस्याओं को दूर करने में यौगिक क्रियाएँ अत्यंत प्रभावशाली है। यौगिक क्रियाएँ युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं का निदान करती है।

संदर्भ सूची

1. सत्यानंद सरस्वती, सूर्यनमस्कार, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, 1987.
2. सत्यानंद सरस्वती, योगनिद्रा, पंचम संस्करण, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुगेर बिहार, 2013
3. स्वात्माराम, स्वामी हठप्रदीपिका, हठप्रदीपिका ज्योत्सना टीका कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 2002
4. पातंजल योगसूत्र, हरिकृष्ण दास गोयनका, गीताप्रेस गोरखपुर।
5. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
6. योगसार– डॉ. वेदवष्त सच्चिदानन्द योग मिशन, हैदराबाद।
7. स्वामी रामदेव, दिव्य प्रकाशन योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, 2005,
8. स्वामी रामदेव, योग साधना एवं चिकित्सा रहस्य, दिव्य प्रकाशन, पंतजलि योगपीठ हरिद्वार, उत्तराखण्ड,
9. स्वाजीत भाई योगेन्द्र सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1995
10. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग प्रकाशन ट्रस्ट मुगेंर, बिहार, 2006
11. गोस्वामी हर्षवर्धन,, प्राणायाम, सत्यम पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011

16

प्राचीन भारतीय साहित्य मे योग

हीरा सिंह गोंड

प्राचीन काल से योग मानव की साकारात्मक सोच की एक योजना है जो एक पूर्ण धर्म के रूप मे स्थापित हो गयी। अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस 21 जून 2015 को प्रथम अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया। इस अवसर पर 192 देशों और 47 मुस्लिम देशों में योग दिवस का आयोजन किया गया। 'योग' शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'योग' शब्द का अर्थ हुआ– समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध। वैसे 'योग' शब्द 'युजिर योग' तथा 'युज संयमने' धातु से भी निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः योग–फल–जोड़ तथा नियमन होगा। आगे योग में हम देखेंगे कि आत्मा और परमात्मा के विषय में भी योग कहा गया है। अर्थात योग का अर्थ है मिलना जुड़ना संयुक्त होना आदि। जिस विधि से साधक अपने प्रकृति जन्य विकारों को त्याग कर अपनी आत्मा के साथ संयुक्त होता है वही 'योग' है।

पतंजलि योग दर्शन के अनुसार – योगश्चित्तवत्ति निरोधःअर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। सांख्य दर्शन के अनुसार – पुरुशप्रकृत्योर्वियोगेपि योगइत्यमिधीयते। अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरुष का स्व स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है। विष्णुपुराण के अनुसार – योगः संयोग इत्युक्तः जीवात्म परमात्मने अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा का पूर्णतया मिलन ही योग है। भगवद्गीता के अनुसार सद्धासिद्धयो समोभूत्वा समत्वं योग उच्चते अर्थात् दुःख–सुख लाभ–अलाभ शत्रु–मित्रशीत और उष्ण आदि द्वन्दों में सर्वत्र समभाव रखना योग है।भगवद्गीता के अनुसार – तस्माद्दयोगाययुज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् अर्थात् कर्त्तव्य कर्म बन्धक न हो इसलिए निष्काम भावना से अनुप्रेरित होकर कर्तव्य करने का कौशल योग है। आचार्य हरिभद्र के अनुसार – मोक्खेण जोयणाओ सव्वो वि धम्म ववहारो जोगो मोक्ष से जोड़ने वाले सभी व्यवहार योग है। बौद्ध धर्म के

अनुसार – कुशल चितैकग्गता योगः अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता योग है। नियामसरा में आचार्य कुंडाकुण्डने योग भक्ति का वर्णन– भक्ति से मुक्ति का मार्ग – भक्ति के सर्वोच्च रूप के रूप मे किया है। योग का लक्ष्य स्वास्थ्य में सुधार से मोक्ष प्राप्त करने तक है।जैन धर्म वेदांत के मोनिस्ट संप्रदाय और शैव सम्रदाय के अन्तर में योग का लक्ष्य मोक्श का रूप लेता हैजो सभी सांसारिक कष्ट एवं जन्म और मष्त्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त करना हैउस क्षण में परम ब्रह्मण के साथ समरूपता का एक एहसास है। महाभारत में योग का लक्ष्य ब्रह्मा के दुनिया में प्रवेश के रूप में वर्णित किया गया हैब्रह्म के रूप में अथवा आत्मन को अनुभव करते हुए जो सभी वस्तुओं मे व्याप्त है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन लिखते हैं कि समाधि में निम्नलिखित तत्व शामिल हैं। वितर्क विचार आनंद और अस्मिता।

योग परम्परा और शास्त्रों का विस्तृत इतिहास रहा है। जिस तरह भगवान राम के निशान इस भारतीय उपमहाद्वीप में जगह–जगह बिखरे पड़े है उसी तरह योगियों और तपस्वियों के निशान जंगलों पहाड़ों और गुफाओं में आज भी देखे जा सकते है। बस जरूरत है भारत के उस स्वर्णिम इतिहास को खोज निकालने की जिस पर हमें गर्व है। माना जाता है कि योग का जन्म भारत में ही हुआ मगर दुःखद यह रहा की आधुनिक समय में अपनी दौड़ती–भागती जिंदगी से लोगों ने योग को अपनी दिनचर्या से हटा लिया। जिसका असर लोगों के स्वास्थ्य पर हुआ। मगर आज भारत में ही नहीं विश्व भर में योग का बोलबाला है और निसंदेह उसका श्रेय भारत के ही योग गुरूओं को जाता है जिन्होंने योग को फिर से पुनर्जीवित किया। परमहंस श्यामा चरण लाहित महाशय श्री तिरुमलाई कृष्णामचार्य, बी. के.एस. अयंगर, रामदेव कुछ ऐसे ही नाम है जिन्होंने योग को फिर से मानव सभ्यता के मध्य प्रचार प्रसार कर पहुँचाया है।

वैदिक संहिताओं के अंतर्गत तपस्वियों के बारे में प्राचीन काल से वेदों में उल्लेख मिलता है। जब कि तापसिक साधनाओं का समावेश प्राचीन वैदिक टिप्पणियों में प्राप्त है। कई मूर्तियाँ जो सामान्य योग या समाधि मुद्रा को प्रदर्शित करती है सिंधु घाटी सभ्यता के स्थान पर प्राप्त हुईं है। पुरातत्त्वज्ञ ग्रेगरी पोस्सेह्ल के अनुसारये मूर्तियाँ योग के धार्मिक संस्कार के योग से सम्बन्ध को संकेत करती है। यद्यपि इस बात का निर्णयात्मक सबूत नहीं है फिर भी अनेक पंडितों की राय में सिंधु घाटी सभ्यता और योग–ध्यान में सम्बन्ध है। ध्यान में उच्च चौतन्य को प्राप्त करने कि रीतियों का विकास श्रमानिक परम्पराओं द्वारा एवं उपनिषद् की परंपरा द्वारा विकसित हुआ था।

उपनिषदों में ब्रह्माण्ड संबंधी बयानॉ के वैश्विक कथनों में किसी ध्यान की रीति की सम्भावना के प्रति तर्क देते हुए कहते है की नारदीय सूक्त किसी ध्यान की पद्धति की ओर ऋग वेद से पूर्व भी इशारा करते है। भगवद्गीता प्रतिष्ठित ग्रंथ माना जाता है। उसमें योग शब्द का कई बार प्रयोग हुआ है, कभी अकेले और कभी सविशेषणजैसे बुद्धियोगसंन्यासयोगकर्मयोग। वेदोत्तर काल में भक्तियोग और हठयोग नाम भी प्रचलित हो गए हैं।गीता में श्रीकृष्ण ने एक स्थल पर कहा है योगः कर्मसु कौशलमयोग से कर्मो में कुशलता आती हैं। स्पष्ट है कि यह वाक्य योग की परिभाषा नहीं है। कुछ विद्वानों का यह

मत है कि जीवात्मा और परमात्मा के मिल जाने को योग कहते हैं। इस बात को स्वीकार करने में यह बड़ी आपत्ति खड़ी होती है कि बौद्ध मतावलंबी भीजो परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते योग शब्द का व्यवहार करते और योग का समर्थन करते हैं। यही बात सांख्यवादियों के लिए भी कही जा सकती है जो ईश्वर की सत्ता को असिद्ध मानते हैं।

पतंजलि व्यापक रूप से औपचारिक योग दर्शन के संस्थापक माने जाते है। पतंजलि के योगबुद्धि का नियंत्रण के लिए एक प्रणाली है राज योग के रूप में जाना जाता है। पतंजलि उनके दूसरे सूत्र मे योग शब्द को परिभाषित करते है जो उनके पूरे काम के लिए व्याख्या सूत्र माना जाता है। पतंजलि योगदर्शन में क्रियायोग शब्द देखने में आता है।पंतजलि ने योगदर्षन मेंजो परिभाषा दी है। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधःचित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं। चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था का नाम योग है या इस अवस्था को लाने के उपाय को योग कहते हैं। पाशुपत योग और माहेश्वर योग जैसे शब्दों के भी प्रसंग मिलते है। इन सब स्थलों में योग शब्द के जो अर्थ हैं वह एक दूसरे के विरोधी हैं परंतु इस प्रकार के विभिन्न प्रयोगों को देखने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि योग की परिभाषा करना कठिन कार्य है। महर्शि पतंजलि के अनुसार समाहित चित्त वालों के लिए अभ्यास और वैराग्य तथा विक्षिप्त चित्त वालों के लिए क्रियायोग का सहारा लेकर आगे बढ़ने का रास्ता सुझाया है। इन साधनों का उपयोग करके साधक के क्लेषों का नाश होता है। चित्तप्रसन्न होकर ज्ञान का प्रकाश फैलता है और विवेक ख्याति प्राप्त होती है।

योगाडांनुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेक ख्यातेः

राजयोग के अन्तर्गत महिर्ष पतंजलि ने अष्टांग को इस प्रकार बताया है–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽश्टाङ्गानि।

योग की उच्चावस्था समाधि मोक्ष कैवल्य आदि तक पहुँचने के लिए अनेकों साधकों ने जो साधन अपनाये उन्हीं साधनों का वर्णन योग ग्रन्थों में समय समय पर मिलता रहा। उसी को योग के प्रकार से जाना जाने लगा। योग की प्रामाणिक पुस्तकों में शिवसंहिता तथा गोरक्षशतक में योग के चार प्रकारों का वर्णन मिलता है दृ

मंत्रयोगों हष्चौव लययोगस्तष्तीयकः।

चतुर्थो राजयोगः (षिवसंहिता)

मंत्रो लयो हठो राजयोगन्तर्भूमिका क्रमात

एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोभियते (गोरक्षशतकम्)

भारतीय दर्शन मेंशड् दर्शनों में से एक का नाम योग है।योग दार्शनिक प्रणालीसांख्य स्कूल के साथ निकटता से संबन्धित है। ऋषि पतंजलि द्वारा व्याख्यायित योग संप्रदाय सांख्य मनोविज्ञान और तत्वमीमांसा को स्वीकार करता है लेकिन सांख्य घराने की तुलना में अधिक आस्तिक है यह प्रमाण है क्योंकि सांख्य वास्तविकता के पच्चीस तत्वों में ईश्वरीय

सत्ता भी जोड़ी गई है। योग और सांख्य एक दूसरे से इतने मिलते–जुलते है कि मेक्स म्युल्लर कहते हैयह दो दर्शन इतने प्रसिद्ध थे कि एक दूसरे का अंतर समझने के लिए एक को प्रभु के साथ और दूसरे को प्रभु के बिना माना जाता है। सांख्य और योग के बीच घनिष्ठ संबंध हेंरीच जिम्मेर समझाते है इन दोनों को भारत में जुड़वा के रूप में माना जाता है। जो एक ही विशय के दो पहलू है।यहाँ मानव प्रकृति की बुनियादी सैद्धांतिक का प्रदर्शन विस्तृत विवरण और उसके तत्वों का परिभाषित बंधन के स्थिति में उनके सहयोग करने के तरीके सुलझावट के समय अपने स्थिति का विश्लेषण या मुक्ति में वियोजन व्याख्या किया गया है। योग विशेष रूप से प्रक्रिया की गतिशीलता के सुलझाव के लिए उपचार करता है और मुक्ति प्राप्त करने की व्यावहारिक तकनीकों को सिद्धांत करता है अथवा अलगाव–एकीकरण का उपचार करता है।

भारत बौद्धिक धर्म का केंद्र है। न्यिन्गमा परंपरा में ध्यान का अभ्यास का रास्ता नौ यानोंया वाहन मे विभाजित हैकहा जाता है यह परम व्युत्पन्न भी है।अंतिम के छह को योग यानासश के रूप मे वर्णित किया जाता है यह है क्रिया योग उप योग, योग अनु योग और अंतिम अभ्यास अति योग. सरमा परंपराओं नेमहायोग और अतियोग की अनुत्तारा वर्ग से स्थानापन्न करते हुए क्रिया योगऔर योग को शामिल किया हैं। अन्य तंत्र योग प्रथाओं में शारीरिक मुद्राओं के साथ सांस और दिल ताल का अभ्यास शामिल हैं। यह न्यिन्गमा परंपरा यंत्र योग का अभ्यास भी करते है। यह एक अनुशासन है जिसमे सांस कार्य याध्यानापरणीय मनन और सटीक गतिशील चाल से अनुसरण करनेवाले का ध्यान को एकाग्रित करते है। बुद्ध के पूर्व एवं प्राचीन ब्रह्मिनिक ग्रंथों मे ध्यान के बारे में कोई ठोस सबूत नहीं मिलते हैं बुद्ध के दो शिक्षकों के ध्यान के लक्ष्यों के प्रति कहे वाक्यों के आधार पर तर्क करते है की निर्गुण ध्यान की पद्धति ब्राह्मण परंपरा से निकली इसलिए उपनिषद् की सृष्टि के प्रति कहे कथनों में एवं ध्यान के लक्ष्यों के लिए कहे कथनों में समानता है। यह संभावित हो भी सकता है या नहीं भी

बौद्ध ग्रंथ शायद सबसे प्राचीन ग्रंथ है जिन में ध्यान तकनीकों का वर्णन प्राप्त होता है। वे ध्यान की प्रथाओं और अवस्थाओं का वर्णन करते है जो बुद्ध से पहले अस्तित्व में थीं और साथ ही उन प्रथाओं का वर्णन करते है जो पहले बौद्ध धर्म के भीतर विकसित हुईं. हिंदु वांग्मय में योग शब्द पहले कथा उपानिषद में प्रस्तुत हुआ जहाँ ज्ञानेन्द्रियों का नियंत्रण और मानसिक गतिविधि के निवारण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जो उच्चतम स्थिति प्रदान करने वालाहै। महत्वपूर्ण ग्रन्थ जो योग की अवधारणा से सम्बंधित है वे मध्य कालीन उपनिशद् महाभारत भगवद गीता एवं पतञ्जलि योग सूत्र है।

तीर्थंकर पार्सनाथ यौगिक ध्यान में कयोत्सर्गा मुद्रा में महावीर के केवल ज्ञान मूल बंध,सना मुद्रा में दूसरी शताब्दी के जैन पाठ तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार मनवाणी और शरीर सभी गतिविधियों का कुल योग है। उमास्वती कहते है कि कार्मिक प्रवाह का कारण योग है साथ ही– सम्यक चरित्र – मुक्ति के मार्ग मे यह बेहद आवश्यक है। जैन शास्त्रजैन

तीर्थंकरों को ध्यान मे पद्मासना या कयोत्सर्ग योग मुद्रा में दर्शाया है। ऐसा कहा गया है कि महावीर को मुलाबंधासना स्थिति में बैठे केवला ज्ञान आत्मज्ञान प्राप्त हुआ जो अचरंगा सूत्र मे और बाद में कल्पसूत्र मे पहली साहित्यिक उल्लेख के रूप मे पाया गया है।

सिंधु घाटी मुहरों और इकोनोग्रफी भी एक यथोचित साक्ष्य प्रदान करते है कि योग परंपरा और जैन धर्म के बीच संप्रदायिक सदृश अस्तित्व है। विशेष रूप से विद्वानों और पुरातत्वविदों ने विभिन्न तिर्थन्करों की मुहरों में दर्षाई गई योग और ध्यान मुद्राओं के बीच समानताओं पर टिप्पणी की है रुशभ की कयोत्सर्गा मुद्रा और महावीर के मुलबन्धासन मुहरों के साथ ध्यान मुद्रा में पक्षों में सर्पों की खुदाई पार्श्वनाथ की खुदाई से मिलती जुलती है।यह सभी न केवल सिंधु घाटी सभ्यता और जैन धर्म के बीच कड़ियों का संकेत कर रहे हैंबल्कि विभिन्न योग प्रथाओं को जैन धर्म का योगदान प्रदर्षन करते है। वैसे तो योग हमेशा से हमारी प्राचीन धरोहर रही है। समय के साथ–साथ योग विष्व प्रख्यात तो हुआ ही है साथ ही इसके महत्व को जानने के बाद आज योग लोगों की दिनचर्या का अभिन्न अंग भी बन गया है। लेकिन योग के प्रचार–प्रसार में विष्व प्रसिद्ध योगगुरुओं का भी योगदान रहा हैजिनमें से अयंगर योग के संस्थापक बी के एस अयंगर और योगगुरु रामदेव का नाम अधिाक प्रसिद्ध है।वर्तमान समय में अपनी व्यस्त जीवन शैली के कारण लोग संतोष पाने के लिए योग करते हैं। योग से न केवल व्यक्ति का तनाव दूर होता है बल्कि मन और मस्तिष्क को भी शांति मिलती है। योग बहुत ही लाभकारी है। योग न केवल हमारे दिमागमस्ति को ही ताकत पहुंचाता है बल्कि हमारी आत्मा को भी शुद्ध करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 श्रीवास्तव के सी प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति इलहाबाद 2003
2 पाल श्याम सुंदर योग प्रदीप्ति आर्यन पब्लिकेशन नई दिल्ली 2017
3 योगांक गीताप्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश
4 पतंजलिपतंजल योग सूत्र
5 वेद–गीता प्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश
6 उपनिशद–गीताप्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश
7 वशिष्ट सहिता– गीताप्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश
8 मनुस्मृति – गीताप्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश
9 श्रीमदभागवतगीता–गीताप्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश
10 रामायण–गीताप्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश
11 महाभारत– गीताप्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश

17

बगला तन्त्र योग प्रक्रिया एवं परिणाम का विवेचनात्मक अध्ययन

दिलीप कुमार तिवारी

सामान्यतः तन्त्र को मारण मोहन वशीकरण स्तम्भन उच्चाटन आदि शटकर्मों से जोड़ा जाता है अथवा उसे जादू–टोने को कोई चीज समझी जाती है, यह सर्वथा भ्रांत धारणा है, क्योंकि जिस शास्त्र का उद्‌देश्य ब्रह्मज्ञान आत्मस्वरूप का बोध त्रिविध तापो से मुक्ति जीवन मुक्ति एवं पराशक्ति अवस्थिति जैसा उच्चतर लक्ष्य हो उस पर इस प्रकार का निम्न स्तरीय आरोप उचित नहीं है। तन्त्र जो उच्चतर साधना का स्तर है उसे निम्न स्तर पर देखना या आंकलित करना आंकलितकर्ता के अज्ञान का सूचक है तन्त्र ने समग्र भारतीय तान्त्रिक साधना पद्धतियों को प्रभावित किया है।

तन्त्र का विकास युग युगान्तरों से स्वाभाविक रूप से होता आया है। तन्त्र की कभी भी व्यवस्थित रूप से पूर्णतः परिभाषा नहीं है, यह इसकी एक विशेषता है, क्योंकि तन्त्र निरन्तर परिवर्तनशील परिस्थितियों को स्वीकार करता है और निश्चित धर्म–सिद्धान्तों से अवरूद्ध नहीं होता। तन्त्र ही ऐसी एक प्रणाली है जो पूर्ण रूप से समझती है कि उसके लिपिबद्ध ग्रन्थ समयानुकूल अनावश्यक हो जाते हैं। लोगों की रूचि व अभिवृत्ति, सामाजिक नियम व परिस्थिति इत्यादि में परिवर्तन होता है। प्रत्येक समाज की अपनी विशेषता होती है, जिससे व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक तंदुरूस्ती और उच्च चेतना से समझौता करना पड़ता है। इसी कारण से तान्त्रिक परंपरा कहती है कि नवीन ग्रन्थ उन्हें प्रकटित व अंकित करेंगे।

बगला महाविद्या मन, बुद्धि के आसुरी भावों का स्तम्भन कर और दिव्य चिन्मय आत्म तत्व की ओर करने से मिथ्या प्रपंच से सहज वैराग्य, अनास्था जागृत होकर दिव्य स्वरूप दर्शन करना है। श्री विद्या की फलश्रुति ही यही है कि परम अद्वैत तत्व ब्रह्म में निष्ठा कराना।

व्यष्टि को समष्टि में एक अनुभव करके सभी ही चिद्विलास है। यही अनुभूति होना बगलामुखी साधना का या शाक्त साधना या तन्त्र साधना का फल है।

तंत्र एवं तंत्र योग :–भारतीय दर्शन और साधना पद्धतियों में तंत्र व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तंत्र वस्तुतः एक गंभीर चिन्ता और वैज्ञानिक प्रक्रिया के अर्थ में भारतीय वाड़्गमय में प्रयुक्त होता रहा है किन्तु जिस तंत्र शास्त्र का विशेष दर्शन साधना तथा साधना पद्धति के रूप मे प्रयोग हुआ है वह साधना के एक व्यापक आयाम में प्रयुक्त हुआ है और उसके जो भेद दिखायी पड़ते है वे बाद के भेद है तंत्र की व्यापकता का अनुमान केवल इतनी बात से भी लग जाता है कि वैष्णव,शैव,शाक्त और गाणपत्य आदि साधना पद्धतिया भी तंत्र के अन्तर्गत आ जाती है इस दृष्टि से तंत्र एक ऐसी वैज्ञानिक पद्धति है जो विभिन्न देवताओं का अवलम्बन करके परम तत्व तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करती है ।[1]

तंत्र का अर्थ :–तन्त्र का अर्थ कहने से रूढ़ रूप से एक विषेश पद्धति का बोध होता है और वह पद्धति है साधना की। इस पद्धति के विवेचन के पूर्व तंत्र के व्युत्पत्तिगत अर्थ पर विचार कर लेना समीचीन होगा । तंत्र शब्द "तनु"धातु से व्युत्पन्न हुआ है। तनु का अर्थ है विस्तार करना । इस प्रकार तंत्र का निवर्णन होगा।

तनोति् विस्तारयति ज्ञानं येन यस्मात् वा तत् तंत्रम् ।

अथवा तन्यते विस्तारयते ज्ञानं अनेन् इति तंत्रम्। [2]

व्याकरण की दृष्टि से तनु धातु के साथ त्रय धातु का योग इससे एक अर्थ इसमें और जुड़ जाता है । रक्षा करने का अर्थ अर्थात तंत्र ज्ञान का विस्तार और रक्षा करता है। इसी से यह अर्थ स्पष्ट होता है कि तंत्र साधक को आदिभौतिक आदिदैहिक, आध्यात्मिक तापो से त्राण दिलाता है तथा भय मुक्त कराता है।

तंत्र में योग तत्व :– योग साधना का उद्‌देश्य यही शाषेशोक्त अवस्था प्राप्त करना है इसके लिए सबसे प्रथम कर्तव्य है काम ,क्रोध ,लोभ ,मोह ,मद्य और मत्सर इन शट् रिपुओ का नाश करना है। इनका दमन करने के लिए योग के अष्टांगो में यम, नियम ,आसन, प्राणयाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करना होगा। तन्त्र की गुह्य साधनाओं को व्यवहारिक नही किया जा सकता परन्तु योग का व्यवहारिक रूप हमारे समक्ष अधिक स्पश्ट है। वास्तव में योग और तंत्र एक ही प्रणाली के सार तत्व हैं। वे परस्पर घनिश्ठता से सम्बन्धित हैं। योग तंत्र की विस्तृत में सम्मिलित है। योग की सभी क्रियाऐं जैसे आसान, प्राणायाम, सभी यौगिक मार्ग जैसे कर्मयोग, भक्तियोग, कुण्डलिनी योग, हठयोग, मन्त्रयोग, क्रियायोग इत्यादि सभी तन्त्र के आन्तरिक अंग हैं। ये सभी अभ्यास जो हम योग के नाम से जानते हैं, वे सब तन्त्र के अन्तर्गत आते हैं। हम पहले से ही तन्त्र की साधनाऐं कर रहे हैं लेकिन उनसे अनभिज्ञ हैं।[3]

विश्व ब्रह्माण्ड की दैवी चेतना से सम्पर्क जोड़ने के लिए जहां ब्रह्मरन्ध्र एवं सहस्त्रार का योग विज्ञान के माध्यम से प्रयोग होता है। वहीं प्रकृति वैभव रूप दैवी शक्तियों के प्रचण्ड

प्रवाह से लाभ उठाने के लिए तंत्र विज्ञान का आश्रय लेना होता है। योगी ब्रह्म पारायण होते हैं, दिव्य लोक में विचरण करते हैं, भाव साधना के माध्यम से देवी सम्पर्क स्थापित करते है। जबकि तांत्रिक शक्ति के उपासक होते है। वे प्रकृति में विद्यमान अपरिमित शक्ति स्रोंतों से अपना सम्पर्क स्थापित कर कुण्डलिनी केन्द्र को जगाने व प्रकृति से आदान–प्रदान का मार्ग प्रशस्त करते है।

दश महाविद्या :–शाक्त तन्त्र में एक ही पराशक्ति के दस स्वरूप उपासना क्रम में बतलाये गये हैं मौलिक रूप से पराशक्ति का मूल रूप एक ही है। किन्तु प्रकट रूप में उसके दस भेद किये गये है मूल में एकत्व होने के कारण सभी महाविद्यायें ब्रह्मविद्या मानी जाती है। इन महाविद्याओं के उपासना की विशेषता यह है कि इनसे श्रेय और प्रेय दोनों को उपलब्धि होती है।

1. **काली** :–काली आद्या महाविद्या है जो काल की भी नियामिका है काली बह्म स्वरूपा मानी गई है।वह शमशान में निवास करती है।इनका बीज 'क्रीं' है।
2. **तारा** :–अनेक योनियों मे अज्ञानवश घूमते हुए जीवों का अनेक क्लेशों से अनवरत सन्तप्त देखकर परम करूणामयी जगन्माता श्री तारा रूप से उनको जीवो को भव सिन्धु से तारती है अतः तारा नाम से साधक जानते है।
3. **विद्याः**–श्री विद्या जिसे ब्रह्म विद्या भी कहते हैं। यह भारतीय तन्त्र साधना की सर्वोपरि विद्या है।उर्ध्वाम्नाय से उपासित सभी विद्याएं श्री विद्या के नाम से ही अभिहित हैं
4. **भुवनेष्वरी** :– बह्म विद्या प्रदायिनी चौथी विद्या भुवेनश्वरी है। इस विद्या की उपासना से भोग और मोक्ष दोनों की ही प्राप्ति होती है। काव्य शक्ति भी उपलब्ध होती हैं इनका एकाक्षर बीज 'हीं' हैं। भुवनेश्वरी उदित होते हुए चन्द्रमा की प्रभा से मुक्त किरीट धारण किये हुए है। इनके स्तन तुंग है तथा यह तीन नेत्रों से युक्त है। यह स्मितमुखी है अपने चार हाथों में वर,अंकुश,पाश और अभय धारण किये हुए है।[4]
5. **छिन्नमस्ता** :– छिन्नमस्ता उग्र एवं सघः फलदात्री महाविद्या है इनकी आराधना से हठयोग की सिद्धि प्राप्त होती है। इनका मणिपुर चक्र में ध्यान किया जाता है। इनका चीन में प्रचार अधिक है। साधनमाला ग्रन्थ में छिन्नमस्ता भगवती का बहुत सा विषय वर्णित है।
6. **भैरवी** :– भैरवी तन्त्र में अनेक नामो से विख्यात है। ये नाम इनके भेद रूप में भी ग्रहण किये जा सकते हैं सिद्ध भैरवी, त्रिपुरभैरवी, चैतन्यभैरवी, भुवनेश्वरी,कमलेशी भैरवी,संपदप्रदाभैरवी,कौलेशी भैरवी,कामेश्वरी भैरवी, शटकूटा भैरवी, नित्य भैरवी,रूद्र भैरवी इत्यादि इनके नाम है जो प्रकार के रूप में भी गृहीत हो सकते हैं।
7. **धूमावती** :–धूमावती भयानक रूपवाली है किन्तु वह साधकों के कष्ट को अतिशीघ्र हर करने वाली मानी जाती है तथा कैसे भी शत्रु समूह को क्षणभर में विरत कर देती हैं विरोधी शक्ति का शीघ्र दमन करने वाली है।

8. **बगलामुखी** :—राजयोग की बगला महाविद्या स्तम्मन के लिये सबसे प्रसिद्ध महाविद्या है इनकी उपासना से शत्रुस्तम्मन के अतिरिक्त संसारिक ऐश्वर्य की अभिवृद्धि एवं परम ज्ञान की प्राप्ति होती हैं बगला वलगा शब्द से उत्पन्न होकर बना है जिस प्रकार वलगा का काम रोक देना और स्तम्भित कर देना होता है उसी प्रकार इनका कार्य भी स्तम्भन की दृष्टी से अमोघ है।यह केवल वाह्य शत्रुओं का ही स्तम्भन नहीं करती बल्की आन्तरिक रिपु काम,क्रोध और अहंता आदि का भी स्तम्भन करती है। इनकी उपासना शीघ्र फलदायिनी है।

9. **मातंगी :—**मातंगी वशीकरण में अमोघ मानी जाती है। संगीत से भी इनका गहरा सम्बन्ध है। इनके उपासक को वशीकरण और संगीत सहज प्राप्त होते है। वाणी पर इनका अधिकार है।

10. **कमला** :— दश महाविद्याओं में कमला दशमी महाविद्या है। यह महालक्ष्मी स्वरूपा है सांसारिक ऐश्वर्य तो इनके आधीन है ही आध्यात्मिक ऐश्वर्य में भी इनकी गति समान स्तर पर है।

इस प्रकार सम्पूर्ण संसार दश महाविधाओं गूढतम रहस्यों में व्याप्त है। इसमें बगला मुखी साधना का परिदृश्य स्तम्भन शक्ति के रूप मे विद्यमान है। इस प्रकार नाम रूप से व्यक्त एवं अव्यक्त सभी पदार्थों की स्थिति का आधार स्तम्भन शक्ति है। इसी अभिप्राय में कहा है कि वेद एवं वेदान्त शास्त्र में इसे ही ब्रह्म तत्व कहा गया है ।

''येन द्योरूग्रापषथिवी च द्रढा येन स्वः स्तंभितंयेन नाकः''

अर्थात उस परम तत्व स्तम्नन शक्ति से ही द्योलोक वृष्टि प्रदान करता है उसी से पृथ्वी दृढ़ होकर सब पदार्थो को धारण कर रहीं उसी से आदित्य मण्डल स्तम्भित है। उसी से स्वर्ग लोक भी ठहरा हुआ है। इस मन्त्र में स्तम्भन शक्ति का स्वरूप एवं उपयोग बताया गया है।

तन्त्र योग का परिदृश्य :—तन्त्र में प्रातः स्मरण स्नान विधि, त्रिपुण धारण भूशुद्धि प्राणायाम ,सन्ध्या जप, करांगन्यास,अन्तरमात्रिका, बहिर्मात्रिका ,चित्रान्यास ,नामादि विद्या, नित्यादि विद्या, मूल विद्या, तत्वन्यास, द्वार पूजा, तर्पण, दस महाविद्यान्यास पात्रनिर्णय, नित्य पूजा आदि नाना विषयो का विधान दिया गया है। सत्सम्प्रदायानुसार पहले साधक को गुरू से बगला मंत्र का उपदेश ग्रहण करना, ब्रह्मचर्यपूर्वक देवी मंदिर में पर्वत शिखर पर, शिवालय में, गुरू के समीप में या जैसी सुविधा हो पीताचार से मंत्र का पुरश्चरण एक लक्ष्य जपपूर्वक करना चाहिए। पद त्रिशदक्षर मंत्र का साधन ही प्रधान है। एकाक्षर स्थिरमय, चतुरक्षर, अष्टाक्षर, नवाक्षर ह्रदय, शताक्षर, पंचाक्षर, मंत्रों का ग्रहण क्रम से करके सहस्त्राक्षर, मंत्र पर्यन्त अभ्यास मंत्र सिद्धि की परम अवधि है। पंचांग, उपनिषद का प्रतिदिन पाठ और नित्यार्चन पद्धति से पूजन करना चाहिए। रूद्रयामलोक्त बृहत्पद्धति का अनुष्ठान तो आजकल बहुत ही कठिन और समय साध्य है।

सपर्यामण्डल भावनगर से प्रकाशित सपर्याविधि में पीताम्बरार्चन पद्धति बहुत ही सुंदर ढंग से दी गयी है। उसका उपयोग बहुत ही अच्छा है। होम के विषय में यद्यपि कसमोकस प्रसंग है। तथापि पूजांग रूप में नित्य होम का होना सिद्धिप्रद है।1इस घोर कलिकाल में श्री बगला के योग प्रत्यक्ष सिद्धिप्रद है। इसलिए तंत्रों में इन्हें सिद्धविद्या कहा गया है। विशेषतः राज्याभियोग में अप्रतिम प्रभाव इनका देखा गया है। मुमुक्षुगण तो काम, क्रोध आदि दुष्टों के स्तम्भन, कीलन एवं विनाश में ही इनका उपयोग करते हैं। काम को जीतने में भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्तंभन का प्रयोग अर्जुन को बताया है।

एवं बुद्धेः परं बुद्धध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना
जहिषत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।[5]

कुलाचार का पूजन, वीर साधन चक्रानुष्ठान पद्धति भी इनकी उपलब्ध होती है। स्वगुरू के आचारानुसार इसका पालन करना चाहिए। सभी आचारों से श्री बगला सिद्धिप्रद महाविद्या है।

बगला मुखी साधना में योग प्रतीक :–शक्ति तंत्र के अतंर्गत दस महा विद्याओं का उल्लेख बड़े विस्तार से किया गया है। इनकी सिद्धि के परिणाम जहां–एक ओर सुखद, आश्चर्य की सृष्टि करते है। वही साधना विधि की जटिलता सारा उत्साह भंग कर देती है। कारण कि आज के युग में शान्त मन से एकान्त में बैठकर साधना, तपश्चर्या करना जन–सामान्य के लिये संभव नही रहा तो भी अनेक ऐसे जन अभी मौजूद है जो ऐसी साधानाओं द्वारा स्वयं तो लाभान्वित है ही दूसरों का कल्याण भी करते है।

बगला साधना में योग प्रतीक के रूप में बगला महाविद्या का स्वरूप यौगिक अर्थों में गहनतम रहस्यों को उद्घाटित करता है, जिस महाशक्ति को त्रैलोक्य स्तंभिनी के रूप में जाना जाता है। वास्तव में वही समष्टि एवं व्यष्टि प्राण के रूप में व्याप्त है। उसी सचराचर चेतना को हम बगला महाविद्या के रूप में जानते हैं।

बगला मुखी का स्वरुपः–बगला संस्तम्भिनी महाविद्या है। जो तीनों लोको को अपने – अपने स्थान पर स्तम्भित किये है। कृत युग मे जगत का विनाशकारी एक बात क्षोम उत्पन्न हुआ जिसको विष्णु ने महात्रिपुरसुन्दरी महाविद्या के प्रयोग से शमन किया। महा त्रिपुरसुन्दरी ही बगला के रुप में प्रकट हुई। त्रैलोक्य स्तम्भनी ब्रह्मास्त्र महाविद्या ही श्री विद्या एवं वैष्णव तेज से युक्त होकर बगला नाम से प्रसिद्ध है।

जैसा कि धूमावती आदि ब्रह्म की पांच शक्तियों की चर्चा की गई है। उसी प्रकार बगला नामक स्तम्भन शक्ति ब्रह्म की ही शक्ति है।श्रुति स्मृति के प्रमाणों से स्तम्भन शक्ति का स्वरुप ज्ञात होता है। जैसे न्यूटन को आकर्षण शक्ति का आविश्कारक कहा जाता है। उसी प्रकार ऋषि द्वारा स्तम्भन शक्ति का आविश्कार है। वही विष्णु पत्नि सारे जगत् की अधिष्ठान भूत ब्रह्मस्वरुपिणी बगला महाविद्या नाम से प्रसिद्ध है। इसके इस व्यापक स्वरुप के ज्ञान से साधक अविद्या से मुक्त होकर मुक्ति लाभ करता है।[6]

परिणाम :–तंत्रशास्त्र प्रसिद्ध बगलाप्रद बलगा इस व्युत्यय नाम से कहा जाता है। इसका अर्थ उव्वट ने ऐसा किया है –**बलगान् कृत्या विषेशान् भूमौ निरवनितान्।**

शत्रुनिर्विनाषार्थ हन्तीति बलगहातां बलगहनम्।।

अर्थात् शत्रु के विनाश के लिए कृत्या विशेष भूमि में जो गाड़ देते हैं। उन्हें नाश करने वाली शक्ति वैष्णवी महाशक्ति को बलगहा कहते हैं।यही अर्थ बगलामुखी का भी है। 'खनु' अवदारणे इस धातु से मुख शब्द बनता है। जिसका अर्थ मुख में गये पदार्थ का चर्वण या विनाष ही अभिप्रेत होता है। इसी प्रकार शत्रुओं द्वारा किये हुए अभिचार को नष्ट करने वाली महाशक्ति का नाम बगलामुखी चरितार्थ होता है।

पराजयं प्राप्य पलायमानै राक्षसैरिन्द्रादिवधार्थम् अभिचाररूपेण

भूमौ निखाता अस्थिकेषनखादिपदार्थाः कष्त्या विषेशा बलगाः।।[7]

इन्द्रादि देवताओं द्वारा पराजित होकर भगे हुए राक्षसों ने देवताओं के वध के लिए अस्थि, केश, नखादि पदार्थों द्वारा अभिचार किया। बगलामुखी साधना का यही सही परिणाम है।

आचार तपस् :–पुरश्चरण करते समय साधक को निम्नलिखित आठ बातों का ध्यान अवश्यमेव रखना चाहिए –

1. **भूशय्या–**साधक को पवित्र वस्त्र पहनकर कुश या कंबल आदि की शय्या पर शयन करना चाहिए, प्रतिदिन पहनने के वस्त्र सहित शय्या को परिशुद्ध कर लेना आवश्यक है।
2. **ब्रह्मचर्य –**अष्टविध मैथुन तथा कामभाव के उद्दीपक कारणों से सर्वथा दूर रहना।
3. **मौनावलम्बन–**यथाशक्ति मौन धारण करना 'मौनेन कलहोनास्ति' के अनुसार सब झगड़ों से रहित होगा।
4. **आचार्य या गुरू सेवा –**श्री गुरू के सान्निध्य में पुरश्चरण करना लिखा गया है।
5. **नित्य यथा विधि स्नान से शारीरिक शुद्धि रखना –**पंचगव्य या आंवलों के रस द्वारा मंत्र जप पूर्वक स्नान करना शास्त्र विहित हे।
6. **पूजा –**अपने इष्ट देवता की पूजा में किसी प्रकार का व्यतिवम न होना चाहिए।
7. **दान अथवा त्यागेच्छा –**दान अथवा त्यागेच्छा यथाशक्ति यथविभव सत्पात्र को कुछ–न–कुछ इष्ट देवता के नाम पर प्रदान करें।
8. **गुरू और देवता की स्तुति वन्दना –**अवकाश के समय गुरू देवता संबंधी स्तोत्र पाठ, सहस्रनाम आदि तथा देवी चरितों का पाठ करना, इसमें समय का सदुपयोग होगा और व्यर्थ न जाएगा।[8]

प्रक्रिया :–प्रायः मुकदमेबाज लोग अपने विपक्षी को हराने या उसे हानि पहुँचाने के लिए बगलामुखी का जप करते हैं। बगलामुखी के जप के लिए हल्दी की माला, पीले वस्त्र,

और पीले फूलों से बगलामुखी की पूजा की जाती है और एक मिट्टी का छोटा सा बैल बनाकर उस एक धागे से बांधकर वह धागा आसन के नीचे दबाकर जप करना होता है। किंतु यह जप भी किसी अन्य से न कराकर स्वयं करना चाहिए तभी उसका फल होता है। किंतु यदि विपक्षी भी बगलामुखी का जप कर रहा हो तब किसी को फल नहीं मिलता। बगलामुखी बड़ी सशक्त देवी है। इनके लिए भी रात्रि के द्वितीय प्रहर से मध्य रात्रि तक जप करना चाहिए। तभी उसका फल होता है। इनकी जप साधना में प्रायः बाधा नहीं होती है, फिर सिद्ध गुरू के आदेशानुसार उनकी देखरेख में ही और उनसे मन्त्र लेकर ही जप करना चाहिए। यह जप सकाम साधना के लिए होता है। इसके फलस्वरूप शत्रु की हानि होती है। इसके 36 अक्षरवाले मंत्र में 'सर्व दुष्टानां' के बदले 'मम शत्रूणां' कहना चाहिए।

इस महादेवी के पूजा मंत्र और पूजा माहात्म्य के विषय में तंत्र सार में लिखा है कि इसका मंत्र साधक वर्ग का हितकर और शत्रु दल का स्तम्भनकारी ब्रह्मास्त्र स्वरूप है। इसके मंत्र से सबको स्तम्भित किया जा सकता है। यहॉ तक कि वायु की भी गति रूक सकती है।इस देवी की पूजा से वाक् स्तम्भन, बुद्धि नाश और शत्रु का क्षय होता है। देवी के मंत्र का प्रयोग करने से सभी आधिभौतिक व्यापार साधित हो सकते हैं।

दस हजार बार मंत्र जप करके निशाकाल में हरिद्रा और हरताल के साथ लवण होम करने से दुष्ट व्यक्ति का वाक् स्तम्भन और बुद्धि विपर्यय होता तथा शत्रु का स्तम्भन किया जा सकता है। घृत, मधु और शर्करा के साथ पीतपुष्प का होम, स्तम्भन, कार्य विशेष में फलप्रद है। कार्य साधनार्थ पहले एक यंत्र बनवाना आवश्यक है। पीछे स्तम्भनार्थ होमादि पूजा करनी होती है।

मंत्र जप :—मननात् त्रायते इति मंत्रः।[9]

जिसके मनन से दैहिक और भौतिक आघातों से रक्षा होती है, तंत्र षास्त्र में वही मंत्र है। मंत्र का वही स्थान है जो शरीर में प्राण का है। अनुष्ठेय अर्थ का प्रकाशक मंत्र ही है, अपने इष्ट को प्रकाश में लाने वाले मंत्र ही है। ''**तत्वमवबोध कत्व मंत्रम्।'' अत्पाक्षरत्वेसति दिव्यार्थ बोधकत्वं।''**

अक्षर कम हो और जो दिव्य अर्थ को कहे, वही मंत्र है। देवता मंत्र के अधीन रहते है। मंत्र, मनन के द्वारा ही भौगिक जगत से जीव की रक्षा करता है उसे मुक्त करता है। जीवन के चर्तुवर्ग— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का आमंत्रण करता है।

तंत्रशास्त्र में एवं अन्य दर्शनों में भी ध्वनि को अनश्वर माना गया है। मंत्र के जप से एक विशेष प्रकार की तरंग उत्पन्न करता है जो उसके भीतर विशेष चेतना केन्द्रो पर प्रभाव डालता है। जो मंत्र जिस दृष्टि से बने हुए है उनकी पुनरावृत्ति से उसी प्रकार के परिणाम की उपलब्धि होती है और साधक वैसी ही अनुभूति से गुजरता है। मंत्र से पूरे व्यक्तित्व का रूपान्तरण संभव है। जप अनायास होने लगे तो मंत्र की ध्वनि तरंगे संतुलित हो जाती है। मंत्र के अनुसार अपने प्रभाव देने में समर्थ होती है। यही मंत्र प्रभाव का वास्तविक रहस्य है।

भगवान के साक्षात्कार करने के लिए जप एक सरलतम, निश्चितम् एवं सर्वाधिक सुरक्षित साधन है कोई भी व्यक्ति जप कर सकता है और इस साधन के द्वारा जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है। लेकिन उसके लिये आवश्यकता है– मन की एकाग्रता, विश्वास और हृदय की शुद्धता, जप से साधक के अन्दर रहा हुआ मैल दूर होता है।

प्रक्रिया धारणा :–इष्ट शक्ति के विकास और संचार करने का मौलिक रहस्य मंत्र की पुरश्चरण रूपी वैज्ञानिक क्रिया है। दीक्षा द्वारा मंत्र प्राप्ति के अनन्तर मंत्र सिद्धि के लिए पुरष्चरण करना अथवा अनुष्ठान करना नितान्त आवश्यक है।[10]

जब तक मंत्र का पुरष्चरण नही किया जाता तब तक वह इस प्रकार निरर्थक हैं, अर्थात जिस प्रकार प्राणों से रहित शरीर निश्क्रिय होता है। एवमेव पुरष्चरण रहित मंत्र निजीवि है और उससे किसी प्रकार की क्रिया का सम्पादन रहित मंत्र निजीवि है और उससे किसी प्रकार की क्रिया का सम्पादन नही हो सकता।

समर्पण :–एक निश्चित समय से अजपा का प्रारंभ करना चाहिए और उसी के अनुसार समय विभाग करके अभ्यास करना चाहिए। जिस चक्र का जो समय आवे उसी का ध्यान करते हुए जप का अभ्यास करना चाहिए। इससे साधक शीघ्र ही आत्मा के स्वरूप के साथ तादात्म्य लाभ करके समस्त क्लेशों से छूट जाता है।

इसकी प्रशंसा में शारदातिलक में लिखा है–**हंस पदं परेशानि प्रत्यहं जपते नरः।**हे भगवती, यही वह हंस पद है जिसका मनुष्य प्रतिदिन जप करता है। मोह में पड़कर जो मनुष्य इसे नहीं जानता उसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। जब श्रीगुरू की कृपा से जीव इसे जान लेता है और जप करता है तब इस श्वांस की साधारण क्रिया के द्वारा वह संसार बंधन से मुक्त हो जाता है। योगियों को मोक्ष प्रदान करने वाली इस अजपा नामक गायत्री के ज्ञान मात्र से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। न तो इस विद्या के समान पवित्र साधना आज तक न तो हुई है और न भविष्य में होगी अर्थात् अजपा साधना सर्वश्रेष्ठ व समर्पण है साधना।[11]

उपसंहार :–भारतीय इतिहास में तंत्र साधना एक बड़ी उपलब्धि है जिसने साधना एवं दर्शन के क्षेत्र में व्यावहारिक दृष्टि रखते हुए एक सार्वकालिक संतुलित दृष्टि प्रदान की है जो सभी मनुश्य के लिए समान स्तर पर उपयोगी है। तंत्र कहने से शैव, वैश्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य इन पांचों प्रकार की साधनाओं का बोध होता है। इसने अपनी साधना को सर्वाधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। इनमें शाक्त साधना अति विशिष्ट है जिसमें शाक्त दर्शन एवं साधना को पूर्णता पर पहुँचाया है। शाक्त तंत्र ने ऐसा कोई भी बिंदु नहीं छोड़ा है जो मनुष्य के सम्यक् विकास के लिए स्वाभाविक है एवं अपेक्षित भी।

संदर्भ ग्रन्थ

1. शिवशंकर अवस्थीख मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य : चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1986, पृ.12
2. वही, पृ.13
3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, तंत्र क्रिया और योग विद्या, पृ. 79–801
4. खड्डर, मोती लाल, शाक्ततंत्र साधना, पृ.201।
5. श्रीमद्भगवद्गीताः गीताप्रेस गोरखपुर, 1961 3/43
6. आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, अखण्ड ज्योति वर्ष 1977, अंक4, पृ.65
7. श्री अनंत श्री स्वामी, लेख संग्रह : पीतांबरापीठ, दतिया, 1969, पृ53
8. शास्त्री दौर्गादति पं.योगीन्द्र कृष्ण, पुरश्चरण पद्धति, पृ10
9. अवस्थी शिव शंकर, मंत्र मातिृकाओं का रहस्य पृ0188
10. शास्त्री दौर्गादति पं.योगीन्द्र कृष्ण पुरश्चरण पद्धति पृ0 1
11. खड्डर मोतीलाल, शाक्त तंत्र साधना पृ0 139

18

वैदिक साहित्य में योग

मनोज कुमार कुर्मी

भारत में योग परंपरा वैदिक काल से पहले भी रही है हड़प्पीय सभ्यता के स्थलों से प्राप्त योग मुद्रा में आसनस्थ मुहरें इस बात के प्रमाण हैं कि तत्कालीन समाज में योग का महत्व रहा है । वैदिक कालीन समाज को मानसिक रूप से समुन्नत बनाये रखने में योग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

प्राचीन भारतीय संस्कृति की अपनी निज विषेशता आध्यात्मिक ज्ञान की है और इसका सम्पादन योग क्रिया के द्वारा अतीत में होता रहा है । योग ज्ञान केवल आध्यात्मिक ही नहीं, प्रत्युत ज्योतिष विषयक भी है । अपने योग बल से भारतीयों ने अपने भीतर के रहने वाले सौर जगत को पूर्णतया ज्ञात कर और तुलना निरीक्षण द्वारा आकाषमण्डलीय सौर जगत से कर अनेक ज्योतिया के सिद्धान्त निकाले, जो बहुत समय तक मौखिक रूप से अवस्थित रहे ।

यह तथ्य महत्वपूर्ण है की योग के बल पर वैदिक ज्योतिर्विदों ने यह भांप लिया था कि पृथ्वी स्वयं गोलाकार है, जो अपने समय को देखते हुए एक आश्चर्यजनक उपलब्धि है । यह कहा जा सकता है कि योग और ज्योतिश के क्षेत्र में वैदिक प्रगति पराकाष्ठा पर थी ।

जीवन और शरीर को हष्ट–पुष्ट बनाए रखने के लिए ऋषी– मुनियो और योगाचार्यों ने मार्गदर्शन किया है सत्पुरुषों ने राह दिखाई है ।

अगस्त्यरू खनमानरू खनित्रैरू प्रजामपत्यम बलमिच्छमानरू

उभौ वर्णावृशीरुग्ररू पुपोश सत्या देवेश्वाशिषो जगाम 1

अगस्त्य ऋषि के जीवन का रहस्य समझने के लिए इस प्रकार तादात्म्य स्थापित करते हुए समझ सकते है कि समाज मे दो तरह या दो वर्णो के लोग होते है, एक शरीर से मेहनत

करने वाले और दूसरे बुद्धि प्रधान काम करने वाले । अगस्त्य ऋषि द्विवर्णिक थे । प्राचीन ऋषियों की मानी हुई बात है कि दो वर्ण अलग नहीं होते अपितु दोनों के योग से जीवन प्रवाहित होता है । अंदर ज्ञान निष्ठा बाहर श्रम निष्ठा होनी चाहिए । दोनों शक्तियों का संयोग एवं समन्वय एक ही व्यक्ति मे होना चाहिए । ऐसा उत्तम आदर्श अगस्त्य ऋषि ने पेश किया । अगस्त्य ध्यान योगी और मंत्र दृष्टा ऋषि होने के कारण योगी थे । वेद मे श्रम की प्रतिष्ठा है और श्रम करना चाहिए । यह तत्त्व सदा सबके सामने रहे इसलिए अगस्त्य ऋषि को सप्तर्षि मे स्थान मिला ।

ऋषि मंत्रदृष्टा ऋषि अर्थात जिनहे मंत्र दिखे य।पि वह मंत्रों के प्रवर्तक नही होंगे । ऋषिर दर्शनात दृ जिसे दर्शन हुआ है, वह ऋषि । विशिष्ट दृष्टि रखने वाला निष्ठावान पुरुष । ऋषियों को जो दर्शन होता है, प्रतिभाशाली योग– समाधि से जो दर्शन होता है, वह फलरूप दर्शन नही, बीज रूप दर्शन होता है । उन्हे बीज मे भी विकास का ज्ञान हो सकता है । उस दर्शन से नए नए अर्थ निकाल सकते है । ऋषि के तीन प्रकार हो सकते है ब्रह्मर्शि, राजर्शि और देवर्शि तीनों महान है इसलिए उन्हे महर्षि कहते है ।

ब्रह्मर्षि यानि ज्ञान योगी, ज्ञान मार्गी दृष्टा । ब्रह्मर्शि तत्त्वज्ञानी है, ब्रह्म चिंतन करता है, ब्रह्म की खोज करता है नए – नए सिद्धान्त निकालता है और लोगो के सामने रखता है । जैसे प्रयोगशाला मे विज्ञान की शक्ति का अनुसंधान करने के लिए वैज्ञानिक की जरूरत होते है, वैसे ही आध्यात्मिक शक्ति का शोधन करने के लिए ब्रह्मर्षि की आवश्यकता होती है । मूल मे क्या तत्त्व है, जिससे सामाजिक जीवन आगे बढ़ सकता है, उस तत्त्व की खोज करने के लिए समाज हितार्थ कभी कभी ब्रह्मर्षि समाज से अलग आश्रम मे रहते है । ब्रह्मर्षि का कार्य शास्त्र का विकास करना है । वैज्ञानिक खोज की तरह ही ब्रह्मर्षि की खोज का उपयोग वर्तमान या आगे के समाज के लिए होता है । दूसरे शक्ति सेवा की होती है । ब्रह्मर्षियों द्वारा प्राप्त चिंतन के आधार पर समाज–सेवक लोक सेवा मे रत रहते है, जिन्हे राजर्षि कहते है । राजर्षियों के योग से समाज शुष्क नही हो पाता और समाज मे गति बनी रहती है । राजर्षि का मतलब हुआ सेवा करने वाला दृष्टा। कर्म योगी दृष्टा । तीसरी शक्ति साहित्य की है । जिन विचारो का ज्ञानियों को अनुभव होता है, और जो आत्मा की गहराई मे सिद्ध हो चुके होते है, उन विचारो को लोक दृ वाणी मे, लोगो को ग्रहण हो सके ऐसे चुने हुए शब्द मे वे ज्ञानी प्रकट होते हैं । यह तीसरी शक्ति है, जनता के हृदयो तक विचार पहुचाने की कुशलता की शक्ति, जिनमें होती है उन्हे देवर्शि कहते है । देवर्शि यानि भक्ति मार्गी दृष्टा ।

जब से दुनिया की सेवा करने की बात मानव को सूझी तब से मानव का सच्चा जन्म हुआ और सब दुनिया की सच्ची सेवा करने का खेती के सिवाय और कोई साधन नही है।

'ऋषि' और 'ऋषभ' ये दोनों शब्द 'ऋष' इस एक ही धातु से बने हैं । ऋषभ अर्थात जमीन को जोतने वाला बैल और ऋषि यानि उस बैल के पीछे पीछे चलाने वाल किसान । ऋषि मानते थे कि प्रत्येक के लिए खेती पर श्रम करना अनिवार्य है । वैदिक कालीन

समाज मे ऐसी मान्यता थी । हर एक मानुष किसान है जो खाना चाहता है अथवा भोजन की चाह रखने वाले को अन्न उपजाने की जिम्मेदारी होगी । अन्न पैदा करना हर एक का धर्म माना जाएगा । हमारी समाज रचना, शिक्षा स्थल ऐसे होने चाहिए कि वि ालय के साथ दो–चार एकड़ खेत जुड़ा ही होना चाहिए । छात्रो और शिक्षकों कों सम्मिलित होकर खेत मे काम करना चाहिए । सबका प्रकृति के साथ योगा– योग होना चाहिए ।

प्राचीन ऋषियों कों खेती के लिए बहुत आग्रह एवं प्रेम था । वैदिक ऋषि की राय थी कि खेती जैसे किसी षारीरिक श्रम योग के बिना जीवन जीना सिर्फ इंद्रिय भोग है । खेती मे अच्छी मेहनत करनी होती है, इसलिए इंद्रिय निग्रह सहजता से हो जाता है, इसके अलावा खेती से फसल उपज के उपरांत संतोश और सुखद अहसास होता है । ठीक ही कहा जाता है उत्तम खेती मध्यम बान करे चाकरी ।

कृषि कार्य उत्पत्ति कार्य है । यही लक्ष्मी है, यही उत्तम और प्रधान कारी है, इसी मे रम जाओ ऐसा वैदिक आदेश है, कहते है कि विष्णु के अनुग्रह की वर्षा होगी तभी लक्ष्मी प्रकट होती है, लेकिन किसान के प्रयत्न का हल चले बिना विष्णु का अनुग्रह होना भी संभव नही । शरीर से पसीने की धारायें बहाने के बाद ही मेघ की धाराओं की प्रतीक्षा करें । गीता मे ययाति भवति पर्जन्यरू का यही अर्थ अभिहित होता है ।

खेती मे बहुत बड़ा आध्यात्मिक रहस्य छिपा हुआ है । मैंने गेहूं का एक दाना बोया, उसके सौ दाने बनाने का काम परमेश्वर करता है, सृजन करने का काम सृष्टि करती है। मानुष निमित्त मात्र होता है । यह मनुष्य कृति नाही है, देव कृति है। यह जो लक्ष्मी का उत्पादन है, खेती, वह साक्षात 'ब्रहमकर्म' है । ब्रह्मकर्म अर्थात निर्माण कार्य । अर्थशास्त्रीय दृश्टि से यह उत्पादन कार्य है, परंतु यह गौण शब्द है । 'ब्रह्मकर्म' यानी ब्रह्म देव की क्रिया। उसमे साक्षात सृष्टि देवता के साथ योग होता है, जिससे सब गुणो का विकास होने का मौका मिलता है। सृष्टि के साथ संबंध, पशुओ से एकरूपता, सहकार्य की आवश्यकता, परिश्रमनिष्ठा, सब तरह का हिसाब रखना दृ ये सब बातें उसमे साध्य हो सकती है । उसमें सबका मन उदार बनाता है।

प्राचीन काल मे जो योग की महत्ता प्रतिपादित की गई है वह आज भी प्रासंगिक है हमें योग बल के महत्व अपने जीवन मे अंगीकार करना चाहिए तभी हम ऋषि ऋण का मान रखते हुए कृतज्ञता ज्ञापित कर पायेंगे।

सन्दर्भग्रन्थ

1 ऋग्वेद 1.179.6, 1.24.7

2 श्रीमद्भगवद्गीताः गीताप्रेस गोरखपुर, 1961 3/43

3 पद्मभूशा डॉ– ईश्वरी प्रसाद ,वं शैलेन्द्र वर्मा, भारतीय इतिहास मीनू पब्लिकेशन, इलाहाबाद (1990)

4 श्रीवास्तव, कृषचन्द्र तथा श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद 1991।

5 दुबे, सीताराम, सम्पादक बौहडे युगीन भारत, प्रतिभा–प्रकाशन, दिल्ली, 1996,

19

सूर्य नमस्कार : एक अलौकिक योग साधना

डॉ0 नीलम श्रीवास्तव (योग विभाग)

योग के क्षेत्र में सूर्य नमस्कार एक जीवन शक्ति के प्रदायक अभ्यास के रूप में विख्यात हैं। इसके अभ्यास के परिणाम स्वरूप स्वास्थ्य शक्ति तथा क्रिया शीलता में वृद्धि होती हैं। साथ ही साथ अध्यात्मिक प्रगति भी होती हैं इसका मिला जुला परिणाम चेतना के विकास के रूप में परिलक्षित होता है। आधुनिक उलझन पूर्ण जीवन पद्धति में मानसिक तनाव, चिन्तायें, तथा अनेक समस्यायें, व्यक्तिगत सम्बन्ध, आर्थिक विषमता तथा युद्ध और विनाश के भय के कारण नित्य उत्पन्न होती रहती हैं, साथ ही साथ स्वचालित यंत्रों के उपयोग तथा औद्योगिक विकास के कारण मानव शारीरिक श्रम से भी क्रमषःदूर हो गया हैं। शारीरिक तथा मानसिक रूप से अस्वस्थ रहने वालों की संख्या बढ रही हैं। बिना किसी प्रभावी कदम के इस पर नियंत्रण पाना संभव नहीं हैं। सूर्य नमस्कार वैदिक काल से मनीषियों की देन हैं सूर्य नमस्कार का शाब्दिक अर्थ हैं सूर्य को नमस्कार प्राचीन काल में दैनिक कर्म काण्ड के रूप में सूर्य की नित्य अराघना की जाती है। क्योंकि यह आध्यात्मिक चेतना का एक शक्ति शाली प्रतीक हैं। बाहय तथा आन्तरिक सूर्य उपासना सामाजिक, धार्मिक कर्मकांड के रूप में भी जाती थी। ताकि प्रकृति की उन शक्तियों को अनुकूल बनाया जा सकें। जो मनुष्य के मनुष्य की नियंत्रण की सीमा से बाहर है। यह पद्धति उन आत्म ज्ञानियों द्वारा विकसित की गयी हैं, जिन्हें यह पता था कि इसके अभ्यास से स्वास्थ्य की रक्षा होती हैं, तथा सामाजिक रचनात्मकता और उत्पादन के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनती हैं सूर्य नमस्कार तीन तत्वों से संयुक्त है, सूर्य, ऊर्जा, तथा लयबद्धता बारह शारीरिक स्थितियों के भौतिक सांचें में ढली हुई पद्धति से प्राणों की उत्पत्ति होती हैं। इन स्थितियों का अभ्यास लय बद्ध ढंग से करने पर सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड के आवर्तन प्रभावित होते हैं। यथा दिवस के चौबीस घंटे, वर्ष के बारह राशी चक्र तथा मानव शरीर के जैव लय। हमारे शरीर तथा मन पर पडने वालें इन परिस्थितियों और सूक्ष्म ऊर्जा कें प्रभाव के फलस्वरूप जीवन की क्रिया शीलता में वृद्धि होती है, चारो ओर की दुनिया के प्रति हमारी प्रतिक्रिया सकारात्मक बनती हैं।

वैदिक काल में सूर्य उपासना :– सूर्य उपासना मानव की आन्तरिक अभिव्यक्तियों का एक अत्यन्त सहज रूप रही हैं, प्राचीन परम्पराओं में सूर्य उपासना को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया गया हैं। इसमे विभिन्न प्रकार के सौर प्रतीकों तथा देवी देवताओं को भी सम्मिलित किया गया हैं। इस प्राचीन परम्परा को वैदिक सभ्यता में सर्वाधिक सुरक्षित रखा गया है आज भी भारत के अनेक भागों में सूर्य उपासना दैनिक कर्म कांड के रूप में की जाती हैं। राम सूर्य वंश के ही राजा थे। वेदों में सूर्य के विषय में विभिन्न प्रकार के वर्णन पढने को मिलते हैं। श्रृग्वेद के कुछ सूर्य विषयक विवरणों का सारांश इस प्रकार हैं –

''इस देदिव्यमान देव की किरणे फैल रही हैं। प्रत्येक प्राणी इसके दर्शन कर सकता हैं।''

''सूर्य तू अनन्त आकाश की अपनी यात्रा में अनेक पीढियों को जन्म लेते और नष्ट होते हुए देखता है।

''तेरे रथ में सात घोडे हैं। तेरे केश आकाश की लपटे है।''

''तू दुर्बलताओं कों नश्ट करता हैं, रोगों को दूर करता हैं, दुश्टों का नाश करता हैं उपासको को रक्षा करता हैं।''

''ओ कांन्तिमय सूर्य हम ऋशि– मुनी तेरे पूज्यनीय गौरव की छत्र छाया में उपासना मनन करतें हैं, तू हमारी प्रज्ञा को प्रेरित कर। ''

सूर्योपनिषद में कहा गया हैं कि जो व्यक्ति सूर्य को ब्रह्म मानकर उसकी उपासना करता हैं। वह शक्तिशाली, क्रिया शील, बुद्धिमान तथा दीर्घ जीवी होता हैं। सूर्वोपनिषद में कहा गया हैं वह स्वर्ण के समान दीप्त, चार भुजाओं वाला, लाल कमल पर विराज मान तथा चार अश्वों द्वारा संचालित रथ पर आरूढ है। वह समय चक्र को गति प्रदान करता हैं। पंच तत्व तथा पंच कर्मेन्द्रियॉ उसी से निःसृत हैं।

अक्षयोंपनिशद में सूर्य को ईष्वर के उस रूप में बतलाया गया हैं जो अनगिनत किरणों वाले सूर्य का रूप धारण करता हैं तथा सम्पूर्ण मानवता के हित में चमकता रहता हैं । वृहदारण्यक उपनिषद में भी सूर्य का एक वर्णन इस प्रकार है। प्रकाश के सार तत्व, ओ देव ! तू मुझे असत से सत की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चले।

प्राचीन वास्तुकला में सूर्य का संदर्भ

अनेक सम्प्रदाओं में सूर्योपासना आज भी किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। कहीं उगते हुए सूर्य की तो कहीं डूबते हुए सूर्य की तथा कहीं मध्य दिवसीय सूर्य की उपा सना का विधान हैं। यद्यपि लोग सूर्य की उपासना बाहृय रूप से ही करते है, परन्तु वास्तव में यह प्रतीक मात्र हैं। मुख्यतः उद्धेश्य हैं– इसके माध्यम से उस परब्रम्ह की उपासना करना जो सृष्टि रचयिता पालनकर्ता तथा संहारकर्ता भी हैं, और सूर्य जिसका प्रतीक मात्र हैं।

प्राचीनकाल में सूर्य के उपासको द्वारा सौर–प्रणाली की विज्ञान व्याख्या भी विकसित की गई थी। ज्योतिष में सूर्य सिद्धान्त एक प्राचीन विधि है जो समय की गणना गति ग्रहण सायन, आदी के सम्बन्धित हैं।

आधुनिक अवलोकन :– हमारी आधुनिक काल में धार्मिक मान्यताओं की नीव पर ही सूर्य से सम्बन्धित जानकारी को वैज्ञानिक रूप दिया हैं इस प्रकार सूर्य के गर्भ में दिए रहस्यों का उद्घाटन हुआ हैं इससे ग्रहीय व्यवस्था के केन्द्र बिन्दु सूर्य के साथ मानव के सम्बन्धों के बारें में एक नई समझ पैदा हुई है। कभी कभी सूर्य के तल पर विशाल धधकती अग्नि का विस्फोट होता है। पृथ्वी के विस्फोट सूर्य पर घण्टो की तरह दिखाई देते हैं। वे घण्टे सदा एक ही जैसे नहीं होते, उनमें कभी तीव्र तो कभी घटनें का क्रम चलता हैं। अनुमानतः इनका एक वर्षों में पूरा होता है। शोधों के आधार पर यह पाया गया कि जब भी घण्टों की तीव्रता का चक्र आरम्भ होता हैं तो इससें पृथ्वीवासी भी प्रभावित होते हैं तथा उस बीच युद्ध, क्रातियां तथा अनेक उथल पुथल होती है।

अमेरिका फाउण्डेशन फॉर दि स्टडी ऑफ साइकिल्स, ने शोधों में यह पाया कि इन घंटो में 1300 प्रकार की बातों पर प्रभाव पडतें हैं उत्तर ध्रुवीय ज्योतियॉ, पुच्छल तारो, भूकम्पों ज्वालामुखी, उद्भेद, उल्कापात, कीटाणु कोश, परिपक्वन, वृक्षों की विधुतीय क्षमताओं, फैशन मतदान, प्रवृत्तियां स्टाक मार्केट के मूल्यों में उतार चढाव, रक्तचाप तथा मधुमेह में वृद्धि अन्य अनेकानेक असम्बद्ध लगने वाली घटनायें। यद्यपि इन तथ्यों पर सहसा विश्वास नहीं होता, परन्तु सूर्य तथा इसके विकार्णों के व्यापक शक्तिशाली प्रभावी ओर पृथ्वी पर सूर्य के लगातार पडने वाले ऊष्मा– युक्त प्रभाव समझने के पश्चात् ये चौकाने वाले नहीं लगते। वस्तुतः सूयै पृथ्वी पर पाये जाने वाले जीवन का एक आवश्यक अंग हैं हमारे जीवन पर पडने वाले सूर्य के इन प्रभावों को ठीक से समझ लेने के पश्चात् सूर्य नमस्कार से होने वाले लाभों के अनदेखे, अनजाने, आयाम हमारे सामने प्रकट होने लगते है।

सूर्य नमस्कार :–सूर्य नमस्कार 12 शारीरिक स्थितियों से मिलकर वना है। ंबारी बारी से आगे तथा पीछे मुडने वाले इन आसनों के माध्यम से शारीरिक अंगों तथा मेरूदण्ड में काफी खिंचाव उत्पन्न होता हैं तथा वे लचीले बनतें है, अतः अन्य अभ्यासों की अपेक्षा सूर्य नमस्कार कहीं अधिक प्रभवशाली है।

सूर्य नमस्कार की बारह स्थितियां

स्थिति 1:– प्रणामासन :– दोनो पैरों को एक साथ रखते हुए या थोडा अलग रखते हुए, सीधे खडें हो जाइए और आंखें बन्द कर लीजिए। दोनो हथेलिओं को छाती के सामने नमस्कार की मुद्रा में जोडिए, हथेलियों की इस मुद्रा तथा उस पर पडने वाली दबाव व प्रभाव के प्रति अपनी सजगता को बनाए रखिए। मानसिक रूप से सूर्य के प्रति सम्मान प्रकट कीजिए, जो सम्पूर्ण जीवन का स्त्रोत हैं। पूरे शरीर को ढीला छोड दीजिए । श्वास – सामान्य कीजिए ।

स्थिति 2ः– हस्त उत्तानासन – दोनो भुजाओं को सिर के ऊपर उठाते हुए तानिये, हथेलियां उपर की ओर खुली हुई हो। दोनो भुजाओं को कंधे की सीध में अलग अलग रखिए। पीठ को धनुषाकार बनाते हुए पूरे शरीर को तानिए। आराम से जितना सम्भव हो, सिर को पीछे की ओर झुकाइए ओर पीछे पीठ की उपरी भाग के झुकाव के प्रति सजग बन जाइये ।

श्वास – भुजाओं को उपर उठाते समय श्वास अंदर लीजिए ।

स्थिति 3ः– पादहस्तासन– गति शीलता बनाए रखते हुए नितम्बों से आगे की ओर झुकिए अपने हाथों को अपने हाथों को जमीन पर दोनों पैरों की बगल में रखिए और ललाट को घुटने से स्पर्श कराने का प्रयास कीजिए। अधिक जोर मत लगाइए। पैर सीधे रहने चाहिए। पीठ को सीधा रखने का प्रयास करना कीजिए। अपनी सजगता को श्रोणि प्रदेश पर एकाग्र कीजिए। जो कि पीठ एवं पैरों की मांसपेशियों का केन्द्र बिन्दु हैं।

श्वास– सामने की ओर झुकते हुए श्वास बाहर छोडिए। उदर को संतुलित करते हुए प्रयास कीजिए की अतिम स्थिति में फेफडे से अधिक से अधिक वायु बाहर निकले ।

सावधानियां – जिन व्यक्तियों की पीठ से सम्बन्धित समस्याएं हो आगे की ओर पूरा न झुके रीढ की हड्डी को सीधा रखते हुए केवल नितम्बों से 90 अंश तक झुके या बिना किसी तनाव के आराम से जितना झुक सकते है, उतना झुके।

स्थिति 4ः– अश्व संचालन – दोंनो हाथों को जमीन पर पैरों की बगल में रखिए, अब बाएं घुटने को मोडिए और दाएं पैर को जितना सम्भव हो पीछे ले जाइए। दायें पैर का पंजा व घुटना जमीन को स्पर्श करें। श्रोणि प्रदेश को आगे लाइए, कमर से रीढ को घनुषाकार बनाते हुयें उपर देखिए। हाथ की ऊंगलियों के अग्र भाग जमीन पर टिकें रहे। शरीर को इस स्थिति में संतुलित कीजिए। अपनी सजगता को भ्रूमध्य पर केन्द्रित कीजिए। खिचांव को अपनी जांघों के सामने पूरे शरीर से होते हुए उपर भ्रुमध्य तक अनुभव कीजिए।

श्वास – सीने को सामने उठाते ओर पैर को पीछे ले जाते हुये श्वास अंदर लीजिए।

स्थिति 5 पर्वतासन – हथेलियों को जमीन से सटा लीजिए।

बाये पैर को पीछे दायें पैर के पास ले जाईये। धीरे धीरे नितम्बो को उपर उठाइये और साथ साथ सिर को दोनो भुजाओं के बीच में ले आईये। इससे शरीर जमीन के साथ त्रिभुजाकार स्थिति में आ जायेगा। अंतिम स्थिति में पैर तथा भुजाये सीधी रहनी चाहिए। एड़ियों को जमीन से टिकाने का प्रयास कीजिए, किन्तु अधिक जोर मत लगाइयें। सिर को जितना हो सके आगे की ओर झुकाइये जिससे घुटनो को देखा जा सके। अपनी सजगता को गर्दन पर बनाये रखिये।

श्वास – बाये पैर को पीछे ले जाते समय श्वास छोड़िये।

स्थिति 6 – अष्ठांग नमस्कार –

घुटनो को नीचे लाते हुये जमीन से सटाइये, फिर नितम्बो को उपर रखते हुये सीने एंव ठुडढी को जमीन से सटाइये।

हाथ, ठुडढी, सीना, घुटने और पंजे जमीन का स्पर्श करते हुये रहे, मेसदण्ड को धनुषाकार स्थिति में लाइये अपनी सजगता को शरीर के मध्य में केन्द्रित कीजिए या पीठ की मांसपेशियों पर।

श्वास – इस स्थिति में श्वास को बाहर रोक कर रखिये। श्वास – प्रश्वास की क्रिया नही होगी।

स्थिति – 7 – भुजांगासन –

जांघो को भूमि पर टिकाते हुये भुजाओं के सहारे सीने को आगे ऊपर की ओर उठायें।

कुहनियों को सीधा करते हुये पीठ को धनुषाकार बनाये। सीने को सामने की ओर लाते हुये सिर को थोड़ा पीछे की ओर मोड़े, जिससे सॉप के समान आकृति बन जाये। पैर तथा पेट का निचला भाग जमीन पर रहेगा, भुजाओं से धड़ को सहारा दे। जब तक रीढ की हड्डी में बहुत लचीलापन न हो, तब तक भुआजों को थोड़ा मोड़ कर रखे। इस स्थिति में रीढ़ की हड्उी के निचले छोर पर पड़ने वाले तनाव पर अपनी सजगता को बनाये रखें। श्वास – धड़ को ऊपर उठाते तथा मेरूदण्ड को धनुषाकार बनाते समय श्वास अन्दर ले।

स्थिति – 8 – पर्वतासन

यह स्थिति 5 की पुनरावृत्रि है। भुजाओं और पैरो को सीधा रखिये। नितम्बो को उठाते हुये, पर्वतासन में आईये। सिर को दोनो भुजाओं के बीच में लाइये नितम्बो को ऊपर उठाइये और एड़ियों को जमीन पर टिकाइये।

श्वास – नितम्बो को उठाते समय श्वास बाहर छोड़िये।

स्थिति – 9 अश्व संचालन – बायें पैर को आगे लाकर दोनों हाथों के बीच में रखिये साथ ही दाये घुटने को जमीन से सटाइये और श्रेणी प्रदेश को आगे की ओर तानिये। मेरूदण्ड को धनुषाकार बनाते हुये ऊपर की ओर देखिए।

श्वास – इस स्थिति में आते हुए श्वास अंदर लीजिए।

स्थिति – 10 – पादहस्तासन – दायें पैर को बाये पैर की बगल में ले आइये। पैरो को सीधा करते हुये आगे की ओर झुकिये तथा नितम्बो को उठाते हुये सिर को घुटने के पास लाने का प्रयत्न कीजिए। हाथो को पैरो के पास जमीन से सटा कर रखिए।

श्वास – इस स्थिति में आते हुये श्वास बाहर छोड़िये।

स्थिति – 11 – हस्त उन्तानासन – शरीर को सीधा कीजिए हाथो को सिर के ऊपर से ले जाते हुये पीछे की ओर मोड़िये। शरीर के पिछले हिस्से को धनुषाकार बनाते हुये शरीर को तानिये।

श्वास – धड़ और हाथों को ऊपर उठाते समय श्वास अन्दर लीजिए।

स्थिति – 12 प्रणामासन – दोनो पैरो को एक साथ रखते हुये या थोड़ा अलग रखते हये सीधे खड़े हो जाइये और ऑखो को बन्द कर लीजिए।

दोनो हथेलियों को छाती के सामने नमस्कार की मुद्रा में जोड़िये। हथेलियों की इस मुद्रा तथा उससे छाती पर पड़ने वाले दबाव एवं प्रभाव के प्रति सजगता को बनाये रखिये। मानसिक रूप से सूर्य के प्रति सम्मान प्रकट कीजिए, जो सम्पूर्ण जीवन का स्त्रोत है। पूरे शरीर को ढीला छोड़ दीजिए।

श्वास – सामान्य श्वसन कीजिए। सूर्य नमस्कार के आसन के बाद श्वासन के विश्राम करना चाहिए। श्वासन पूर्ण शिथलीकरण की अवस्था है।

बारह सूर्य मंत्र

	आसन	मंत्र	सजगता
(1)	प्राणामासन	ऊँ मित्राय नमः	अनाहत चक्र
(2)	हस्तउत्तनासन	ऊँ श्वेय नमः	विशुद्ध चक्र
(3)	पादहस्तासन	ऊँ सूर्याय नमः	स्वादिष्ठान चक्र
(4)	अश्व संचालन	ऊँ भानवे नमः	आज्ञा चक्र
(5)	पर्वतासन	ऊँ खगाय नमः	विशुद्ध चक्र
(6)	अष्टान्ग नमस्कार	ऊँ पूण्णे नमः	मणिपुर चक्र
(7)	भुजन्गासन	ऊँ हिरण्यगर्भाय नमः	स्वादिष्ठान चक्र
(8)	पर्वतासन	ऊँ मरिचये नमः	विशुद्ध चक्र
(9)	अश्वसंचालन	ऊँ आदिव्याय नमः	आज्ञा चक्र
(10)	पाद हस्तासन	ऊँ सवित्रे नमः	स्वादिष्ठान चक्र
(11)	हस्तउत्तानासन	ऊँ अर्काय नमः	विशुद्ध चक्र
(12)	प्रणामासन	ऊँ भास्काराय नमः	अनाहत चक्र।

मानव कें स्थूल शरीर में सात प्रमुख अतीन्द्रिय केन्द्र है। जिन्हें योग की भाषा में चक्र कहा जाता हैं। स्थूल रूप में इसका प्रकटीकरण स्नायिक जाल को तथा अन्तःस्त्रावी ग्रथियों कें रूप में होता हैं। सूर्य नमस्कार के अभ्यास से सजगतास व एकाग्रबता के विकास हेतु इन चक्रो पर मन को केन्द्रित किया जाता हैं चक्रो पर मन को एकाग्र करने के परिणाम स्वरूप चक्रो की क्रिया शीलता में वृद्धि होंती हैं इससे स्थूल शरीर से सम्बन्धित अंग भी लाभान्वित होते है।

चिकित्सकीय सिद्धान्त – योग चिकित्सा में सूर्य नमस्कार एक अनुकूलनशीलता तथा शक्तिशाली अभ्यास हैं, कई रोगों में इससे लाभ पहुँचता हैं । सूर्य नमस्कार कई अवयवों में नवजीवन का संचार करता है। एवं वर्तमान जीवन पद्धति की मांगों तथा तनाव के बीच हमें किस प्रकार एक क्रियाशील जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करता हैं

अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा मानसिक स्वास्थ्य की पर्वापेक्षा है। और इस हेतु सूर्य नमस्कार रोग निरोधक का कार्य करता हैं।

विभिन्न रोगों में सूर्य नमस्कार से लाभ

मुहासा , फोडे फुन्सियां, रक्ताल्पता, कम भूख लगना, दुर्बलता, स्थूलता, कम विकास होना, गठिया, सिरदर्द, दमा तथा फेफडे की अन्य विकृतियां, पाचन संस्थान की व्याधियां यकृत की क्रियाशीलता मे कमी निम्न रक्तचाप, मिर्गी, मधुमेह त्वचा की बीमारियां सामान्य सर्दी जुकाम का बचाव अन्तःस्त्रावी ग्रथियों में असन्तुलन, मासिकधर्म तथा रोगनिवृत सम्बन्धी समस्यायें मानसिक व्याधियां आदि में सूर्य नमस्कार लाभकारी प्रभाव दिखलाता है।

संदर्भ सूची

(1) स्वामी सत्यानन्द सरस्वती : आसन, प्रणायाम, मुद्रा बन्ध (2006) , य्रेग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार ।

(2) स्वामी सत्यानन्द सरस्वती : सूर्यनमस्कार (2008) , योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार ।

(3) पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य : प्रज्ञायोग अभियान (2006), विचार क्रांती अभियान शांतिकुन्ज हरिद्वार, उत्तरांचल

(4) डॉ कामाख्या कुमार : योग चिकित्सा संदर्शिका (2008), गायत्री कुन्ज देवसंस्कृति विश्व विद्यालय शांतिकुन्ज हरिद्वार, उत्तरांचल

(5) स्वामी शिवानन्द सरस्व्ती : योगाभ्यास का मूलाधर (2001), दिव्य जीवन संघ, ट्रस्ट ऋषिकेश उत्तरांचल,

(6) स्वामी योगानन्द सरस्वती : बहिरंग योग (2002), योग निकेतन ट्रस्टमुनी की रेती ऋषिकेश उत्तरांचल,

(7) स्वामी रामदेव : योगसाधना रहस्य (2004), कृपालु बाग आश्रम कनखल हरिद्वार

20

साधकों की संजीवनी : पातन्जल योगदर्शन

संदीप ठाकरे

योगदर्शन साधको के लिए परम उपयोगी शास्त्र है। इसमें अन्य दर्शनों की भांति खण्डन मण्डन के लिए मुक्तिवाद का अवलम्बन न करके सरलतापूर्वक बहुत ही कम शब्दो में अपने सिद्धान्त का निरूपण किया गया है। योग सांख्य का ही क्रियात्मक रूप हैं। योग सारे साम्प्रदायों का और मत मातान्तरों के पक्षपात और वाद –विवाद से रहित सार्वभौम धर्म है जो तत्व का ज्ञान स्वयं अनुभव द्वारा प्राप्त करना सिखलाता है और साधको को उसके अंतिम ध्येय तक पहुचाता हैं।

महर्षि पतन्जलि ने योगसूत्र की रचना बौद्धिक विकास के लिए नहीं अपितु मानव चेतना के उन्नयन की व्यावहारिक प्रक्रिया समझाने, अधिक ज्ञान की प्राप्ति, मन की संभावनाओ के अन्वेषण और अन्ततः उसके पार जाने के उद्धेश्य से की हैं योगसूत्र मुख्यतः अभ्यासाभिमुख है। वे समाधी की मात्र बौद्धिक मीमांसा भर नहीं करते अपितु साधको को समाधि की अवस्था तक पहुंचाने के लिए एक व्यवस्थित साधना की विधि योंगसूत्र के माध्यम से प्रस्तुत करते है–

योगसूत्र केवल बौद्धिक स्तर पर ग्रहण करने के लिए नहीं लिखे गए अपितु इनके माध यम से जो साधक योंग साधना करते हैं उन्हे अपने मन की अतुल गहराई तथा प्राणो कों समझने में सहायता मिलती है। वे अनुभव के द्वारा इनके गुणार्थ को समझ लेते है। यह सूत्र साधक का मार्गदर्शन तथा साधना मार्ग में आगे बढने में उनकी सहायता भी करते हैं। जिस प्रकार लंबी यात्रा में नक्शे और पथ प्रदर्शक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, ठीक ऐसी ही भूमिका, स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा में ये सूत्र निभाते है। योगाभ्यास द्वारा पूर्ण मुक्ति का पथ इन सूत्रों द्वारा प्रशस्त तथा निर्देशित होता है। इस प्रकार यह योगदर्शन साधको के लिए संजीवनी का कार्य करता हैं।

महर्षि पतन्जलि द्वारा प्रणित योंगदर्शन में 195 सूत्र है। अंग्रेजी में इन्हें "Verses on yoga" कहते है। परन्तु वास्तव में योगसूत्र का अर्थ धागा (थ्रेड) होता हैं। इसका तात्पर्य यह हैं कि इन सूत्रो में विचारों की एक लगातार धारा निहित है। मानों विभिन्न विचारों की एक माला गूँथी गई है, जिसे स्वयं में पूर्ण दर्शन कहा जा सकता है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती मुक्ति के चार सोपान नामक पुस्तक में लिखते हैं– योगदर्शन का अर्थ योग के माध्यम से देखने की प्रक्रिया होती हैं। परन्तु देखने का अर्थ आखों से देंखना अथवा किसी अन्य हन्द्रिय के माध्यम से बाहय संसार को देखना नहीं होता। इसका तात्पर्य मन और इन्द्रियों के परे, बिना इनकी सहायता देखने से है। यह देखना कुछ इसी प्रकार होता हैं जैसे आंखे और अन्य इन्द्रियां बन्द हो तथा मन पूर्ण नियंत्रण में हो। अतः संक्षेप में यह कह सकतें हैं कि योंगदर्शन देखने की उच्च तथा सूक्ष्म प्रक्रिया है। यहां मन और इन्द्रियों की भूमिका शून्य होती है। यह आध्यात्मिक अंर्तदृष्टि के द्वारा अदृश्य को देखने की प्रक्रिया कहीं जा सकती हैं। "[1]

योगदर्शन योंग पर लिखित समस्त ग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ, सटीक एवं अत्यन्त वैज्ञानिक ग्रन्थ माना जाता हैं। यह निम्नलिखित चार अध्यायों में विभक्त है–

(1) **समाधी पाद**:– इसके अन्तर्गत 51 सूत्र आते हैं तथा इनमें निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला गया हैं – योग की परिभाषा, उद्धेश्य, वृत्ति, अभ्यास और वैराग्य, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि अनुभव के साधन, ईश्वर, ॐ, प्रगति की बाधाएं, मन के सर्वांगीण विकास की विधियां सजीव और निर्जीव समाधि।

(2) **साधन पाद** :– इसके अन्तर्गत 55 – सूत्र आते है, जिनका निम्न विषयों से संबंध है– क्लेंश (जीवन के मूलभूत तनाव) , क्लेश निवृत्ति, क्लेश नाश का उद्धेश्य, अष्टान्ग योग, यम– नियम की पूर्णता तथा उनके परिणाम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदी।

(3) **विभूति पाद** :– इसके अन्तर्गत 55– सूत्र आते हैं जो निम्न विषयों पर प्रकाश डालते है– धारणा (एकाग्रता) ध्यान, समाधि, संयम,(धारणा, ध्यान, समाधि) परिणाम (चेतना का रूपान्तरण), बाहष्य दृश्य जगत की प्रकृति, सिद्धियां।

(4) **कैवल्य पाद** :–इस अभ्यास में 34 सूत्र है– जो निम्न विषयों पर प्रकाश डालते है– सिद्धि प्राप्ति के साधन, व्यक्तिव विकास कारण, व्यष्टि और समष्टि, मन अन्यान्य वस्तुओं में निहित एकता, दर्शन का सिद्धान्त, मन एक अचेतन उपकरण के रूप में, कैवल्य मार्ग और कैवल्य।

योगदर्शन के सभी सुत्र व्यवस्थित क्रम में है। प्रत्येंक का स्थान किसी विशेंष उद्धेश्य की पूर्ति करता हैं। महर्षि पतंजलि एक सूत्र में दूसरे पर तथा एक अध्याय से दूसरे अध्याय मे अत्यन्त निर्दोष तार्किकता के साथ बढते है। उनका प्रत्येंक शब्द अर्थपूर्ण और प्रसंगानुकूल होता है।

योगदर्शन पर अनेंक भाष्य, वृत्तियां और टीकाएं रची गयी हैं। उनमें सबसे अधिक प्रामाणिक, प्रसिद्ध और प्राचीन व्यास भाष्य स्वयं ही बहुत ही गूणार्थ है। उसके अर्थ को समझाने के लिए वाचस्पति मिश्र ने तत्ववैशारदि' और विज्ञानभिक्षु ने 'योगवार्तिक' की रचना की है। विज्ञानभिक्षु नें एक अलग पुस्तक योगसार में योग के सिद्धान्तों का सारांश उपस्थित किया है। वृत्तियों में '' राजमार्तण्ड'' जिसका प्रसिद्ध नाम '' भोजवृत्ति'' है। अत्यन्त लोकप्रिय और प्रामाणिक है। पतन्जलि ने चित्त की वृतियों का निरोध (सर्वथा रूक जाना),को योग माना हैं।[2] आत्म सक्षात्कार की उपलब्धि केवल तभी सम्भव होती हैं जब चित्त की वृत्तियों के व्यापार पूरी तरह रूक जाती है। तब दृष्टा अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।[3] योग का वास्तविक उद्धेश्य कैवल्य ही हैं जिसे आत्म साक्षात्कार कहा जाता हैं। इस अवस्था तक वहीं भाग्यवान साधक पहुंच पाते हैं जिन्होने साधना तथा शुद्ध आहार– विहार द्वारा अपने मन को पूरी तरह से शुद्ध कर लिया हो, अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया हो तथा स्वयं को वासनाशून्य बना लिया हो।[4] पतन्जलि ने चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध करनें के लिए ' अभ्यास' और वैराग्य ये दो उपाय दिए हैं। चित्त वृत्तियों का प्रवाह परम्परागत संस्कारों के बल से सांसारिक भोगों की ओर चलता हैं उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याण मार्ग पर ले जाने का उपाय अभ्यास है।[5] अभ्यास करने में भी पतन्जलि ने तीन शर्तो को आवश्यक माना है प्रथमतः अभ्यास पूरी निष्ठा के साथ किया जायें। द्वितीय उसमें निरन्तरता हो और तृतीय उसे दीर्घ काल तक करते रहना चाहिए।[6] जब साधक उपर्युक्त तीनों शर्त पूरी करता हैं तो उसका अभ्यास भली भांति न केवल दृढ होता हैं, अपितु वह उसके स्वभाव का अंग बन जाता है। महर्षि पतन्जलि कहते हैं कि यदि श्रद्धा, विश्वास और लगन पूर्वक दीर्घकाल तक अभ्यास किया जाए तो चित्त की पांचों वृत्तियों का निरोध हो सकतां हैं। आत्मा को जानने के लिए साधक को सर्वोच्च यथार्थ की चेतना ो विकसित करना होता हैं, जो मन और बुद्धि की पहुंच से परे होती है। इस चेतना की जागृति आध्यात्मिक प्रकाश की उपलब्धि द्वारा संभव होती है। जैसे जैसे साधक का मन और बुद्धि पर से मल, विक्षेप औंर आवरण हटते हैं, वैसे वैसे आध्यात्मिक आलोंक की उपलब्द्धि निकट आती हैं साधक को योंग के विभिन्न अंगों का धीरे धीरे अभ्यास करते रहना चाहिए, इससे शरीर और आध्यात्मिक प्रकाश की झलक मिलना आरम्भ होती हैं। बहुधा लोंगों में यह धारणा पाई जाती हैं कि ध्यान नही योग नहीं है। परन्तु बात ऐसी नही हैं। ध्यान से भी अनेक बाते जुडी है। ध्यान में सफलता के पूर्व अनुशासन तथा मन की शुद्धि आवश्यक होती हैं। महर्षि पतन्जलि ने चित्तशुद्धि के हेतु आठ अंगों का प्रतिपादन किया, जिसे अष्टांगयोग के नाम से जाना जाता हैं। अष्टान्गयोग के आठ अंग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि है।''[7] इनमें से प्रथम पांच अंग– यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार को योग के बहिरंगअंग तथा धारणा, ध्यान और समाधि को योग के अन्तरंग अंगों के रूप में जाना जाता है इनमें से प्रथम पांच अंग चेतना का निरोध करते हैं जबकि अंतिम तीन उनका प्रसार करते हैं हर अगले सोपान की केवल तभी सफलतापूर्वक की जा सकती हैजबकि साधक उससे पूर्व

वर्णित सोपानों में दी गयी साधना को सफलतापूर्वक पूरा कर ले। प्रत्याहार तक की साधना द्वारा बाहरी व्यवधानों को दूर किया जा सकता हैं। धारणा से आरम्भ होने वाली साधना द्वारा साधक को व्यथित करने वाले विचार तथा मनोदर्श्ज्ञन आदी तिरोहित होते हैं, जिनके फलस्वरूप मन एकदम शांत हो जाता हैं। इडा और पिंगला नाडी के बीच स्वस्थ संतुलन स्थापित होकर सुषुम्नानाडी कार्यशील हो जाती है। अष्टांगयोग के ये कोशो में स्थिरता और व्यवस्था लाते है। साधना का अंतिम उद्धेंश्य इन कोशों (अवयव कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश) की सीमाओं का अतिक्रमण करना हैं। इस प्रकार साधक की चेतना का रूपान्तरण स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता हुआ समाधि की अवस्था की ओर अग्रसर होता हैं। अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता हैं कि पातन्जल योगदर्शन साधकों के लिए संजीवनी के रूप में कार्य करता हैं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

(1) स्वामी सत्यानन्द सरस्वती :मुक्ति के चार सोपान (1994), योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, पृ0– 3
(2) योगदर्शन – 1/2
(3) योगदर्शन – 1/3
(4) स्वामी सत्यानन्द सरस्वती : मुक्ति के चार सोपान (1994), योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, पृ0– 30
(5) योगदर्शन – 2/12
(6) योगदर्शन – 2/14
(7) योगदर्शन – 2/29

21

योग में मन का विश्लेषण

डॉ. श्याम सुन्दर पाल

योग, विषेशकर पालंजल योग मन की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन तथा विष्लेशण करता है। मन के लिए योग में 'चित' शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋशि पतंजलि ने योग का प्रमुख उद्देश्य चित्त की वृत्तियों का विरोध करना बतलाया है। उनके अनुसार ''योगश्चित्तवृतिनिरोधः'' (योग सूत्र, प्रथम पात्, सूत्र सं.– 2)। पतंजलि ने चित्त की वृत्तियों के पॉच स्रोत बतलाए है वे है– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति। ये पॉचों ही व्यक्ति के अनुभव तथा व्यवहार के ज्ञानात्मक; Cognitive) आधार है। यह अवधारणा मनोविज्ञान की आधुनिक ज्ञानात्मक दृष्टिकोण (Cognitive) approach) से मिलता–जुलता है। अर्थ यह कि हमारे सभी अनुभव तथा व्यवहार हमारे संज्ञान (cognition) पर निर्भर करते है। जैसे किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में हम जैसा प्रत्यक्षण करते है, जैसे चित्र अपने मन में रखते है उसके अनुरूप उसके प्रति भाव तथा व्यवहार व्यक्त करते है जब किसी व्यक्ति को भला या मित्र समझते है तो उसके प्रति प्रेम और आकर्षण के भाव व्यवहार अभिव्यक्त करते है, किन्तु यदि उसे बुरा या दुष्ट समझते है तो उसके प्रति घृणा तथा उपेक्षा के भाव व्यक्त करते है। योग के अनुसार चित्त की वष्त्तियाँ दो प्रकार की होती है–(क) नकारात्मक तथा (ख) सकारात्मक तथा सुखद। योग साहित्य में ऐसी साधनाएँ तथा विधियाँ बतलाई गई है जिनके अभ्यास से मन की क्लिष्ट वृत्तियों को सकारात्मक तथा अक्लिष्ट रूप में परिमार्जित कर व्यक्ति के जीवन को आनन्ददायक बनाया जा सकता है।

अंतःकरण

योग का आधार सांख्य दर्शन है। इसमें मन का प्रयोग अंतःकरण के रूप में हुआ है। सांख्य तथा भगवद्गीता में मन को भी एक इन्द्रिय माना गया है। दस बाह्म इन्द्रियाँ है, इस में से पॉच ज्ञानेन्द्रिय है तथा पॉच कर्मेन्द्रिय। ज्ञानेन्द्रियों में ऑख, कान, नाक, जीभ एवं त्वचा का बोध होता है। उसी तरह कर्मेन्द्रियों में हाथ, पैर, मुह, गुदा तथा उनस्थ को गिना जाता

है। अंतःकरण या मन में मुख्य तीन अंग माने गये है ये है – (1) मानस मन (2) बुद्धि तथा (3) अहंकार। वेदान्त में चित्त को अंतःकरण का स्वामी माना गया है तथा योग पूरे मन को चित्त की संज्ञा देता है। यहाँ इसके दार्शनिक विश्लेषण में न पड़ हम इन चारों का संक्षेप में वर्णन करेगें।

1. **मानस** – अंतःकरण का वह अंश जो बाह्य जगत् के उद्दीपन तथा सूक्ष्म सजगता के बीच संबंध जोड़ता है उसे 'मानस' कहते है। जब किसी ज्ञानेन्द्रिय के माध्यम से हमें बाहय उद्दीपन की जानकारी मिलती है तो मानस उसे अंतःकरण के केन्द्र तक पहुंचाता है। वहाँ उस उद्दीपन का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् चित्त के द्वारा जो निर्णय किया जाता है उसे मानस कर्मेन्द्रियों में पहुँचाता है। तदनुसार व्यक्ति व्यवहार करता है। इस प्रकार मानस अंतःकरण का सूचना–वाहक है जो ज्ञानेन्द्रिय अंतःकरण एवं कर्मन्द्रिय के बीच सूचनाएँ पहुँचाता है।
2. **बुद्धि** – मन द्वारा प्राप्त सूचना को समझदारी से ग्रहण तथा विष्लेशण करने का कार्य बुद्धि का है। इसकी प्रकृति विश्लेशणात्मक, समालोचनात्मक तथा तुलनात्मक होती है। यह अंतःकरण का तार्किक अंश है जो प्राप्त सूचना को जांचने तथा परखने का कार्य करता हे। बुद्धि व्यक्तित्व के विकास में सहायक है। यह मानसिक क्षमता का द्योतक है। कला, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र में उपलब्धि विशेष का प्रमुख कारण बुद्धि ही है।
3. **अहंकार** – अहंकार व्यक्ति में उसके अहम् की भावना भरता है। अहंकार ही हमें अपनी अस्मिता, वजूद, स्वाभिमान आदि के प्रति सजग बनता है। इसलिए मानस से जो भी सूचना बुद्धि को प्राप्त होती है, बुद्धि उसका विष्लेशण करने में अहंकार की सहायता लेती है। अहंकार त्रिगुणात्मक होता है योग के अनुसार व्यक्ति में सत्व, रजस एवं त स ये तीन प्रधान गुण माने गए है। इसके अनुसार अहंकार भी तमोगुणी, रजोगुणी या सतोगुणी होता है। जिस व्यक्ति में सतोगुणी अहंकार की प्रधानता रहती है, वह विवेकी, संतोषी दूसरों के प्रति उदार एवं मानवीय भावनाओं का स्वामी होता है । जिस व्यक्ति में रजोगुणी अहंकार की प्रधानता होती है वह सांसारिक उपलब्धियों, हानि–लाभ आदि के प्रति सक्रिय रहता है। इनमें भिन्न तमोगुणी अहंकार की प्रधानता होने पर व्यक्ति आलसी, प्रसादी, अहंकारी तथा विवके की कमी वाला होता है। स्पश्टतः किसी व्यक्ति के अहंकार में जिस गुण की प्रधानता होती है उसके अनुरूप ही वह बुद्धि को सलाह या मार्गदर्षन प्रदान करता है और बुद्धि उसी दिषा में प्राप्त सूचना का विश्लेषण करती है।
4. **चित्त** – जैसा प्रारंभ में ही बतलाया गया चित्त को अंतःकरण का स्वामी कहा गया है, अतः इसे ही मन की संज्ञा दी गई है। अहंकार के दिशा निर्देश से बुद्धि प्राप्त सूचना का जब विश्लेषण कर लेती है तो चित्त उसके सम्बन्ध में निर्णय करता है, वही निर्णय अंतःकरण का निर्णय होता है जिसे मनस के माध्यम से कर्मेन्द्रियों तक पहुँचाया जाता है। तद्नुसार व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएँ होती है।

अंतःकरण के पूरे कार्य को एक उदाहण से समझा जा सकता है। मान लें कि 12 बजे रात्रि में कोई व्यक्ति आपके घर का दरवाजा खटखटाता है। 'मानस' कान के माध्यम से प्राप्त इस सूचना की जानकारी अंतःकरण के केन्द्र को देता है। 'अहंकार' के मार्गदर्शन में 'बुद्धि' सूचना का विश्लेशण करेगी। आप यदि सतोगुणी स्वभाव के है तो 'अहंकार' यह निर्देश देगा कि संभवतः कोई व्यक्ति किसी बहुत जरूरत की स्थिति में मदद लेने आता है। यदि 'अहंकार' रजोगुणी स्वभाव का है तो वह बुद्धि को यह परामर्श देता है कि इतनी रात गये दरवाजा खोलने में क्या हानि तथा क्या लाभ है इस पर सोच लो। इससे भिन्न यदि 'अहंकार' की प्रकृति तमोगुणी है तो आप आलस्य में सोये रहना पसन्द करेगें और बुद्धि को यह दिशा निर्देष प्राप्त होगा कि आवाज पर ध्यान देने की कोई जरूरत नहीं है। अर्थ यह कि आप के 'अहंकार' में जिस गुण की प्रधानता है उसके अनुरूप 'बुद्धि' को परामर्ष प्राप्त होगा और तद्नंसार 'बुद्धि' प्राप्त सुचना का विश्लेषण करेगी। विश्लेषण के आधार पर 'चित्त' निर्णय लेगा। यदि यह निर्णय आगन्तुक को पहचानने अथवा पहचानकर किवाड़ खोलने का है तो 'मानस' तद्नुसार उस सूचना को कर्मेन्द्रियों में भेजेगा और आप उसके अनुसार कार्य करेगें। ये सारे कार्य बहुत समन्वित ढंग से तत्काल होते है और हमें अन्तःकरण के इन चारों अंगो के अलग–अलग कार्यो को समझ पाना कठिन होता है।

मनुष्य का मन ही उसे जीवन में सफल या असफल बनाता है, सुख या दुख का अनुभव देता है। अतः प्राचीनकाल से वर्तमान तक मन को समझने तथा इसे नियंत्रित करने के प्रयास होते आए है। योग तथा मनोविज्ञान का मुख्य अध्ययन विषय चेतना तथा मन है। इसी से इस इकाई में मानव मन के स्वरूप, कार्य तथा विभाजन पर चर्चा की गई है। मनोविज्ञान में मन के तीन स्तर माने गए है – चेतन मन, अर्द्धचेतन मन तथा अचेतन मन। इसके साथ ही मन की तीन शक्तियों (Forces) की चर्चा की गई है – इद (Id) या अहम् (Ego) या आत्मशक्ति तथा आदर्श अहं (Super ego) या नैतिक शक्ति। इन शक्तियों की पारस्परिक ताकत तथा संघर्ष पर व्यक्ति का सामाजिक व्यक्तित्व तथा समायोजन निर्भर करता है।

योग में पूरे मन को अंतःकरण के रूप में जाना जाता है अंतःकरण के चार अंग है – मानस, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त। मनस बाह्य वस्तुओं की सचन प्रदान करता है तथा चित्त मन का स्वर्ण है पर चित्त का निर्णय अहंकार के परामर्श एवं बुद्धि के विश्लेषण पर निर्भर करता है। योग का प्रमुख उद्देश्य चित्तवृत्तियों का नियंत्रण है। चित्तवृत्तियाँ मन को क्लेश देती है तथा अशान्त बनाती है। योग में इन्हें नियंत्रित करने की विधियां बतलाई गई है। वषत्तियों को नियंत्रण में कर लेने पर व्यक्ति अपने मन का विवेकशील स्वामी बन जाता है वह क्लेशों से मुक्त होकर शान्त तथ आनन्द के साथ जीवन जीता है।

परिस्थिति–जन्य निर्भरता तथा सुख–दुख से मुक्त होकर अनासक्त तथा समभाव के साथ आनन्दपूर्वक जीता है। चेतना के संबंध में यही यौगिक या भारतीय दृष्टिकोण है। पश्चिमी दृष्टिकोण का असम्बंध परिस्थिति, व्यक्ति तथा वस्तु जन्य बाह्म चेतना से है। यों अब आधुनिक मनोविाान तथा अनेक पश्चिमी वैज्ञानिक भी आत्म चेतना तथा ध्यान साधना के महत्व को स्वीकार करने लगे है।

संदर्भ ग्रंथ

1. स्वामी निरंजनानन्द स्रस्वती योग दर्शन बिहार योग विद्यालय, मुंगेर।
2. इन्द्रभूशण प्रारम्भिक मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।
3. जायसवाल, सीताराम समायोजन मनोविज्ञान, उत्तरप्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनउ
4. जीत भाई योगेन्द्र सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1995
5. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती मुक्ति के चार सोपान, विहार योग विद्यालय, मुंगेर, 1994
6. अग्रवाल लीला सरोजिनी सहज ज्ञान प्रदीप, निर्मल ट्रांसफार्मेशन प्रा. लि. पौड रोड़ कोथरूड़ पुणे महाराष्ट्र प्रथम संस्करण 2010
7. अरूण कुमार सिंह : उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान' मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन, पटना 2000
8. अग्रवाल बी.बी. : आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2000
9. पातंजल योग प्रदीप गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
10. योगांक गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
11. शिवसंहिता कैवल्यधाम श्रीमत्याधव योग मंदिर समिति लोनावला पुणे (महाराष्ट्र)
12. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग प्रकाशन ट्रस्ट मुगेंर, बिहार, 2006
13. मिश्र नंदलालमानव चेतना बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा, 2004
14. गोस्वामी हर्शवर्धन,, प्राणायाम, सत्यम पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011
15. भारद्वाज ईश्वर मानव चेतना, सत्यम प्रकाशन दिल्ली, 2011,
16. नागेन्द्र एच.आर. प्राणायाम, स्वामी विवेकांनंद योग प्रकाशन बैगलौंर, 2015
17. स्वाामी विवेकानंद, राजयोग, पी.एम. प्रकाशन दिल्ली, 2014
18. शांति प्रकाश आत्रेययोग मनोविज्ञान श्री ताराप्रकाशन वाराणसी,1965,

22

महान साधकों की आधार भूमि – एक ज्योतिश अध्ययन

डॉ0 नीलम श्रीवास्तव

ज्योतिष को आधुनिक तर्कशास्त्री अवैज्ञानिक विधि मानते हैं परन्तु उनका आधार सुस्पष्ट नहीं। प्राप्त प्रत्ययों को आधार बनाकर आगामी दषा का संज्ञान कर लेना ही वैज्ञानिक विधि है। ज्योतिष भी इसी आधार पर स्थापित है। यद्यपि प्रत्यय अतिदूर स्थित है और उनके प्रभावों का आंकलन सहज नहीं, और न उन पर हम नियंत्रण कर सकते हैं। भूगर्भ शास्त्र, मौसम विज्ञान एवं भूकम्प आंकलन में भी नियंत्रणहीन दशा पाते हैं। यदि उन्हें विज्ञान स्वीकृत कर लिया गया है तो ज्योतिष विज्ञान को क्यों नहीं ? ग्रहों का सतत भ्रमण एक तथ्य है उनके प्रभाव पृथ्वी, मौसम समुद्रीय ज्वार भाटा एवं मैगनेटिक फील्ड फोर्स पर परिलक्षित है। जान नेलसन ने अध्ययन द्वारा पाया कि जब भी शुक्र, मंगल, गुरू और पृथ्वी सूर्य के समानान्तरण एक सीधी में हो जाते हैं तो रेडियो तरंगे इतना अधिक प्रभावी हो जाती है कि संप्रेषण करना कठिन हो जाता है। जबये ग्रह सूर्य से 90^0 पर हो तो रेडियो सम्प्रेशण उत्तमोत्तम होता है। एक अन्य अमेरिकन खगोल वैज्ञानिक पाल जोश ने पाया कि सूर्य पर जब मैगनेटिक तूफान तीब्रतम होते हैं तो वायुयान का नैबोगेषन सिस्टम बिगड़ जाता है। रेडियो व टी0 वी0 के सम्प्रेषण क्षमता में त्रुटियां आ जाती है। दो अन्य वैज्ञानिकों जे0 बी0 ब्लिजर्ड और एच0 पी0 स्लीपर नोससा में कार्यरत है, उन्होंने पाया कि जब दोया कई ग्रह एक ही सीध में आ जाते हैं या ठीक सामने दूसरी दिशा में होते हैं तो सूर्य के मैगनेटिक स्टार्म बहुत बढ़ जाते हैं जिसे वृद्धिगत 'सन स्पोट्स' माना जाता है। जिसमें पृथ्वी पर के सारे इलेक्ट्रो मैगनेटिक सम्प्रेषण शिथिल अथवा अव्यवस्थित हो जाते हैं। मानव मन भी अधिक उद्वेलित एवं विचलित हो जाता है। कई अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ कि पूर्णचन्द्र की दशा में पागलपन के दौरे अधिक होते हैं। अंग्रेजों का पागलपन के लिये प्रयुक्त शब्द व्यनेसी स्वतः पूर्ण चन्द्र के दूषित प्रभाव (तीब्रतम भावोद्वेग) को स्पष्ट करता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा0

कार्ल युंग जब मनोरोग निरूपण में अति कठिनाई पाते थे तो वे मनोरोगी के 'वर्थ चार्ट' (जन्मकालिक ग्रह स्थिति) का अध्ययन कर सही निर्णय प्राप्त कर पाते थे। कार्ल युंग द्वारा प्रतिपादित 'थ्योरी आफ सैन्क्रोनासिटी' उन्हीं तथ्यों पर आधारित है। जिसमें ग्रहों के सम्मिलन, संयोजन व विरोधी दषा आदि का मानव मन पर प्रभाव दर्षाया गया है। भारतीय मनीशियों ने सैकड़ों वर्ष पूर्व इन प्रभावों का मानवमन और चरित्र पर होने वाला आंकलन ज्ञात किया और ज्योतिष विज्ञान को जन्म दिया। राजनेता, व्यापारी, दार्षनिक, सैन्य अधिकारी, सन्त महात्मा, डकैत और हत्यारों का ग्रह संयोजन रचना विशिष्ट प्रकार की होती है। कुछ ग्रह प्रभाव ऐसे आ जाते हैं जो व्यक्ति की मनस्थिति, हारमोनल बैलेन्स, चित्र प्रवृत्ति और मोटिवेशन्स को प्रभावित कर उसके स्वरूप को बदल देते हैं। ज्योतिश इन्हीं ग्रह प्रभावों का आंकलन कर मानव दशा परिलक्षित करता है।

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा कि ''अनेक जन्म संसिदिः स्ततोयात परम गतिः'' (16/45) अर्थात् अनेक जन्मों की सतत साधना के पश्चात ही पूर्णयोगी या पूर्ण साधक परम शक्ति के साथ योगमय हो पाता है। वही योग की अन्तिम दशा है। श्रीमद् भगवदगीता के अध्याय–6 में ष्लोक–40 से 45तक इस क्रम की स्पष्ट व्याख्या की गयी है। जहां स्पष्ट किया गया है कि यदि एक जन्म में योग क्रिया की कमी रह जाती है तो परम शक्ति उसे ऐसे परिवार में जन्म देती है जहां पर उसकी प्रगति हो सके। गीता का 6/41वां श्लोक कहता है ''शुचीनां श्रीमताम गेंह योग भ्रष्टो अभिजायते'। यदि आधुनिक विज्ञान के मतानुसार मान लिया जाये कि पूर्व जन्म और आगामी मानव जन्म संभव नहीं तब भी बेसिक जीन स्ट्रक्चर (Basic genestructure) और जीन इफेक्ट (gene effect) मानना ही पड़ेगा जो कि व्यक्ति को माता–पिता और पूर्वजों से प्राप्त होता है। उस रूप में एक जन्म का योग अभ्यासी अगले जन्म में सहकारी 'जीन इफेक्ट' (gene effect) प्राप्त कर पाता है। इसी आधार पर व्यक्ति की मूल 'जीन' रचना को जन्म समय के कास्मिक स्ट्रक्चर द्वारा समझा जा सकता है। आज का विज्ञान भी मानने लगा है कि व्यक्ति और समष्टिगत सभी प्राकृतिक तत्व एक पूर्णत्ववादी सिद्धान्त के अनुसार एक दूसरे से अलग नहीं है। ज्योतिष शास्त्र का आधार इसी नियम के अन्तर्गत है जो प्रकट करता है कि ग्रह और नक्षत्र व्यक्ति की मनो–दैहिक रचना को प्रभावित करते हैं और उनकी संरचना के द्वारा व्यक्ति की जीवन क्रम बहुत हद तक जाना जा सकता है। इस दृष्टि से योगियों के जन्मकाल की ग्रह संरचना के आधार पर उनकी योग में सफलता और निष्णातता जानी जा सकती है।

वेदों को ज्योतिष विज्ञान को ज्ञान–संज्ञान का नेत्र कहा गया है। वेद के छः उप अंग बताये गये हैं उनमें से तीन अंग शब्द और अर्थ तत्व से जुड़े हैं ये हैं – व्याकरण, छन्द शास्त्र और निरूक्त ('शब्द' की रचना व व्याख्या) अन्य तीन अंग सम्पूर्ण ज्ञान तत्व का आधार बनते हैं। ये हैं – शिक्षा, कल्प और ज्योर्तिविज्ञान। शिक्षा उपवर्ग के अन्तर्गत भौतिक संसार का आधारभूत ज्ञान आता है जिसमें कला, विज्ञान, तकनीकी ज्ञान व वाणिज्य आदि सभी सभाये हैं। 'कल्प' के अन्तर्गत सारी सृष्टि की रचना का विज्ञान अर्थात् कास्मोलोजी (Cosmology)

आता है और ज्योर्तिविज्ञान के अन्तर्गत भूतकाल या दशा ज्ञान और भविष्य की क्या रचना है इसका विवेचन किया जाता है। अनेक वैज्ञानिक जैसे कार्ल युंग और हाइजेनवर्ग और सी0 वी0 रमन आदि ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता को स्वीकार कर चुके हैं।

हम यह मानकर चलते हैं कि सिद्ध योगी में महान साधकों के गुण आ जाते हैं, उसी प्रकार महान साधक भी बिना प्रयास योग की परामनोशक्तियां प्राप्त कर लेते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में 30 अति मान्य योगी अथवा महान साधकों के जन्मकालिक ग्रह संरचना (जन्म चक्र) का विष्लेषण किया गया है और समझने का प्रयास किया गया है कि कैसी ग्रह संरचना के कारण उनके जीन्स (genes) में योग अथवा प्रबल साधना के तत्व उत्पन्न हुये और उनका उन महान व्यक्तियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा। यहां यह स्पष्ट करना देना अति आवश्यक है कि आसन और सहज योग के पूर्वाभ्यास स्तर तक सीमित है। आसनाचार्य न तो योग की अनेक क्षमतायें प्राप्त कर सकता है और न उसे सिद्ध योगी माना जा सकता है क्योंकि उसकी सारी क्रियायें देह भाव तक सीमित रह जाती है जबकि योग देह भाव का त्याग कर चेतन तत्व के विकास की क्रिया है। भक्ति योग, राजयोग, ज्ञान योग, क्रिया योग, मंत्र योग, जप योग और कर्म योग आदि में आसानाभ्यास की कोई आवश्यकता नहीं होती है एवं ये सभी मार्ग योग की उच्चतम दशा को पहुंचा देते हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस, चैतन्य महाप्रभु, गुरूनानक, रमण महर्षि आदि आसनाभ्यासी नहीं थे न उनको इसकी आवश्यकता थी परन्तु वे सभी योग की उच्चतम दशा को पहुंच चुके थे। पश्चिमी देशों में आसनाभ्यास को ही योग आना जाने लगा है जो कि अतिभ्रान्त धारणा है। आश्चर्य है कि कुछ भारतीय राजनेता और विज्ञ जन भी योग को आसनाभ्यास तक सीमित मानकर आसनाभ्यास के बड़े सामूहिक प्रदर्शनो को 'योग' सिद्ध कर गिनीज बुक आफ रिकार्डस की मान्यता पाने की होड़ में लगे हैं। योग के अन्य ग्रंथों के अनुसार योग एकान्तिक और व्यक्तिगत गहन साधना है सामूहिक प्रदर्शन का अंग नहीं।

प्रस्तुत अध्ययन में उन्हीं महान साधकों को लिया गया है जो कि योग के उत्तम स्तर या उसके निकट पहुंच चुके थे। जिनमें गौतम बुद्ध, गुरूनानक, रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, चैतन्य महाप्रभु, नरसिंह भारती, योगानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द, योगी अरविन्द, मदर थरेसा, दलाई लामा, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी मुक्तानंद, श्री रामशर्मा, (गायत्री पीठ), आनन्दमयी मां, मा अमृतानन्द, मां पांडिचेरी आदि शामिल है।

ज्योतिष ग्रन्थों में धार्मिकता और आध्यात्मिकता स्तर ज्ञात करने हेतु धर्म त्रिकोण और मोक्ष त्रिकोण का आंकलन किया जाता है जो कि मानव चार पुरूषार्थों से संबंधित है। माना गया है कि अर्थ धर्म काम और मोक्ष ये चार ही जीवन के लक्ष्य हैं इनमें से दो अर्थ औरकाम सांसारिक उत्कर्ष से जुड़े हैं जबकि अन्य दो धर्म व मोक्ष परमार्थिक व आध्यात्मिक जीवन के उत्कर्श से जुड़ते हैं। ज्योतिश में नवम गृह धर्म व अअध्यात्मिक प्रगति दिखाता है। नवम से नवम स्थान प्रज्ञा अथवा चैतन्य की जागृत दशा है जो उच्च साधकों को ही प्राप्त हो पाती है। पंचम से नवम स्थान (लग्न) उसका सांसारिक स्वरूप प्रकट करता है। इस प्रकार गृह

1, 5, 9 धर्म त्रिकोण स्पष्ट करते हें। मोक्ष त्रिकोण का ज्ञान जन्म चक्र के 4, 8, 12 गृहों के द्वारा ज्ञात होता है। इनमें से बारहवां स्थान मोक्षकारक या विरहिकारक है जो

सांसारिक हानि प्रदर्शित करता है। संसार क्रम से दूर हटकर ही आध्यात्म का मार्ग है। इन्हीं गृहों पर प्लैनेट्स के प्रभाव के कारण योग प्रगति व आध्यात्मिक उत्कर्श होता है। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी योगानन्द, आनन्दमयी मां, मां अमृतानन्द, मदर थरेसा चैतन्य महाप्रभु, दलाई लामा, मुक्तानन्द के नवम स्थान प्रबल है और उन पर शनि, राहु, गुरू, केतु आदि ग्रहों का प्रभाव है। गुरूनानक, रामकृष्ण, विवेकानन्द, विशुद्धानन्द मां आनन्दमयी कबीर पाप अमृतानन्द मां, मदर थरेसा, मुनि शान्ति विजय, आचार्य रजनीश चैतन्य, रमण महर्शि, मुक्तानन्द और दलाई लामा में पचम स्थान में एक या कई विरक्ति या ज्ञान कारक ग्रह मिले जो उनकी प्रज्ञा शक्ति के उत्कर्ष के द्योतक हैं। इसी प्रकार रामकृष्ण परमहंस, पोप ग्रेगरी ग्प्ए योगी अरविन्द मां अमृतानन्द में प्रथम स्थान में षनि, गुरू, केतु, राहु व मंगल का प्रबल प्रभाव देखा गया।

मोक्ष कारक स्थान बारहवां गृह माना गया है, वैराग्यकारक शनि केतु राहु, गुरूउत्पन्न करते हैं। मोक्ष त्रिकोण का अष्टम स्थान जीवनी शक्ति (Vital force) प्रदान करता है। बारहवें स्थान से जुड़कर सारी जीवनी शक्ति अध्यात्म की ओर मुड़ जाती है। जब अष्टम और बारहवें स्थान का गृह परिवर्तन होता है तो विरक्ति भाव प्रारंभिक जीवन से ही आरंभ हो जाता है अथवा परिस्थितियां ऐसी बनती जाती है जिनसे सांसारिक सुख से मन उचटता जाता है।

द्वादश स्थान में स्थित केतु अथवा नेपचून मोक्षदायक कहे गये हैं परन्तु उनका प्रभाव गुरू और शनि की स्थिति और उनकी दृष्टि के संदर्भ में है, समझ जाना चाहिये। पंचम स्थान का नेपचून व केतु परामनोशक्तियों का दायक माना गया है। प्रसिद्ध हस्तरेखा विशारद वीरों के पंचम स्थान में नेपचून था। प्रसिद्ध योगी स्वामी विशुद्धानन्द (पं0 गोपीनाथ कविराज के गुरू) के पंचम स्थान में केतु है। उसी प्रकार योगी अरविन्द, आचार्य रजनीश, मां पांडिचेरी, आचार्य श्रीराम शर्मा व बोहरा गुरू सैफुद्दीन के पंचम स्थान में नेपचून या केतु है जो उनकी प्रबल प्रज्ञा शक्ति का द्योतक है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि गुरू, शनि, केतु, नेपचून विरागमय जीवन और आध्यात्मिक उत्कर्ष के द्योतक है। जब भी इनकी स्थिति, दृष्टि या प्रभाव द्वादश स्थान अष्टम स्थान (मोक्ष त्रिकोण) अथवा नवम और पंचम स्थान (धर्म त्रिकोण) से जुड़ जाता है तो तीब्र गति से आध्यात्मिक प्रगति हो पाती है। दशम स्थान कर्म भाव अथवा जीवन क्रम का सक्रिय व्यवहारिक पक्ष होता है। दषम स्थान में भी शनि, केतु, राहु, गुरू नेपचून की त्रुटि या प्रभाव से ऐसे लक्षण पाये गये हैं। महात्मा गौतम बुद्ध स्वामी विशुद्धानन्द, गुरूनानक, विवेकानन्द, जगतगुरू कांची, संत विनोवा भावे, मुनि शान्ति विजय आचार्य श्रीराम शर्मा और बोहरा गुरू सैफुद्दीन के दशम स्थान में ऐसे ग्रहों का प्रभाव है। ये लोग दशम प्रभाव के कारण महान समाज सुधारक और सक्रिय सचेतक के रूप में भी प्रसिद्ध हुये। दशम स्थान

नेतृत्व शक्ति और उच्च सामाजिक मान्यता भी देता है जो इन सभी साधकों को मिल पायी। जबकि अनेक एकान्तिक साधक उच्चतम स्तर होने पर भी प्रसिद्धि से दूर रहे।

इंगलैण्ड के विलियम डे प्लैनेटोरियम के डाइरेक्टर प्रसिद्ध एस्ट्रो फिजीसिस्ट डा0 पीटर सेयमोर ने ग्रहों के तनाव जीवन पर प्रभाव को इस रूप में प्रकट किया है।

1. ग्रहों की स्थिति सूर्य के चारों ओर फैले गैसीय वातावरण एवं मैगनेटिक फील्ड को प्रभावित कर 'सोलर स्पाट' व सोलर स्टार्म को जन्म देते हैं। इन दशाओं का पष्थ्वी और मानव पर भी प्रभाव आ जाता है।
2. सूर्य की चक्रीय पथ जियो मैगनेटिक फील्ड (पृथ्वीय चुम्बकीय विशिष्ट संरचना) उत्पन्न करता है।
3. पृथ्वी चुम्बकीय संरचना में अनेक परिवर्तन लाती है। (ज्वार भाटा, मौसमीय अदल बदल, मानव मस्तिष्कीय रसायनिक संरचना, हारमोनल प्रवाह की घटत–बढ़त एवं आन्तरिक प्रक्रिया में परिवर्तन आदि)।
4. ऐसा ज्ञात होता है कि सौर विकरण (रेडियेशन) ग्रहों का चक्रीय भ्रमण, सीधे पृथ्वी के जीवों और मानव जीवन संरचना को प्रभावित कर रहा है।
5. मानव भ्रूण संरचना के समय की जियो मैगनेटिक फील्ड और ग्रह संरचना की स्थिति मानव की मस्तिष्कीय संरचना को भी प्रभावित करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या ग्रह स्थितियों और उनके सकारात्मक–नकारात्मक संयोजन के द्वारा भावी योगी का आंकलन संभव है। प्रसिद्ध योगियों की ग्रहस्थिति का विश्लेषण कर क्या यह संभव है कि हम योगिक जीवन क्रम का पूर्व आंकलन कर सकते हैं।

ज्योतिषीय गणना और आंकलन सहज विधि नहीं है और Holistic (पूर्णत्व वादी) भावना अपनाये बिना उसे समझा भी नहीं जा सकता परन्तु उसके निष्कर्ष व्यक्तिगत जीवन और सामूहिक विश्लेषण हेत अत्यन्त उपयोगी हो सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्दः योगनिद्रा, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार,(1993)
2. पाल श्याम सुंदर योग प्रदीप्ति आर्यन पब्लिकेशन नई दिल्ली 2017
3. योगांक गीताप्रेस गोरखपुर उत्तर प्रदेश
4. पतंजलिपतंजल योग सूत्र
5. श्रीराम, आत्मविश्वास की शक्ति, अखण्ड ज्योति–संस्थान, मथुरा वर्ष–26 अंक 5, (1963)

23

संत कबीर का साधनात्मक रहस्यवाद

योगेश कुमार तिवारी

संत कबीर को जीवन और जगत का व्यापक अनुभव था और यह अनुभव उनकी आत्मा का अभिन्न अंग बना जो योगाभ्यास, सत्यरूप निरूपण, माया विषयक सिद्धान्त आदि को काव्य के रूप में प्रस्तुत करता है।इसलिए विद्वान एवं विचारक उनकी रचनाओं में गूढ़ रहस्य, भक्तिभाव और काव्यात्मक लक्षण की तलाश करते हैं। उनकी रचनाओं की रहस्यवादी और दार्शिनिक प्रवष्त्तियों की समीक्षा करते है। यह बात जगजाहिर है कि धार्मिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों, बाह्य आडम्बरों और कर्मकाण्डों का कबीरदास ने डटकर विरोध किया। धर्म के पाखंड चाहे हिंदुओं के हों या मुस्लिम के; उन्होंने किसी को नही छोड़ा। धार्मिक आडम्बरों के लिए बार–बार फटकार लगाई है। समदर्शिता ही उनकी सबसे बड़ी देन है; क्योंकि वह इस बात से भलि–भांति परिचित थे कि प्रत्येक धर्म का मूल मंत्र मानवता ही है। कबीर सारी फटकार के बावजूद धर्म के मूल मंत्र को पहचानने की ही बात करते है।इसलिए कबीर को एक तरह से समकालीन सामाजिक–धार्मिक परिर्वतन का अग्रगामी व्यक्ति माना जाता है। कबीर के दर्शन को जानने और समझानें के लिए उनकी रहस्यानुभूति से होकर गुजरना नितांत आवश्यक हो जाता है क्योंकि कबीर हिन्दी के आदिकालीन रहस्यवादी कवि है। कबीर के पूर्व हिन्दी साहित्य में नाथपंथियों, हठयोगियों एवं सूफियों का प्रभाव था।

निर्गुण सम्प्रदाय की पृष्ठ भूमि में नाथ सम्प्रदाय है। संत कबीर पर रामानंद की अद्वैत विचार धारा का प्रभाव सबसे अधिक है। आचार्य रामचन्द्र के शब्दों में 'चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है'रहस्यवाद के गर्भ में वस्तुतः अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है।उस अज्ञात शक्ति की अनुभूति प्राप्त करके उसका निरूपण किया जाता है। इस अलौकिक अनुभूति की स्थिति में साधक अनन्त शक्ति के अनंत वैभव से परिपूर्ण हो जाता है और फिर संसार के कण–कण में उसे परमसत्ता का अनुभव होने

लगता है; यही रहस्यानुभूति है। कबीरदास के रहस्यवाद को यदि गहराई से समझना है तो इसके दो भाग करना नितांत आवश्यक हो जाता है। 1. साधनात्मक रहस्यवाद 2. भावनात्मक रहस्यवाद। यहां पर हम केवल साधनात्मक रहस्यवाद की चर्चा करेगें।

साहित्य में साधनात्मक रहस्यवाद वहां निहित होता है जहां कवि षटचक्र, योग साधना, कुंडलिनी योग आदि का उल्लेख करता है। इसलिए इसे बौद्धिक रहस्यवाद भी कह सकते है। साधनात्मक रहस्यवाद की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। यह वस्तुतः वेदमूलक है।अथर्ववेद में शरीर के वर्णन में **'अष्टचक्रा नवद्वारा पूरयोव्या'** में चक्रों की धारणा का स्पष्ट संकेत है। कबीर के पदों में इस बात पुष्टि मिलती है। जैसे–**'अठ सिधि नव निधि नांव मंझारि, कहे कबीर भजि चरन मुरारि।**[1]कबीर निराकार ईश्वर के उपासक हैं किन्तु उन पर वैष्णव प्रभाव इतना प्रबल है कि वे कहीं कहीं उस निराकार को भी साकार रूप बना देते है।

बौद्धों का **'अभिधम्म पिटक'** योग की चर्चाओं से भरा पड़ा है।सिद्धों और नाथों ने इसकी पूर्णप्रतिष्ठा की। कहा जाता है कि तत्कालीन समाज पर नाथ पंथी योगियों की आश्चर्यजनक पद्धतियों एवं चमत्कार सिद्धियों का भारी प्रभाव था।**"नाथों ने बौद्ध धर्म की परंपरागत साधना और चिंतनशक्ति धर्म, विनय, संयम, वैराग्य भावना, योग, प्राणायाम आदि अंगों को अपनाया। उन्होंने काया शोधन, मनोमारण और संयमित जीवन पर बल दिया। उन्होंने समाधि और हठयोग को अपनाया। नाथों ने योग को प्राथमिकता दी। शून्य, सहज शून्य, सहज समाधि, गुरू, देह, चक्रनाड़ी, सुरती, मुद्रा, निवार्ण आदि धर्म तत्वों का विवेचन किया।"**[2]इस बात को लेकर आलोचक रामचन्द्र शुक्ल कबीर के विषय में लिखते है कि **"कबीरदास ने हठयोगियो के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (जैसे– चंद, सूर, नाद, बिंदू अमृत, औंधा कुआ) को लेकर अद्भुत रूपक बांधे है जो सामान्य जनता के बुद्धि पर पूरा आतंक जमाते है"**[3]कबीर ने भीनाथ और सिद्धों की परम्परा का कुछ निर्वहन करते हुए इनकी जटिल एवं चमत्कारिक पद्धतियों के स्थान पर जनता में सहज भक्ति योग की प्रतिष्ठा करने के लिए योग सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों – इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, षट्चक्र आदि की नए ढ़ग से व्यवस्था की। कबीर के विषय में डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत का मत है कि **"एक का रहस्यवाद भारतीय भक्तिमार्ग, श्रुतिग्रंथ, सिद्धमत और नाथ संप्रदाय से प्रभावित होने के कारण आध्यात्मिक, ऐकान्तिक, व्यष्टिमूलक, सजीव और वर्णनात्मक है। दूसरे का सूफी साधना और भावना से अनुप्राणित होने के अत्यंत सरस, संकेतात्मक और समष्टिमूलक है"**[4]कबीर की साधना में योग ही सब कुछ नही था। योग भी परमपद की प्राप्तियों में एक साधना था। कबीर हठयोगियों और नाथपंथियों के समान प्राणायाम, कष्टसाध्य आसन आदि के पक्ष में नही थे। इसलिए कबीर ने साधना के क्षेत्र में योग और प्रेम दोनों को जो महत्व दिया है वह क्रमशः नाथ सम्प्रदाय और सूफी मत का प्रभाव माना जा सकता है। उनका जो योग का आदर्श था, निम्न पद से समझा जा सकता है।

जोगिया तन कौ जंत्र बजाइ,यूं तेरा आवागमन मिटाइ।
ततकरि ताँति धर्म कर डांडी, सत की सारि लगाइ।
मन करि निंहचल आसणै निहचल, रसनाँ रस उपजाइ।
चित कर बटवा तुचा मेशली, भषमै भसम चढ़ाइ।
तजि पाषंड पांच करि निग्रह, खोजी परम पद राइ।
हिरदै सींगी ग्यांन गुणि बांधौ, खोजी निरंजन साचा।
कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति गिनां प्यंड काचा[5]

संत कबीर ने साधनात्मक रहस्यवाद को व्यक्त करने के लिए विशेष तथ्यों, अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया और अपनी भाषा की व्यंजना शक्ति का परिचय दिया। कबीर ने उलटबांसियों और प्रतीकात्मक रूपकों में बुद्धिगम्य तथ्यों का समावेश करके साधनात्मक रहस्यवाद की अभिव्यक्ति करते दिखाई पड़ते है। जैसे–

एक अचम्भा ऐसा भया, करणीं थैं कारण मिटि गया।
करणी किया करम का नास, पावक मांहि पुहुप प्रकास।
पुहुप मांहि पावक प्रजरै, पाप पुंन दोऊ भ्रम टरै।
प्रगटी बास बासना धोइ, कुल प्रगट्यौ कुल धाल्यौ खोइ।
उपजी च्यंत मिटि गई, सौ भ्रम भागा ऐसी भई।
उलटी गंग मेर कूं चली, धरती उलटि अकासहि मिली।[6]

संत कबीर के सिद्धान्तानुसार महाकुण्डलिनी नामक एक शक्ति प्राणी के अन्दर विद्यमान रहती है। कुडलिनी और प्राण शक्ति को लेकर ही जीव मातृ–कुक्षि में प्रवेश करता है। सभी तीव प्रायः तीन अवस्था में रहते हैं; पहली अवस्था जाग्रत दूसरी सुषिप्त और और तीसरी स्वप्न की है (माण्डूक्योपनिषद् के तीसरे, चौथे एवं पांचवें मंत्र में इन अवस्थाओं का वर्णन मिलता है)। इन तीनों ही अवस्थाओं में कुडकलनी शक्ति निश्चेष्ट रहती है। इस कुडलिनी को सही ढ़ग से समझने के लिए शारीरिक बनावट की कल्पना करना नितांत आवश्यक है। पृष्ठ भाग यानी पीठ में स्थित मेरूदंड जहां सीधे जाकर वायु और उपस्थ का मध्य भाग है वहां एक स्वमंभू लिंग है, जो त्रिकोण के रूप में अवस्थित है। इसे ही अग्नि चक्र कहते है। इसी अग्नि चक्रमें स्थित स्मयंभू लिंग को साढे तीन वृत्तों में लिपटा सर्प की भांति कुडलिनी अवस्थित होती है। ठीक इसके ऊपर चार दल का एक कमल है जिसे मूलाध ाार चक्र कहते है।फिर उसके ऊपर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है, जिसका आकार छह दल वाले कमल के समान है। मूलाधार चक्र से स्वाधिष्ठान चक्र में कुडलिनी को पहुंचाने के लिए जो समाधी लगाई जाती है, उससे मृत्यु भय समाप्त हो जाता है। इस चक्र के ऊपर मणिपूर चक्र है और इसके ऊपर हृदय के समीप अनाहत चक्र है, जो बारह दलों के कमल के आकार का है, यहां तक पहुंचाने पर योगियों का मृत्यु पर आपका अधिकार हो जाता

है। इसके ऊपर कंठ के पास विषुद्धि चक्र है, जिसमें केवल दो दल हैं। ये ही षटचक्र है। इन चक्रों को भेदकर मस्तिष्क में शून्य चक्र मिलता है। जहां जीवात्मा को पहुंचा देने का लक्ष्य योगियों का होता है। इसमें जिस कमल की परिकल्पना की गई है, उसमें सहस्त्र दल हैं। इसलिए इसे सहस्त्रचक्र भी कहते है। यह कमल कैलास कहलाता है, क्योंकि इसकी स्थितिशरीर के उच्च भाग में है। जैसे पर्वतों में कैलास पर्वत उच्च भाग में स्थित है। इसलिए शून्य चक्र ही आकाश मण्डल है। इस स्थिति को प्राप्त करने के बाद जीवन–मरण के बंधनों के मुक्त हुआ जा सकता है। शिव संहिता के राजयोग वर्णन के अन्तर्गत 186 और 187 श्लोक के माध्यम से इसकी पुष्टि होती है। जैसे–

अत ऊर्ध्व दिव्यरूपं सहस्त्रारं सरोरुहम।

ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम्।।

कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति।

अकुलाख्योष्विनाशी च क्षयवर्षद्धिविवर्जितः।।[7]

संत कबीर का मानना है कि मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलिनी को योग के बल से जागृत करके सुषुम्ना नाड़ी से होते हुए षटचक्रों का भेदन करके सहस्त्रचक्र तक जब पहुंचा जायेगा तभी वह माया के बंधनों से मुक्त हो पायेगा। माया के रूप जैसे काम और क्रोध को योग द्वारा जलाकर भस्म किया जा सकता है। जैसे– **काम–क्रोध दो भया पलीता, तहां जोगिणी जागी।** कबीरदास के निम्नलिखित पदोंमें सम्पूर्ण बात की पुष्टि देखने को मिलती है–

01. षट दल कंवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।।
दहुँ कै बीधि समाधियाँ, तहाँ काल न पासै आइ रे।।
अष्ट कंवल दल भीतरां, तहां श्रीरंग केलि कराइ रे।।
सतगुर मिलै तौ पाइये, नहीं जन्म अक्यारथ जाइ रे।।
कदली कुसुम दल भीतरां, तहाँ दस आगुल का बीच रे।।
तहाँ दुवादस खोजी ले, जनम होत नहीं मींच रे।।
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिशा की बाट रे।।
नीझर झरै रस पीजिए, तहां भंवर गुफा के घाट रे।।
त्रिवेणी मनाह न्हवाइए, सुरति मिलै जौ हाथि रे।।
तहाँ न फिरि मघ जोइये, सनकादिक मिलिहैं साथि रे।।
घघन गरिजमघ जोइये, तहाँ दीसै तार अनंत रे।।
बिजुरी चमकि घन बरषिहैं, तरां भीचत हैं सब संत रे।
षोडस कंवल अब चेतिया, तथ मिलि गए भी वनवारि रे।
जुरा–मरण भ्रम अब भाषिया, पुनरपि जनम निवारि रे।।[8]

02. गुड़ करि ग्यांन ध्यांन कर महुआ, भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समांनीं, पीवै पीवनहारा।
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया बलीटा, छूटि गई संसारी।
सुंनि मंड़ल मैं मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै।
गुरू प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि संषमनां काछै।
पूरा मिल्या तबै उपज्यो, तन की तपति बुझानी।
कहै कबीर भव बंधन छूटै, जोतिहि जोत समानी।[9]

संत सहस्त्रचक्र के भी के ऊपर एक अष्टम् चक्र सुरति चक्र कमल की कल्पना करते हैं। संत कबीर कहते है कि सहस्त्रचक्र तक पहुंचे हुए योगी की चित्त व्युत्थान काल (समाधि के उपरान्त या समाधि टूटने के बाद) के बाद फिर वासना का शिकार हो जाता है, परन्तु सुरति चक्र पाने वाले योगी का चित्त माया से परे हो जाता है।साधनात्मक ग्रंथों में कहीं–कहीं कुडलिनी योग को हठयोग से भिन्न माना गया है, परन्तु अधिकांश नाथ संप्रदाय के ग्रंथों में कुडलिनी योग की चर्चा हुई है। वस्तुतः संत (योगी) आत्मा को शून्य और शून्य को आत्मा करके योग को चर्मोत्कर्ष की स्थिति तक पहुंचा देते है। ऐसी स्थिति में उनके भीतर भी शून्य होता है और बाहर भी शून्य विद्यामान रहता है।

अंतः शून्यों बहिः शून्यः, शून्य कुंभ इवांबरे।
अंतः पूर्णो बहिः पूर्णो, पूर्ण कुंभ इवार्णवे।। (हठयोग से)
घेरण्ड संहिता में यह वर्णित है–
जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुलेविष्णुः सर्वविष्णुमयंजगत्।।[10]

संत कबीर ने इसी भाव लेकर को साखी में लिखा है–**आदे गगना अंतै गगना, मध्ये गगना भाई।**कबीर का साधनात्मकरहस्यवाद ज्ञान के क्षेत्र से उत्पंन हुआ है और अधिकतर ज्ञान क्षेत्र में रहा है। इस बात को निम्नलिखित साखी के माध्यम से समझा जा सकता है–

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यौ ग्यानी।।[11]

सारांश यह है कि कबीरदास अपने साधनात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा आत्मा का परमात्मता के मिलाने के लिए किया है। कबीर की वाणी में हमकों अनेक स्थानों में उपनिषद, संहिता, गीता जैसे हिन्दू धर्म ग्रंथों की साधनात्मक रहस्यवादी विचारधारा के दर्शन मिलते है। जैसे–**सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।ईक्षते योगयुक्तत्मा सर्वत्र**

समदर्शन।।[12]**(गीता, 6/29)।** उनके साधनात्मक रहस्यवाद के मुख्य विशेषता तात्विक चिन्तनधारा के अतिरिक्त प्रेम की अभिव्यंजना निहित है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. कबीर ग्रन्थावली, पुष्पलाल सिंह, नमन प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2010, पृ. 363।
2. महात्मा कबीर : जीवन और दर्शन, के.एल. चंचरीक, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 32।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रयाग पुस्तक सदन, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, 2005, पृ. 45।
4. कबीर ग्रन्थावली, पुष्पलाल सिंह, नमन प्रकाशन, दरियागंज, नईदिल्ली, 2010, पृ. 55।
5. वहीं, पृ. 408।
6. वहीं, पृ. 470।
7. शिव संहिता, संपा. चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, वेदनगर, बरेली, (उ.प्र.), 2015, पृ. 157।
8. कबीर ग्रन्थावली, पुष्पलाल सिंह, नमन प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2010, पृ. 298।
9. वहीं, पृ. 337—338।
10. घेरण्ड संहिता, संपा. चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, वेदनगर, बरेली, (उ.प्र.), 2015, पृ. 185।
11. कबीर ग्रन्थावली, पुष्पलाल सिंह, नमन प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2010, पृ. 28।
12. घेरण्ड संहिता, संपा. चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, वेदनगर, बरेली, (उ.प्र.), 2015, पृ. 186।

24

मानव जीवन में ब्रहमचर्य योग–साधना

संदीप ठाकरे

ब्रहमचार्य योग के आधारभूत स्तम्भों में से एक है। ये वैदिक वर्णाश्रम का पहला आश्रम भी हैं, जिसके अनुसार पच्चीस वर्ष तक की आयु तक नैष्ठिक ब्रहम का पालन करना अनिवार्य माना गया हैं। ब्रहमचर्य का यौगिक अर्थ ब्रहम की प्राप्ति के लिए वेदो का अध्ययन करना। [1] प्राचीन काल में छात्रगण ब्रहम की प्राप्ति के लिए गुरू के यहां रहकर सावधानी के साथ वीर्य की रक्षा करते हुए वेदाध्ययन करते थे इसलिए धीरे धीरे ब्रम्हचर्य शब्द वीर्यरक्षा के अर्थ में रूढ हो गया **'वीर्य धारणं ब्रम्हचर्य** 'अर्थात् शरीरस्थ वीर्य शक्ति की अविचल रूप में रक्षा करना या धारण करना ब्रम्हचर्य है। अर्थात् मन वाणी तथा शरीर से होने वाले सब प्रकार के मैथुनो का परित्यागकर देना ब्रहमचर्य हैं [2]

इस प्रकार काम विकार को किसी भी प्रकार से उदय न होने देना ब्रम्हचर्य है जब तक समस्त इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं होता तब तक काम विकार की उत्पत्ति को नहीं रोका जा सकता। अतः सब इन्द्रियों के नियंत्रण से कामेन्द्रिय के ऊपर संयम करने को ब्रम्हचर्य कहते है। [3] मन पर पूर्ण नियंत्रण ब्रहमचर्य के लिए परम आवश्यक है ब्रहमचर्य ठीक ठीक पूर्णतया पालन करने के लिए खाने पीने तथा रहन सहन को उसके अनुकूल बनाना पडता हैं। दक्षमुनि के विचार से आठ प्रकार के मैथुन से रहित होना ही ब्रहमचर्य है–अर्थात काम क्रियाओं व बातों का स्मरण करना, उनके विषय में बात करना, स्त्री के साथ क्रिडा करना, उसके (स्त्री के) अंगो को देखना, उसके साथ गुप्त बातचीत करना, भोग इच्छा, सम्भोग निश्चय तथा सम्भोग क्रियायें ये आठ प्रकार के मैथुन हैं जिनके विपरीत आचरण करना ही ब्रहमचर्य है।[4]

शरीर का सार वीर्य है इसलिए मुमुक्षु योगी पुरूष के लिए ब्रहमचर्य का व्रत नितांत आवश्यक हैं ब्रहमचर्य व्रत से ऊर्ध्वरेता पुरूष ही सिद्ध योगी बन सकता है अधःरेता पुरूष नहीं ब्रहमचर्य के प्रभाव से ही योगी का देह तेजस्विी, ओजस्वी, दीर्घायु तथा निरोग बनता हैं। वीर्य सप्तधातुओं का सार हैं, यह बात सुश्रुत आदि निदान ग्रन्थों में कही गयी है –

मनुष्य जो भी खाद्य पदार्थ ग्रहण करता है उसका सार रस बनता है, उस रस से रक्त बनता है रक्त से मांस के रूप में परिणत हो जाता है उस मांस से अस्थि—हड्डी बनती है अस्थि से मज्जा बनता है, और मज्जा से शुक्र (वीर्य) बनता हैं। शुक्र निर्मल, श्वेत, शीतल तथा नितांत बल पुष्टिकारक है। यह के बीज रूप होता है वीर्य से जो शरीर रूप में एक प्रकार से जो तेज उत्पन्न होता है उसी को ओज कहते है अतः जो ब्रहमचारी ब्रहमचर्य व्रत के द्वारा उस वीर्य शक्ति की रक्षा करता हैं तो उसके प्रभाव से उसका शरीर तेजोमय, कान्तिमान, लावण्ययुक्त और पुष्ट—बलिष्ठ होने के साथ—साथ निरोग तथा दीर्घायु होता हैं। [5]

याज्ञवल्क्य संहिता में ऋषि याज्ञवल्क्य ब्रहमचर्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि— **कर्मणामनसा वाचा सर्वास्थासु सर्वदा ।** [6]

सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रम्हचर्य प्रचक्षते ।।

अर्थात—योगी को कर्म से अर्थात शारीरिक चेष्टादी से, मन से तथा शारीरिक चेष्टाओं से मैथुन की इच्छा का परित्याग कर देना वास्तविक ब्रहमचर्य व्रत है वेदों में भी कहा गया है— **ब्रम्हचयैण तपसा राजा राष्ट्र विरक्षति।** [7]

अर्थात ब्रहमचर्य से उत्पन्न बल, पराक्रम तथा सामर्थ्य—शक्ति से ही राजा राष्ट्र की रक्षा करता है और विद्रोही शत्रुओ ंका मान मर्दन करता है अर्थात मार भगाता हैं। तथा अथर्ववेद में ही अन्यत्र यह कहा गया है—

ब्रम्हचर्येण तपसा देवा मष्त्युमपाघ्नता । [8]

अर्थात ब्रम्हचर्य के प्रभाव से ही देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त का लिया था। इसी प्रकार योग दर्शन में भी ब्रहमचर्य की प्रतिष्ठा का फल बताते हुए कहा है— **ब्रम्हचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलभः ।** [9]

अर्थात वीर्य ही सब शक्तिओं का मूल कारण है। उसके पूर्णतया रोकने से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियां बढ जाती है तथा योगमार्ग में बिना रूकावट उन्नति प्राप्त होती हैं। इस प्रकार वेदों से लेकर समस्त योगग्रथों ने ब्रहमचर्य से होने वाले अपार लाभों की चर्चा की है। समस्त शास्त्रों की साररूप श्रीमदभागवतगीता में तो अनुचित विषय वासना को नाश का मूल कारण बताया हैं गीता के दूसरे अध्याय में इसकी चर्चा करते हुए भगवान कहते हैं—'विषयों का चिन्तन करने वाले पुरूष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उन्नति होती हैं और कामना में विघ्न पडने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यंत मूढभाव उत्पन्न हो जाता है, मूढभाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है स्मृति भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है, और बुद्धि के नाश हो जाने से यह पुरूष अपनी स्थिति से गिर जाता है'। [10] गीता के अध्याय पांच में इसी बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं—'जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाला सब योग हैं, यद्यपि विषयी पुरूषों को सुखरूप भोगते हैं तो भी दुःख ही होता है आदि अन्तवाले अर्थात अनित्य है। इसलिए बुद्धिमान विवेकी पुरूष उनमें नहीं रमता है'।[11]

आगे चलकर गीता ने ब्रहमचर्य को बहुत बड़ा व्रत और तप बताया है–देवता, ब्रहमण, गुरू और ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रम्हचर्य और अहिंसा यह शरीर सम्बन्धी तप कहलाते ह'। 12 शास्त्रों में तो ब्रम्हचर्य की महिमा का वर्णन किया ही गया हैं परन्तु शास्त्रों पर श्रद्धा रखते हुए संतों एवं महापुरूषों ने ब्रम्हचर्य की साधना से अपने जीवन का आदर्श समाज के सामने प्रस्तुत किया था। महात्मा गांधी ने तो ब्रहमचर्य को अपने एकादशव्रतों में स्थान दिया था। उन्होने आध्यात्मिक तथा नैतिक उन्नति के दृष्टि से ब्रम्हचर्य को बहुत महत्व दिया है और इसकी व्यापक परिभाषा की ब्रहमचर्य का पूर्ण एवं उचित अर्थ ब्रम्ह की खोज हैं। ब्रहम की यह खोज अथवा प्राप्ति पूर्ण इन्द्रिय संयम के बिना असंभव हैं। इस प्रकार ब्रम्हचर्य का अर्थ संयम अथवा नियंत्रण है। [13] अतः शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ्य एवं शक्तिशाली रहने के लिए भी गांधी जी सभी मनुष्यों के लिए ब्रम्हचर्य का पालन करना आवश्यक मानते थे। उनका विचार है कि जानबूझ कर मैथुन के लिए वीर्य का नाश करना सबसे बडी मूर्खता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह विवाहित ही क्यो न हो को यथा सम्भव सहवास से दूर रहना चाहिए, इन्हीं कारणों से विवाहित और अविवाहित सभी व्यक्तियों के लिए ब्रहमचर्य का पालन करना आवश्यक माना गया है।

ब्रम्हचर्य की महिमा का गान करते हुए स्वामी रामतीर्थ कहते है–'जैसे दीपक का तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढकर प्रकाश के रूप में परिणत होता हैं वैसे ही ब्रहमचारी के अंदर का वीर्य सुषुम्ना नाडी के द्वारा प्राण बनकर ऊपर चढता हुआ ज्ञान–दीप्ती में परिणत होता ह'। [14]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'ब्रहमचर्य' में ही मनुष्य की शक्ति निहित है, अतः प्रत्येक व्यक्ति को अष्टविधि मैथुन अर्थात कीर्तन, केलि प्रेक्षण गुहयभाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रिया–निवृत्ति अष्टविधि मैथुन से सर्वदा बचना चाहिए। अतः इससे बचना ही ब्रहमचर्य है। तथा ब्रम्हचर्य रक्षा के सरल और व्यवहारिक उपायों जैसे ईश्वर परायणता सात्विक भोजन, राम–नाम का जाप महानध्येय सादा जीवन, उच्चविचार से रहना, उपवास, प्रतिदिन नियमित रूप से योगाभ्यास, प्रातः या सायं की सैर, स्वाध्याय करना आदि बातों के पालन द्वारा ब्रहमचर्य की साधना को साधक साध सकता है इस प्रकार योगशास्त्रों में ब्रम्हचर्य की साधना को साक्षात् ब्रम्ह की उपासना का मार्ग बताया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1, आरोग्य–अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ– 69
2, स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (1998), योगविज्ञान, योगनिकेतन ट्रस्ट, मुनी कीरेती ऋषिकेश पृ. 45
3, आ़त्रेय शांतिप्रकाश (1964), योग–मनोविज्ञान श्री रामाशंकर जी तारा पब्लिकेशन काशी, पृ–177
4, दक्षसंहिता
5, स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (1998),योगविज्ञान, योगनिकेतन ट्रस्ट, मुनी कीरेती ऋषिकेश पृ. 46
6, याज्ञवल्क्य संहिता,
7, अथर्ववेद– 1/5/15

8, अथर्ववेद– 3/5/19
9, योगदर्शन– 2/38
10, श्रीमद् भगवद्गीता– 2/(62,63)
11, श्रीमद् भगवद्गीता– 5/22
12, श्रीमद् भगवद्गीता– 17/14
13, महात्मागांधी : हिन्दु धर्म (1998), जनजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ–137
14, पं, श्रीराम शमा आचार्य : ब्रम्हचर्य जीवन की आवश्यकता शांतिकुन्ज, हरिद्वार, पृ– 9

25

योग का शिक्षा में महत्त्व

रविन्द्र कुमार ठाकुर

योग जो कि 10,000 साल से भी अधिक समय से प्रचलन में है, सबसे पुराने जीवन साहित्य ऋग्वेद में पाया जाता है। प्राचीनतम उपनिषद में विभिन्न शारीरिक अभ्यासों का उल्लेख मिलता है। पतंजलि को योग के पिता के रूप में माना जाता है और उनके योग सूत्र पूरी तरह योग के ज्ञान के लिए समर्पित रहे हैं। योग में शारीरिक व मानसिक दोनों पक्षों पर जोर देना जरूरी है। आसन शरीर की शुद्धि और मन की शुद्धि के लिए जरूरी है। बुढ़े या युवा, स्वस्थ या कमजोर सभी के लिए योग का शारीरिक अभ्यास लाभदायक है और यह सभी को उन्नति की ओर ले जाता है। इसके मुख्य उद्देश्य की बात करे तो यह आपके मन और मस्तिष्क को स्थिर रखता है और हमें बीमारियों से बचाने में मदद करता है, जिसके चलते हम स्वस्थ जीवन शैली जीते है। योग हमारे तन, मन तथा आत्मा के लिए लाभदायक है।

जब योग इतना ही लाभदायक है तो हमें इसे करने की शिक्षा अपने बच्चों को भी जरूर देनी चाहिए। योग का महत्व उन्हें सिखाना चाहिए। इससे बच्चों के मन–मस्तिष्क में स्थिरता आती है और वे अपनी पढ़ाई में भी ध्यान केंद्रित कर सकते है। योग के चमत्कार को तो पूरी दुनिया ने स्वीकार किया है इसी वजह से दुनिया के विभिन्न देशों में योग शिक्षा को अनिवार्य किया गया है। योग के प्रभाव को देखने हुए आज चिकित्सक एवं वैज्ञानिक योग के अभ्यास की सलाह देते हैं। छात्र जीवन के लिए तो योग बहुत ही आवश्यक है।

योग की उत्पति प्राचीन समय में, योगियों द्वारा भारत में हुई थी। योग शब्द की उत्पति संस्कृत के शब्द से हुई है, जिसके दो अर्थ हैं– एक अर्थ है– जोड़ना, और दूसरा अर्थ है– अनुशासन। योग का अभ्यास हमें शरीर और मस्तिष्क के जुड़ाव द्वारा शरीर और मस्तिष्क के अनुशासन को सिखाता है। यह एक आध्यात्मिक अभ्यास है, जो शरीर और मस्तिष्क के

संतुलन के साथ ही प्रकृति के करीब आने के लिए ध्यान में माध्यम से किया जाता है। यह पहले समय में, हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म के लोगों द्वारा किया जाता था। यह व्यायाम का ही एक अद्भुत प्रकार है, जो शरीर और मन को नियंत्रित करके जीवन को बेहतर बनाता है। योग हमेशा स्वस्थ जीवन जीने का एक विज्ञान है। यह एक दवा की तरह है, जो हमारे शरीर के अंगों के कार्यो को करने के ढंग को नियमित करक विभिन्न बीमारियों को धीरे–धीरे ठीक करता है।

योग का अभ्यास लोगों के द्वारा किसी भी आयु में किया जा सकता है, जैसे– बचपन, किशोरावस्था, वयस्क या वृद्धावस्था। इसके लिए नियंत्रित सांस के साथ सुरक्षित, धीमें और नियंत्रित शारीरिक गतिविधियों की आवश्यकता होती है। योग और इसके लाभों के बारें में दुनियाभर के लोगों को जागरूक करने के लिए वार्षिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर योग दिवस कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है। जिसका निणर्य पहली बार 11 दिसम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने प्रत्येक वर्ष 21 जून को विश्व योग दिवस के रूप में मान्यता दी है। इस अवसर पर 192 देशों और 47 मुस्लिम देशों में योग दिवस का आयोजन किया गया।

दैनिक जीवन में योग का मुख्य लक्ष्य

- शारीरिक स्वास्थ्य
- मानसिक स्वास्थ्य
- सामाजिक स्वास्थ्य
- आध्यात्मिक स्वास्थ्य
- आत्मानुभूति।

इन लक्ष्यों की प्राप्ति निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा होती है

- सभी जीवधारियों के प्रति प्रेम और सहायता–भाव रखना
- जीवन के प्रति सम्मान और प्रकृति व पर्यावरण का संरक्षण करना
- मानसिक शांति को बनाए रखना
- शुद्ध विचार और सार्थक, सकारात्मक जीवन शैली बनाना
- शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अभ्यास करना
- सभी राष्ट्रों, संस्कृतियों और धर्मो के प्रति सहानुभूति, सहनशीलता बनाए रखना।

योग का शिक्षा में महत्व

- **पढ़ाई के प्रति रूचि बढ़ाने के लिए**– जिन छात्रों का पढ़ाई में मन न लगता हो या पढ़कर भी कुछ याद न रहता हो, उन छात्रों के लिए योग प्रक्रिया चमत्कार जैसा काम करती है। सुबह के वक्त योग करनें से छात्रों में एकाग्रता और स्मरण शक्ति बेहतर होती है। इससे तन–मन स्वस्थ और निरोग रहता है और बच्चें सभी क्षेत्र के अव्वल रहतें है। योग के निरंतर अभ्यास से छात्रों में पढ़ाई की भावना प्रबल होती है।
- **मस्तिष्क में वृद्धि होना**–योग का अभ्यास नियमित तौर पर करनें से छात्रों का मस्तिष्क शक्तिशाली एवं संतुलन बनता है। वैसे तो बाजार में कई तरह की दवाएं उपलब्ध है दिमाग को शक्तिशाली करने के लिए, किन्तु उनका कोई असर नहीं दिखता। परन्तु योग एक प्राकृतिक साधन है जिसका कोई मुकाबला नहीं। योग करने के साथ–साथ सही खान–पान होने से विद्यार्थियों का दिमाग बढ़ सकता है। इससे बच्चों में बचपन से ही अच्छी सोच का विकास होता है और वे सदा सकारात्मक बनते है।
- **नशीले पदार्थो से मुक्ति**–आज कल के समय में युवा पीढ़ी में नशीले पदार्थों को लेकर बहुत उत्साह देखा जाता है और उन्हें इसकी आदत पड़ जाती है। जो कि उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होते है। योग के लगातार किये गए अभ्यास से इन गलत आदतों से छुटकारा मिल सकता है।
- **लक्ष्य की प्राप्ति संभव**–जो लोग अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच पाते और यदि उन्हें जीवन मे लक्ष्य की प्राप्ति करनी है तो वे योग का अभ्यास अवश्य करें। छात्र योग के बल पर अपनें मस्तिष्क को शुद्ध करके विचार शक्ति को बढ़ा सकते है जिससे छात्रों को लक्ष्य प्राप्ति में सहायता मिलती है। जो बच्चे शुरू से ही योग करतें है वे अपने व्यवहार तथा कार्यों से दूसरों को प्रेरणा देते है और उन्हें जागरूक करतें है। योग की सहायता से बच्चे अपने लक्ष्य को जल्दी पहचान पाते है और उसको सफल करनें में जुट जाते है।
- **स्व शिक्षा**–योग स्व–शिक्षा को प्रदर्शित करता है। योग शिक्षा और कुछ नहीं बल्कि स्वयं के प्रति जागरूकता है। योग यह सिखाता है कि हमें बुद्धिमता के साथ कैसे जीना है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में स्व–जागरूकता के बजाए भौतिकता को बढ़ावा दिया जाता है। जबकि योग शिक्षा के माध्यम से स्वयं की आत्मानुभूति करायी जाती है।
- **जागरूकता का विकास**–योग के द्वारा लोगों में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक जागरूकता फैलाने के अलावा सामाजिक और पर्यावरणीय जागरूकता को मन में बैठा दिया जाता है।

- **शारीरिक कठिनाईयों का इलाज**–योग के द्वारा शारीरिक समस्याओं का इलाज किया जा सकता है। बहुत से ऐसे योग की क्रियाएं है जिनके अभ्यास से शारीरिक समस्याओं से निजात पाया जा सकता है।
- **तनाव को दूर करने में सहायक**–पढ़ाई के दौरान बच्चों में बहुत सारी समस्याएं पैदा हो जाती है जिनमें से एक है तनाव। तनाव को दूर करने में योग बहुत ही मददगार साबित होता है। क्योंकि योग की ध्यान तकनीकी से तनाव को नियंत्रित किया जा सकता है। ध्यान एक ऐसा साधन है जिससे व्यक्ति की आंतरिक और बाहरी संवेदनाओं की क्रियाओं को नियंत्रित किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकतें हैं कि योग शिक्षा छात्र और अध्यापक के शरीर को आराम देने में तथा स्वस्थ्य से जुड़ी समस्याओं का प्रभावशाली इलाज मुहैया करने में सहायक होता है। इसके साथ साथ छात्र और शिक्षक की काल्पना शक्ति का विकास करनें में सहायता देता ही है साथ में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिए स्वस्थ वातावरण सृजन करनें में भी सहायक होता है। आज के भाग दौड़ की जिन्दगी में सबको तनाव से मुक्ति चाहिए, ऐसे मे छात्र और शिक्षक के तनाव और चिंता को कम करनें में योग शिक्षा अपनी अहम् भूमिका अदा करता है। छात्र और शिक्षक के ध्यान को एकाग्र करना और शरीर में जमा अतिरिक्त चर्बी को जलाने तथा शरीर के आकार का सुधार करने में बहुत ही कारगर साबित होता है। योग द्वारा छात्र और शिक्षक में निर्णय लेने की क्षमता का विकास कर उसकों जीवन में सही तरीके से समायोजन करनें और सफलता हासिल करनें में एक रामबाण की तरह काम करता है। इस तरह योग शिक्षा चाहे वे बच्चे, युवा, या बुजुर्ग हो, सभी के लिए योग शिक्षा महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

संदर्भसूची

1. इन्द्रभूशण प्रारम्भिक मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।
2. जायसवाल, सीताराम समायोजन मनोविज्ञान, उत्तरप्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनउ
3. जीत भाई योगेन्द्र सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1995
4. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती मुक्ति के चार सोपान, विहार योग विद्यालय, मुंगेर, 1994
5. अरूण कुमार सिंह : उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान' मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन, पटना 2000
6. अग्रवाल बी.बी. : आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2000
7. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग प्रकाशन ट्रस्ट मुगेंर, बिहार, 2006
8. मिश्र नंदलालः मानव चेतना बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा, 2004
9. गोस्वामी हर्शवर्धन,, प्राणायाम, सत्यम पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011
10. भारद्वाज ईश्वर मानव चेतना, सत्यम प्रकाशन दिल्ली, 2011,
11. नागेन्द्र एच.आर. प्राणायाम, स्वामी विवेकांनंद योग प्रकाशन बैगलौंर, 2015
12. शांति प्रकाश आत्रेययोग मनोविज्ञान श्री ताराप्रकाशन वाराणसी, 1965,

26

तनाव प्रबंधन में योग की भूमिका

डॉ विनीता अवस्थी

प्रतिदिन हम बहुत सारी चुनौतियों का सामना करते हैं जो तनाव उत्पन्न करती है जैसे घर पर, कार्य स्थल पर खेल के मैदान में संवेगात्मक खिचांव सामाजिक, आर्थिक व पर्यावारणीय परिस्थितियॉ जीवन में घटने वाली महत्वपूर्ण घटनायें है जो हमारे अनुकूल नहीं होती उनसे उत्पन्न होने वाले तनाव हमारे तन व मन दोनों को प्रभावित करते है। तनाव वह अवस्था है जो अनायास उत्पन्न होती है हम जीवन में विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हैं किन्तु हर चुनौती तनाव उत्पन्न करे यह जरूरी नहीं । हम नहीं जानते तनाव उत्पन्न होने का कारण क्या हैं ? प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग तरह से तनाव ग्रस्त होता है। एक ही परिस्थिति को दो मनुष्यों द्वारा अलग–अलग तरह से महसूस अनुभव किया जाता है। दोनों का व्यवहार अलग–अलग होता है, एक व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है, उनकी दूसरा उसी परिस्थिति को सहज रूप में स्वीकार करता है। इस प्रकार मनुश्य तनाव के विभिन्न स्तरों का अनुभव करता हैं। तनाव संपूर्ण मानव जाति द्वारा महसूस किया जाता हैं।

चुनौतियों के प्रति हमारी प्रतिक्रिया तत्काल शीघ्रता व अपनी योग्यतानुरूप होती है। लेकिन चुनौतियों में सफलता व असफलता हमारे अनुरूप नहीं होती। कई बार असफलता हमारे लिए तनाव का कारण होती है तो कई बार वही असफलता हमें दुगने उत्साह से परिपूर्ण कर पुनः चुनौती का समाना करने को तैयार कर देती है।

वास्तविक समय में तनाव के कारण काफी हद तक भिन्न है। हमारी तनाव के प्रति प्रतिक्रिया भी भिन्न है। सभ्यता ने हमारे ऊपर नये दबावों को उत्पन्न किया है तो हमारी ''जीवन जीने की कला'' की योग्यता को परखते है। आज मानव शरीरिक श्रम से ज्यादा तनाव ग्रस्त नहीं है। ज्यादातर तनाव उत्पन्न होने का कारण हमारे संवेग है जैसे– उत्तेजना, उतावलापन, क्रोध, भय आदि हमारे शरीर पर सीधा प्रभाव डालते है, इसके साथ ही ड्रग्स, शराब व सिगरेट भी शरीर को प्रभावित करते है। जिनका सेवन लोग तनाव दूर करने के

लिए कर रहे है बताते है इनके सेवन से तनाव दूर तो नहीं होता वरन शरीर पर इसके दुश्प्रभाव दिखने लगते है।

तनाव नुकसानदायक तब है, जब हम उस पर नियंत्रण खो देते है। तनाव को समझकर उससे होने वाले नुकसान को कम करना प्रथम साकारात्कम प्रयास है स्वस्थ जीवन के लिए।

तनाव से शरीर पर प्रभाव

तनाव से शरीरिक परिवर्तन के साथ ही Biochemical परिवर्तन हमारे मस्तिष्क व स्नायुतंत्र Nervious system तथा हारमोंस को भी प्रभावित करते है जिस कारण हमारा रक्तचाप, हृदयगति, श्वसन प्रक्रिया, राससायनिक स्त्राव आदि पर प्रभाव पड़ता है। ये प्रभाव एक तरफ हमें ताकत प्रदान करते है जिससे हम अपना श्रेष्ठतम प्रस्तुत कर सकें वही इनसे होने वाले नुकसानों में हमारे पाचन तंत्र, एसीडिटी, मधुमेह, हृदयरोग, उच्चरक्तचाप, ब्रेनहेमरेज, माइग्रेन, आदि का एक प्रमुख कारण बनते हैं।

तनाव की अवस्था में मनुष्य के शरीर से पसीना आना, मांसपेशियों का तनजाना, विभिन्न हार्मोन्स का स्त्राव के साथ ही मस्तिस्क भी प्रभावित होता है। जिसके कारण हम कई ऐसे कार्य भी कर जाते है जो सामान्य अवस्था में शायद हम नहीं करें।

युवाओं में तनाव का कारण

युवाओं में तनाव के कारण शराब, सिगरेट, ड्रग्स का प्रचलन बढ रहा है। युवाओं में तनाव के प्रमुख कारण है– संवेग, शारीरिक समस्याऐं, यौन संबंधी समस्याऐं, पारिवारिक कारण, कार्यस्थल की समस्याऐं, बेरोजगारी, इलेक्ट्रानिक गजेट्स सामाजिक संस्कृतिक चुंबकीय भौतिकतावादी मानसिकता Eat Drink – ठम डमततल प्रतिस्पर्धा आदि अनेक दबावों से युवा तनावग्रस्त है।

भारत वर्ष में योग दर्शन स्वस्थ जीवन जीने की कला के साथ ही समाधि के द्वारा प्राप्ति के रूप में प्रसिद्व रहा है। वर्तमान समय में भी योग का मानसिक शरीर व आंतरिक स्वस्थता की एक प्रचलित पद्धति के रूप में अपना विशिष्ट स्थान है।

योग का अर्थ है चित्त वृत्तियों का निरोध और इसका उद्‌देश्य है शारीरिक मानसिक आध्यात्मिक स्वास्थ्य के साथ ही पूर्ण को पाना। योग को जीवन का अंश बना कर हम मस्तिष्क व शरीर के मध्य साम्य तो उत्पन्न करते ही है साथ ही हमारे आंतरिक अंगो को भी पुष्ट करते है।

जैसा कि 'योग सार' में वर्णित है– आसनो के अभ्यास से आवेगी पर नियंत्रण होता है तथा मानसिक शान्ति की प्राप्ति होती है। यह समस्त शरीर में प्राण की समरूप करता है, भीतरी अंगो के स्वस्थ कार्य संचालन में सहायक है और उदर संबंधी विभिन्न अंगो के लिय मालिश का काम करता है। (योग सार– शिवानंद पृ–8) अत्यधिक चिंता, भावुकता,

विभिन्न समस्यायें, परेशानियाँ हमारी स्नायुओं को कमजोर बना देती है जिससे तनाव उत्पन्न होता है तथा तनाव से– मधुमेह, उच्च रक्त चाप, हृदय रोग, गठिया, कब्ज, अनिद्रा आदि विकार उत्पन्न होते है। स्नायु दुर्बलता के लिए स्नायु विश्राम अत्यंत आवश्यक है योगासनों से स्वभावतया विश्राम पाकर स्नायुमण्डल सशक्त बनता है, शरीर का व मन का तनाव समाप्त होता है। तनावसमाप्त होने से अन्य विकार भी स्वतः ठीक होते है।

महत्वपूर्ण योगासन व उनके प्रभाव

1. सिर, मस्तिश्क कान, नाक और ऑख के लिए – शीर्षासन, सर्वागासन, मत्स्यासन, सिंहासन, नेत्र संचालन,
2. गर्दन, कन्धे रीढ की हड्डी के लिए – सर्वागसन, हलासन, मत्स्यासन, अर्धमत्स्येन्द्र सर्पासन, ओर हंसासन ।
3. पाचन संस्थान अर्थात पेट आंतो व जिगर के लिए – पश्मिमोतानासन, मयूरासन, धनुरासन, पादहस्तासन, मत्स्येन्द्रासन, उड्डयान बंध योग मुद्रा ।
4. हॉथ–पैर व कद के लिए – ताडासन, सर्वागसन, मयूरासन, मत्स्यासन
5. प्राणायाम श्वासन संपूर्ण शरीर व मस्तिष्क को स्वस्थ रखने के लिए अत्यंत लाभकारी है।

   त्राटक, ध्यान में सहायक है स्मरण शक्ति को सशक्त करता है।
6. डिप्रेशन फोबिया, अकेलापन, अनिद्रा के लिए – प्राणयाम, त्राटक, रिलेक्सिंग एक्सीसाईज (मेडीटेशन) सूक्ष्म व्यायांम, सूर्यनमस्कार ध्यान, योगानिद्रा–श्वासन ।

''आसन सिद्ध होने पर योगी विविध द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है'' (पातंजल योग दर्शन 2/48)

योगासन व अष्टांकयोग के पालन से न केवल युवा वरन सम्पूर्ण मानवों पर पड़ने वाले पभावकारी परिणाम –

1. नैतिक अनुशासन
2. शारीरिक स्वास्थ
3. श्वासनियंत्रण व ध्यान
4. मानसिक सवास्थ्य
5. तनाव से मुक्ति
6. अनेक शारीरिक बीमारियों से मुक्ति
7. हृदय गति, रक्तचाप में सुधार?
8. अध्यात्मिक उन्नति
9. उत्तेजना व मासपेशियों के तनाव से राहत
10. शारीरिक ताकत, वे बढ़ती उम्र के प्रभाव को कम करता है।

अतः यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि तनाव से मुक्त होने में योगासन किस प्रकार सहायक है। कहा भी गया है कि '' स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिक निवास करता है।

मानसिक रूप से तनाव रहित रहने के लिए यह अत्यावश्यक है कि हम पहले शारीरिक रू५ से स्वस्थ व निरोगी रहें तभी हम स्वस्थ दृश्टिकोण निर्मित कर सकेगें । योगासन व प्राणायाम के नियमित अभ्यास द्वारा हम आधुनिक जीवन शैली से उत्पन्न विभिन्न तनावों, विकारों व विसंगतियों को अपने से दूर कर स्वस्थ व सुखदः जीवनयापन करने में समर्थ हो सकेगें।

संदर्भ ग्रंथ

1. स्वामी निरंजनानन्द स्रस्वती योग दर्शन बिहार योग विद्यालय, मुंगेर।
2. इन्द्रभूशण प्रारम्भिक मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।
3. जायसवाल, सीताराम समायोजन मनोविज्ञान, उत्तरप्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनउ
4. जीत भाई योगेन्द्र सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1995
5. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती मुक्ति के चार सोपान, विहार योग विद्यालय, मुंगेर, 1994
6. अग्रवाल लीला सरोजिनी सहज ज्ञान प्रदीप, निर्मल ट्रांसफार्मेशन प्रा. लि. पौड रोड़ कोथरूड़ पुणे महाराष्ट्र प्रथम संस्करण 2010
7. अरूण कुमार सिंह : उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान' मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेषन, पटना 2000
8. अग्रवाल बी.बी. : आधुनिक भारतीय षिक्षा और समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2000
9. पातंजल योग प्रदीप गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
10. योगांक गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
11. योगासन – स्वामी कुवलयानंद
12. योग सार – स्वामी शिवानंद

27

भारतीय इतिहास तथा पुरातत्व में योग परम्परा

डॉ. मोहन लाल चढ़ार

भारतीय पुरातत्व में योग साधना, प्राणायाम, ध्यान मुद्राओं एवं आसनो का बडे ही प्रमाणिक रुप से अंकन शिल्पकला में मूर्तियों के रुप में किया गया है। योग शास्त्र में जितनी भी आसनें ग्रहण की गई है। वह सभी जीव जन्तुओं व पेड पौधों से ग्रहण की गई है। जैसे मकर आसन मगर से कूर्म आसन कछुआ से, काक आसन कौवे से, मयूर आसन से मोर से, कुकुट आसन मुर्गा से, भुजंग आसन नाग से, गरुड आसन गरुड पक्षी से, पद्मासन कमल से, मत्स्यासन मछली से, मण्डूक आसन मेढक से, गौमूख आसन गाय से, पशुविश्रामासन पशुओ से,शवासन मानव शव से, सिहांसन सिंह से मर्जारि आसन बिल्ली से, वृश्रिक आसन विच्छू से,बकासान बगुला से एवं वृक्षासन, पेड से, ताडासन ताड नामक पेड से, पर्वतासन पर्वत से सम्बधित मानी जाती है। सर्वप्रथम इतिहास व पुरातत्व के अनुसार योग आसन से सम्बधित प्राचीनतम प्रमाण पॉच हजार बर्ष पूर्व हडप्पा सभ्यता से मोहेनजोदाडों व हडप्पा नामक स्थान से मिले है। हडप्पा सभ्यता के अनेक पुरास्थलो से योग मुद्रा युक्त पाषण मूर्तियॉ व मृण्मूर्तियॉ प्रकाश में आई है। जिनसे विविध योग आसनो की जानकारी मिलती है। उक्त अवशेषों के माध्यम से भारत में लगभग पॉच हजार बर्ष पूर्व योग सम्बन्धी विद्या की पुष्टि विद्वानों द्वारा की गई। सम्पूर्ण विश्व में भारत योग विद्या का जनक माना जाता है। योग विद्या को भारत वर्ष के अनेक महाऋषियों ने अपने अपने अनुभवों से सिद्ध कर प्रमाणित किया है। वैदिक कालीन साधकों व ऋषियों ने ध्यान, प्राणायाम, के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण मंत्रो की खोज कर इनका संग्रह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद उपनिषदों, आरण्यकों, वेदांगों षड्दर्शनों में किया था। वैदिककालीन योग साधकों में वामदेव ऋषि,, अगस्त ऋषि, कण्व ऋषि, विश्वामित्र ऋषि,, वशिष्ट ऋषि, भृगु ऋषि, अत्रि ऋषि,

भारद्वाज ऋषि एवं विदुषी स्त्रियों में अपाला, घोषा एवं लोपामुद्रा इत्यादि महत्वपूर्ण है।[1] इन सभी योगी जनों ने सघन वनों में योग साधना के माध्यम से अनुसंधान शालाएँ बनाकर अनेक महत्वपूर्ण गुप्त विद्याओं, मंत्रों व दर्शनों की रचना की थी। उक्त साधकों ने अपने अनुभवों को तत्कालीन समाज के सामने प्रस्तुत किया था। छठवी शती ईसा पूर्व की धार्मिक क्रान्ति के जनक योग साधना के महान साधक बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध एवं जैन धर्म के तीर्थकंर महावीर स्वामी माने जाते है।[2] ऐतिहासिक काल के प्रारम्भिक ग्रन्थ पाणिनी के अष्टाध्यायी में योग विद्या के प्रमाण मिलते है। सिकन्दर के आक्रमण के समय चौथी शदी ईसा पूर्व में विश्वविख्यात तक्षशिला विश्वविद्यालय में योग शास्त्र की उत्तम शिक्षा प्रदान की जाती थी।[3] मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला विश्वविद्यालय में योग की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने अपने जीवन काल में योग को महत्व दिया था। इसी कारण वह अपने जीवन के अन्तिम चरण में जैन योग गुरु भद्रबाहु के साथ जाकर दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य में स्थित श्रवणवेलगोला में योग के माध्यम से समाधि प्राप्त की थी।[4] बौद्ध धर्म के माध्यम से मौर्य शासक अशोक महान ने योग की एक विद्या विपश्यना ध्यान के महत्व को समझा और अपने जीवन में अपनाया था। भगवान शिव व हिरण्यगर्भ योग के जनक माने जाते है। भगवान परशुराम, राम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध, हनुमान, महावीर व पंतजली ने योग प्रविधियों का विस्तार किया था। भगवान विष्णु के वामन अवतार के समय राजा बलि से दान में तीन पग धरती ग्रहण की थी और अपनी योग माया के माध्यम से एक पग में पृथ्वी दूसरे पग में सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली थी। इसकी प्रमाणिक जान कारी हमें वामन पुराण में मिलती है। प्राचीन भारतीय दर्शन ज्ञान परम्परा में योग अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्द के रुप में प्रयुक्त हुआ है। पंतजलि के योग सूत्र में योग का अर्थ मानव की चित्त वृत्ति के निरोध से माना गया है। योग के महानतम साधक व्यास समाधि को योग मानते है। पाणिनी अपने ग्रन्थ अष्टाध्ययी में योग को युज समाधौ उल्लेख करते है। सार रुप में में कहा जा सकता है कि आत्मा का संसार की परम सत्ता व प्रकृति से मिलन ही योग है। योग के रुप में गीता का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। भगवान कृष्ण समस्त मानव के भावों को आत्मा में स्थिर रखने को योग मानते है। जैन धर्म में आत्म सिद्धि व मोक्ष की प्राप्ति को योग मानते है। प्राचीनकालीन साहित्य बौद्ध धर्म के सूत्त पिटक, अभिधम्म पिटक, जातक कथाओं, जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र व आगम ग्रन्थ, महाभारत, रामायण, पुराण, स्मृतियों, ग्रह्यसूत्र, साहित्य में सूर्य उपासना व योग, ध्यान, प्राणायाम, अष्टाग योग, अष्टसिद्धि योग, भक्तियोग, मंत्रयोग, हठयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, लययोग, राजयोग व क्रियायोग इत्यादि के के सम्बन्ध ा में बडी मात्रा में उल्लेख किया गया है। द्वितीय शदी ईसा पूर्व में महान योगी पंतजली ने योग के ग्रन्थ महाभाष्य की रचना की थी। वेद, उपनिषद्, भगवत गीता, हठ योग प्रदीपिका, पंतजली का महाभाष्य योगसूत्र, शिव संहिता, घेरण्ड संहिता, सांख्य दर्षन, गोरक्षषतक, योग वशिष्ठ इत्यादि प्रमुख ग्रन्थ माने जाते है। पुरातत्व में जितनी भी देव मूर्तियों का निर्माण किया गया लगभग सभी योग आसनों में व मुद्राओं में निर्मित की गई है। वैष्णव मूर्तियों में, शैव मूर्तियों में, शाक्त मूर्तियों में, जैन मूर्तियों में एवं बौद्ध मूर्तियों में

अनेंक योग मुद्राएँ व योग से सम्बधित आसन आसन जैसे अभय मुद्रा, अंजली मुद्रा, कायोत्सर्ग मुद्रा, बुद्धाश्रमन मुद्रा, भू–मुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा, धर्माचक मुद्रा, गजहस्तमुद्रा एवं दण्डाहस्त मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, हरिण मुद्रा, ध्यान व योग मुद्रा,कर्ण मुद्रा, कटियालम्विता मुद्रा, करतारीहस्त मुद्रा, कटक हस्त मुद्रा, नमस्कार मुद्रा, अन्नतशायी मुद्रा, गरुण मुद्रा, तरजनी मुद्रा, तरपन मुद्रा, केशपना मुद्रा, शुची हस्त मुद्रा, उत्तराबोधी मुद्रा, वरद मुद्रा, वज्रहुमकारा मुद्रा, वितर्क मुद्रा, विमाया मुद्रा, अक्षमाला मुद्रा, अग्नि मुद्रा, वायु मुद्रा, स्थानक मुद्रा, पदमासन मुद्रा, शंख मुद्रा, नटराज आसन, योगासन इत्यादि प्रमुख है। उक्त मुद्राएँ व योग आसनों लगभग सभी देवी देवताओं को पत्थर में उत्कीर्ण किया जाता है।[5] भगवान विष्णु, शिव व ब्रह्मा को योगासनों के साथ बनाया गया है, अर्थात हमारे प्रमुख देवताओं की प्रमुख योग साधना थी । इसकें प्रमाण हमें महाकाव्यों, पुराणों, स्मृतियों, उपनिषदों के साथ साथ प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में मिलते है। भगवान शिव को अनेक विद्धान योग का जनक एवं अनेक योग प्रविधियों के जनक मानते है। कुछ विद्धान हिरण्यगर्भ को योग का जनक मानते है। भगवान शिव की प्राचीन भारतीय प्रतिमा शास्त्र में मुर्ति हमेंशा ध्यान मुद्रा में बनाई जाती है। दक्षिण भारत में योंग की एक मुद्रा नटराज मुद्रा में शिव को उत्कीर्ण किया गया है। भगवान शिव योग के उत्कृष्ट साधक एवं महायोगी माने जाते है। साहित्य के अनुसार भगवान शिव ने माता पार्वती को गूढ और गुप्त योग की शिक्षा दी थी, जो शिव संहिता[6], शिवपुराण[7], शिव स्वरोदय[8] इत्यादि में वर्णित है।

भगवान विष्णु को योग के महान साधक के रुप में प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान में हमारे वास्तुशिल्प के कलाकारों ने उर्त्कीण किया है।[9] भगवान विष्णु को क्षीरसागर अर्थात समुद्र में नाग कुण्डली के उपर अन्नतशायी मुद्रा में निर्मित किया जाता है।[10] जो योग साधना की एक मुद्रा है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भगवान विष्णु सर्वोच्च देव पद पद स्थापित थें। तत्कालीन समय में योग साधना के आधार पर योग्यता को निधारित किया जाता था। विष्णु की प्रतिमाएँ आसन मुद्रा, शयन मुद्रा व स्थानक मुद्रा में निर्मित की जाती है। उक्त मूर्तियॉ विभिन्न योग मुद्राएँ व योग आसनों में उत्कीर्ण की गई है। भगवान विष्णु के दशावातार प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में निर्मित किये गये है। दशावतारों में से कृष्ण अवतार व बुद्ध अवतार की प्रतिमाओं को ध्यान अवस्था में निर्मित की जाती है। उल्लेखनीय है कि भगवान कृष्ण ने गीता में कर्म योग, राजयोग, भक्तियोग, ध्यान योग, सन्यास योग का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। रामायण में उल्लेख मिलता है कि भगवान राम को उनके गुरु वशिष्ठ ने योग की उत्कृष्ट शिक्षा दी थी। रामायण में भक्तियोग के अनेक महत्वपूर्ण उदाहरण मिलते है। विष्णु की प्रतिमाएँ अन्नतशायी, शेषशायी, जलशायी, पद्भनाभ के रुप में निर्मित की गई है। इस रुप में विष्णु को ध्यान मुद्रा में शयन करते हुए दिखाया गया है। अन्नतशायी विष्णु की गुप्तकालीन कला में निर्मित प्रतिमा देवगढ जिला ललितपुर उत्तरप्रदेश से प्राप्त हुई है। इसमें विष्णु को ध्यान मुद्रा में शेषनाग की कुण्डली पर शयन आसन पर उत्कीर्ण की गई है। उनके आयुद्धों को ध्यानमुद्रा में मानवाकार रुप में स्थानक मुद्रा में बनाया गया है। ब्रह्मा को विष्णु की नाभि से निकलते हुए एक कमल पर निर्मित किया गया है।

ब्रह्मा को ध्यान मुद्रा में निर्मित किया गया है। इस आधार पर ब्रहृमा के जनक विष्णु माने जा सकते है। एरण की गुप्तकालीन कला में विष्णु को गरुडासीन मुद्रा व समभग मुद्रा या स्थानक मुद्रा में निर्मित किया गया है। उक्त दोनों प्रतिमाओं में भगवान विष्णु को योगियो की भॉति अर्धोन्मीलित अवस्था में उत्कीर्ण किया गया है।[11]

मध्यभारत के महत्वपूर्ण पुरस्थल एरण की गुप्तकालीन कला में निर्मित भगवान विष्णु का तीसरा अवतार पशुवराह प्रतिमा का विशालकाय स्वरुप दिखाया गया है। भगवान वराह के शरीर पर हजारों की संख्या में योगियों की लघु मूतियॉ निर्मित की गई है। ये सभी मूतियॉ ध्यान अवस्था में निर्मित की गई है। इस प्रकार गुप्तकाल से लेकर पुर्वमध्यकाल एवं उत्तरमध्यकाल में अनेक वराह की प्रतिमाए निर्मित की गई उन सभी प्रतिमाओं में वराह के शरीर पर योगियो की लघु मूर्तियों को निर्मित किया गया है। जिनसे स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में योग का काफी विकास हो चुका था।[12] मध्यभारत में गुप्तकालीन कला में भगवान विष्णु के दसवे अवतार माने जाने वाले बुद्ध को वल्कल वस्त्रधारी योग की मुद्रा पदमासन में ध्यान मुद्रा में वरद मुद्रा के साथ बनाया गया है। एरण में एक बुद्ध का मस्तक मिला है जो योग मुद्रा में निर्मित है। बुद्ध की प्रतिमाए मथुरा कला शैली व गधार कला शैली में निर्मित की जाती है। दोनों कला शैली में भगवान बुद्ध को पदमासन, घ्यान मुद्र व वरद मुद्रा में निर्मित किया जाता है। जैन तीर्थकरों की प्रतिमाऍ योग मुद्रा, पदमासन मुद्रा व वरद मुद्रा में निर्मित की हुई मिलती है। मध्यभारत उत्तर भारत व दक्षिण भारत में भगवान शिव की प्रतिमाऍ बडी संख्या में मिली है। शिव को योगी मुदा में, ध्यान मुद्रा में, पदमासन मुद्रा में निर्मित किया गया है। उल्लेखनीय है कि शिव योग के जनक व योग के महान साधक माने जाते है। देवी पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती व अन्य देवीयो को योग मुद्रा, पद्मासन एवं वरद मुद्रा में उत्कीर्ण किया गया है। गणेश कर्तिकेय को योग की विभिन्न मुद्राओं में दिखाया जाता है। गौण देवी देवताओं में कुबेर, हनुमान, सूर्य, अष्टदिग्पाल, नाग, गन्धर्व इत्यादि को योग की ध्यान मुद्रा में निर्मित किया गया है।[13]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय इतिहास तथा पुरातत्व में योग परम्परा में हमें हडप्पा सभ्यता से लेकर ग्रामीण ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति महाजनपदकाल, बौद्ध एवं जैन काल मौर्य काल, शुंग काल, कुषाण काल, सातवाहन काल, वाकाटक काल, गुप्त काल, पूर्व–मध्यकाल, उत्तर–मध्यकाल की मूर्तिकला, इतिहास व साहित्य में योग की परम्परा का प्रभाव पूर्ण रुप से देखने को मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास व पुरातत्व में योग साधना के अनेक प्रमाणिक उदाहरण देखने को मिलते है। प्राचीन भारतीय इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते है जिनसे ज्ञात होता है कि जिस व्यक्ति ने भी योग किया है उसने अपना नाम महान व्यक्तियो की सूचि में बनाया है। चाहे वह महाऋषि हो, राजा हो, या आम व्यक्ति हो। उन नामों में परशुराम राम, कृष्ण, बलराम वामदेव ऋषि,, अगस्त ऋषि, कण्व ऋषि, विश्वामित्र ऋषि,, वशिष्ट ऋषि, भृगु ऋषि, अत्रि ऋषि, भारद्वाज ऋषि, संदीपनी, राजा कर्ण, एवं विदुषी स्त्रियों में अपाला, घोषा एवं लोपामुद्रा, जनक,

पाणिनी, बुद्ध, महावीर व जैनों के 23 तीर्थकंर, ऋषभनाथ से लेकर पार्श्वनाथ तक, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, पंतंजली, वाल्मीकि वेदव्यास, कौटिल्य या विष्णुगुप्त, राजा भृहतरी चरक, सुश्रुत, धन्वतंरि, बागभट्ट, कालीदास, आर्यभटट, समुद्रगुप्त, वराहमिहिर, वाणभटट, राजा हर्ष, राजशेखर, कल्हण, कबीर, रहीम, तुलसीदास, शंकराचार्य, महावतार बाबाजी श्यामा चरण परमहंस योगा नन्द महाश्य व हरिहरा नन्द के नाम उल्लेखनीय है। उक्त महाविभूतियों ने योग साधना के माध्यम से अपना नाम इतिहास व भारतीय संस्कृति में हमेशा हमेशा को अंकित करवा दिया।

सन्दर्भः

1. ऋग्वेद
2. झा, डी.एन. एवं श्रीमाली कृष्ण मोहनः प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, पृष्ठ, 138
3. वही, 171
4. वही, 177
5. गुप्त, आय. एस.ः आइकोग्राफी ऑफ द हिन्दुस, बुद्धीस्ट एण्ड जैनस, बाम्बे, 1980, पृष्ठ, 5–9
6. स्वामी महेशानन्द एवं अन्यः शिवसंहिता, कैवल्यधाम, श्री नन्दमाधव, योग मंन्दिर समिति लुनावाला, पुणे महाराष्ट्र, 1999
7. शिवपुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश
8. स्वामी सत्यानंन्द सरस्वतीः स्वर योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुगेर, बिहार, 1994
9. गुप्त, आय. एस.ः आइकोग्राफी ऑफ द हिन्दुस, बुद्धीस्ट एण्ड जैनस, बाम्बे, 1980, पृष्ठ, 29
10. वही
11. दुबे नागेशः एरण की कला, सागर मध्यप्रदेश,1997 पृ.101
12. वही, 105
13. वही, 132.135

28

एक पुरोकथाः देव वैद्य अश्वनी

प्रोफेसर लाल अमरेन्द्र सिंह

वैदिक ग्रन्थों में अनेक कथायें (मिथिक) दी गयी हैं जो सामान्यतया देवी–देवताओं की गाथा लगती है परन्तु यथार्थ में कोई महत्वपूर्ण तथ्य होता है जो सांकेतिक रुप में प्रकट किया जाता है। जयपुर के महामहोपाध्याय पं0 मधुसूदन ओझा ने अनेक वैदिक कथाओं में छुपे गहरे वैज्ञानिक तथ्य प्रकट किये हैं। उनकी शिष्य परामपरा में पं0 गिरिधर शर्मा एवं श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने ऐसे अनेक प्रकरण स्पष्ट किये हैं। उनमें से प्रमुख कथा है देव वैद्य अश्वनी कुमार की। अष्वनी कुमार सूर्यदेव के पुत्र बताये गये हैं। सूर्य (तेज शक्ति, इनर्जी सोर्स) के दो पुत्रों का वर्णन मिलते है एक हैं यमदेव (काल) या मृत्यु के स्वामी और दूसरे हैं अश्वनी, जो रोग और मृत्यु को भी जीतने वाले कहे गये हैं। अपार जीवनी शक्ति के स्वामी होने के कारण उन्हें सारे रोगों का मुक्तिदाता अथवा देवताओं के वैद्यराज माना गया है। सूर्य ऊर्जा शक्ति (इनर्जी) के पुंज कहे गये हैं। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। सूर्य को विवस्वान भी कहा गया है। अर्थात सारे संसार का रचयिता और ऊर्जा दायक। वर्शा, ऋतुयें, वनस्पतियां, जीव–जन्तु और मानव भी सूर्य के माध्यम से ही ऊर्जा और शक्ति प्राप्त करते हैं। यदि आक्सीजन न हो तो जीवन संभव नही। आक्सीजन मिलती है सूर्य की कृपा से। सूर्य पुत्र की रोग हरण क्षमता भी है जुड़ी हुई सूर्य की ऊर्जा प्रदाता शक्ति से। वेदों में अश्वनी कुमारों को जुड़वा पुत्र कहा गया है। सारे प्राणियों में ऊर्जा का अधिकतम संचयन और लम्बी अवधि तक उपयोग केवल 'अश्व' को उपलब्ध है। चीता अधिक तेज भाग सकता है परन्तु केवल एक–दो किलोमीटर तक। घोड़ा घण्टों तक लगातार चल या दौड़ सकता है। दो सदी पूर्व लोग घोड़े पर कई सौ मील की यात्रा तक कर लेते थे। घुड़सवार सेना के बल पर सिकंदर महान यूनान से चलकर फ्रांस आदि देशों को जीतता हुआ भारत तक पहुंचा था जो वहां से कई हजार मील दूर था। वेद साहित्य में एक और कथा आती है सूर्य और उनकी पत्नी संज्ञा की (जो सूर्य ऊर्जा से व्यथित होकर जंगलों में

घोड़ी के रुप में जा छिपी थी) संज्ञा के पुत्र ही थे अश्वनी कुमार द्वय। वेद की भाषा कठिन और अलंकारिक है। जिसका स्पष्टीकरण मिलता है 'निरुक्त' नामक ग्रन्थ में। निरुक्त के अनुसार ''अश्वनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वम्'' (12:1) अर्थात 'अश्वनी' का अर्थ है तन्मयता या तल्लीनता के द्वारा पूर्ण करना। ऋग्वेद में कई स्थानों पर अश्वनीकुमारों का दूसरा नाम भी उपयोग में लाया गया है वह है 'नासात्य द्वय' अर्थात वह जो नाक से उत्पन्न हुआ और जोड़े में है। मानव में नाक से उत्पन्न ऊर्जा के श्रोत हैं इड़ा–पिंगला जो कि शरीर को जीवनी शक्ति देते हैं। यदि श्वास–प्रश्वास न हो तो जीवन सम्भव नही। 'नासात्य द्वय' इसी श्वास–प्रश्वास की क्रिया के द्योतक हैं अर्थात धीमा नियमित क्रम बन जाता है तो उसमें अपूर्व रोग हरण क्षमता आ जाती है। योग में प्राणायाम की यही साधना है।

अश्वनी (नासात्य) की यही वैधक क्षमता है जिसके बल पर उन्होंने सैकड़ो कठिनतर रोगों को ठीक किया यहां तक कि मस्तिष्क क्षमता पुनः प्रदान कर दी। वेद साहित्य में ऐसे सैकड़ो उदाहरण दिये गये हैं। उन कथाओं को तो हम याद रखें पर नासात्य द्वय (ऊर्जा श्रोत) के मूल श्रोत को हम भूल गये। निरुकष्कार के अनुसार प्राणायाम से प्राप्त 'तन्मयता' की दशा ही वेदभाषा का अश्वनी कुमार है योग विज्ञान देव वैद्य नासात्य को प्रत्यक्ष प्राणायाम के रुप में प्रस्तुत करता है। क्या हम उसकी रोग हरण क्षमता का उपयोग करने को प्रस्तुत हैं ?

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आयुर्वेद का इतिहास (हिन्दी समिति) ग्रंथ माला–33; विद्यालंकार, 1960, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ.प्र.
2. आयुर्वेद का इतिहास (प्रतापसिंह कविराज), विक्रम स्मृति ग्रंथ, वि.सं. 2001
3. होम लेः स्टडीज इन द मेडिसीन ऑफ ऐंश्येंट इंडिया.

29

योग और मनोविज्ञान

आस्था सोनी

योग मानव चेतना में परिवर्तन लाने का विज्ञान है जबकि मनोविज्ञान मानव चेतना का समग्र अध्ययन है। रालो मे[1] ने कहा था कि जहां पर मनोविज्ञान के अध्ययन का अन्त होता है वही से योग विज्ञान का प्रारम्भ होता है। पतंजलि ऋषि के शब्दों में ''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः''[2] अर्थात योग की सारी साधना मनः पटल में उठने वाली समस्त बृत्तियों (उथल पुथल) को षान्त कर सहज मनो संतुलन (मेन्टल इक्वीली ब्रियम) ले आने की दशा पाना है। जहां पर मनोविज्ञान नार्मल और एबनार्मल दोनों प्रकार की चित्त वृत्तियों का अध्ययन है वही योग विज्ञान नार्मल स्तर को साधना के द्वारा सुपर नार्मल स्थिर मनशस्विता की ओर ले जाता है योगी अरविन्द ने इसे ही 'प्रति मानस' दशा कहा था।

आज के व्यस्त जीवन की उहापोह, भाग–दौड़, बढ़े मनोविज्ञान संवेग एवं तनाव व संत्रास जहां पर मनो संतुलन बिगाड़ते हैं, मनोक्षमताओं का क्षरण करते हैं वही पर योग प्राणायाम और ध्यान के द्वारा मनोसुस्थिरता और मानसिक इक्वीली ब्रियम पुनः प्रस्थापित कर मानव की मनोक्षमताओं को उच्चतम स्तर तक पहुंचा देता है। इस रुप में योग विज्ञान मनोविज्ञान विषय का कार्य क्षेत्र बढ़ाकर उसे और सक्षम व प्रभावकारी बना देता है।

मनोविज्ञान के विशद आयाम हैं जो जीवन के हर क्षेत्र में फैले हुए हैं। व्यापार, उद्योग, प्रबंधन सामूहिक क्रिया कलाप, राजनीति, कूटनीति, अर्थनीति, व्यवहार नीति, प्रशासन नीति, दण्डनीति, शिक्षानीति, युद्ध कला, खेल–कूद स्पर्धा आदि सभी क्षेत्रों में मनोविज्ञान का प्रवेश हो चुका है और उपादेयता सिद्ध हुई है। इस रुप में मनोविज्ञान का अति विस्तारित क्षेत्र जबकि योग विज्ञान केवल मानव जीवन के मूल तत्व ''संचेतक एवं उसका उदेशय'' विषय क्षेत्र तक सीमित है परन्तु सारी मानव क्रियाओं का आधार होने के कारण योग विज्ञान तो मनोविज्ञान का आधार स्वरुप बन जाता है न केवल इतना, वरन्, योग विज्ञान मानव चेतना में समा गई विकृत्तियों, कुसंस्कारो, हानिकर संवेगो और मनो दशाओं का नियमन कर

निराकरण कर हमें उच्चतर सुस्थिर मनोस्थिति प्रदान करता है जिसमें संज्ञान और कार्य क्षमता कई गुणा बढ़ जाती है।

अन्नत काल के जन्मजात संस्कार, वातावरण से गृहीत अनेक व्यवहार–क्रम, अभिरुचि–मनोवृत्ति व अर्धचेतन प्रभावों से हमारे कार्य और चित्त वृत्तियां एक विशेष सांचे में ढ़ल जाती है। उन्हीं के अनुरुप हमारा जीवन क्रम चलने लगता है। ये वृत्तियां हमारी आन्तरिक मनोक्षमता का क्षरण करती हैं शोषण करती है और विलुप्त कर देती हैं। मनोविज्ञान उनमें से कुछ का अध्ययन अवश्य करता है परन्तु उनके प्रभावों को रोकने में अक्षम है। योग विज्ञान के यम–नियम मनोनियमन के सफल प्रयास हैं। आसन देह क्षमता बढ़ाने में एवं रोग निराकरण में सहायक है जबकि प्राणायाम और ध्यान के द्वारा हम संचित दृढ़ीगत कुवृत्तियों एवं इन्द्रियगत दुगुर्णों को नष्ट करने में सक्षम हो जाते हैं जिससे मानव का शुद्ध–वुद्ध मूल तत्व (जिसे आत्मा कहा गया है) प्राप्त हो सके। मनोविज्ञान व्यक्त्वि का अध्ययन अवश्य करता है परन्तु उसी स्तर पर अवरुद्ध हो जाता है। योग विज्ञान आगे बढ़कर मानव व्यकित्व के परावर्तन और परिमार्जन का विशद आयोजन करता है।

मनोविज्ञान से पिछले दशक में नया ज्ञान क्षेत्र विकसित हुआ है। विकासवादी मनोविज्ञान जिसके अन्तर्गत रुढ़िगत, आदिम, व्यवहार, व्यवहार का विकास क्रम और आगामी विकास क्रम का अध्ययन किया जाता है। जूलियन हक्सले आदि का समूह मानता है कि विकास क्रम सतत् क्रिया (Emergent Evaluationism) है और आज भी चल रही है। प्रसिद्ध इतालियन विद्वान तेलार्द शार्दी[3] के अनुसार मानव विकास क्रम की अगली कड़ी 'चेतना स्तर' के विकास (छवव`चीमतम) की हैं। जिसमें मानवीय मनो क्षमताओं का उच्चतम विकास होगा। प्रसिद्ध फ्रांसीसी वैज्ञानिक ली काप्ते न्वाय[4] और अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान जैक्वी वी मारक्वेट[5] के अनुसार भी मानव का विकास क्रम 'चेतना' संस्कार की ओर जा रहा है। योगी अरविन्द की भी मान्यता है कि आगामी सदी में मानव चेतना सकारात्मक दिशा की ओर बढेगी। 'अति मानस' दशा में मानव का चारित्रिक व आध्यात्मिक विकास होगा। योग की सोच भी उसी दिशा में सक्रिय है। भारतीय ऋशियों ने सैकड़ों वर्शो पूर्व योग विज्ञान की क्रियाओं के द्वारा उसी विकास क्रम की दिशा में प्रगति पाने का मार्ग प्रशस्त किया है जो चेतन दषा विकासवाद 10000 वर्ष के बाद प्राप्त कर सकेगा उसे ही योग साधना के द्वारा पांच या दस वर्ष के भीतर प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु उसे पाने हेतु दृढ़संकल्प, सतत् अभ्यास और नियमित कठोर जीवन क्रम की आवश्यकता होगी। इस रुप में योग विज्ञान आगामी देशकों का विकसित मनोविज्ञान हो जायेगा। जिसमें चेतन स्वरुप के उन्ययन का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा।

पाश्चात्य परम्परा में योग को केवल फिटनेश एक्सरसाइज का अंग मान लिया गया है। धन लोलुप योग प्रशिक्षकों के प्रचार के कारण ऐसी धारणा बन गयी है। महेष योगी ने सामान्य सहज प्राणायाम को ही भारी भरकम नाम 'भावतीत ध्यान' देकर प्रसारित किया। उससे मनश्चिन्ता व संत्रास घटाने में आशातीत सफलता मिली परमहंस योगानन्द का

'क्रियायोग' केवल थोड़े से साधको में ही प्रचारित हो पाया इस कारण ज्ञान जगत में उसकी चर्चा भी प्रारम्भ नही हो पाई। प्राणायाम और ध्यान की योग सम्मत विधियां अभी भी पश्चिम तक पहुंच नही पाई है। बिना योग्य गुरु के उनका अभ्यास भी कठिन है। सक्षम योगाभ्यासी संत योग में व्याप्त बाजार के निकट भी जाना पसन्द नही करेगा। जब तक योग को वैज्ञानिक स्वरुप एवं सतत् अभ्यास व विरागभाव का साथ नही मिलता इसका समुचित विकास सम्भव नहीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उलमैन : हैण्डबुक आफ क्लिनीकल साइकोलौजी (1964) मैक्ग्रोहिल।
2. वेन्शन एवं क्लिपर : दि रिलेक्शेसन रिस्पांस (1975) कालिन्स सन्सक्लासगो, पृष्ठ 75.
3. आर्नस्टीन : दि साइकोलौजी आफ कन्शसनेस (1975) फ्रीमैन लंदन
4. फेहर एण्ड टौरवर : एफ.पी.आई. स्टडी ऑफ 49 इनडिवीयुलस, साइन्टीफिक रिसर्च ऑन टी.एम. प्रोग्राम भाग एक.
5. फर्म्यूसन एवं कोर्बानः साइकोलौजीकल फाइन्डिग्स ऑन टी.एम.साइन्टीफिक रिसर्च आन टी.एम. प्रोग्राम भाग 1 (1975)
6. वेन्शन एवं क्लियर : दि रिलैक्शेसन रिसपान्स (1975) कालिन्स ग्लासगो, पृष्ठ 70—71

30

योगी गोरखनाथ और कुण्डलिनी शक्ति

डॉ0 दीनानाथ राय

भारत के धर्माचायों की परम्परा में योगी गोरक्षनाथ का एक विशिष्ट स्थान है। वे मध्यकाल के एक महान योगी और सन्त थे। हमारे देश में जनजीवन को प्रभावित करने वाले महापुरूषो में उनकी गणना शंकराचार्य के बाद की जाती है। जिनमें पतंजलि योग, शैवमत, कौलमत तथा हठयोग का सुन्दर समन्वय है। योगी गोरक्षनाथ की गणना वज्रयानी बौद्धों के चौरासी सिद्धो में की जाती है। योगी मत्स्येन्द्रनाथ के योग शिष्य गोरक्षनाथ थे। उनकी गणना योगिक रहस्यवाद के संचालकों में है। योगी गोरक्षनाथ हठयोग के जन्मदाता है। हठयोग की मूल प्रक्रिया है– ''इन्द्रिय निग्रह द्वारा मुक्ति प्राप्ति।'' गोरक्ष का अर्थ है– इन्द्रियों की रक्षा करने वाला तथा ''नाथ'' वह है जो मुक्ति प्रदान करता है। योगी गोरखनाथ बीते हुए युग के एक अद्‌भुत व्यक्ति है।

योगी गोरक्षनाथ ने हठयोग का लक्ष्य 'शिव' और 'शक्ति' का मिलना माना है। यह कुण्डलिनी योग का उद्‌देश्य है, जिसका पतंजलि के 'योगसूत्र' में उल्लेख नही है। योगी गोरक्षनाथ ने हठयोग में विभिन्न मुद्राओं का उल्लेख किया। इसमें प्राणवायु को रोकने का प्राविधान है। इनमें मूलबन्ध, उड्डियान बंध और जालंधर बंध द्वारा प्राणों को रोकने का उल्लेख है। खेचरी मुद्रा में जिहवा को ऊपर की ओर करके तालु में प्रविष्ट करके प्राणों का निरोध किया जाता है। इस तरह अनेक प्रकार की मुद्राओं द्वारा हठयोगी शरीर के स्नायु और मॉसपेशीयों को नियंत्रित करते है। इसके नियंत्रण से ही प्राणों का नियंत्रण सम्भव होता है।

योगी गोरक्षनाथ की साधना प्रणाली आसन प्राणायाम, मुद्रा और नादानुसंधान पर आधारित है। सहस्रार चक्र में शिव–शक्ति को सहजावस्था अथवा उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है। गोरक्ष साहित्य में शरीर में स्थित प्रमुख नाड़ियॉ कुण्डलिनी जागरण के लिए अपेक्षित है। शरीर में स्थित 72 हजार नाड़ियो में तीन नाड़ियॉ प्रमुख है– इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इड़ा और पिंगला श्वास वाहिनी नाड़ी मानी गई है। श्वास और प्रश्वास की प्रक्रिया

इनके द्वारा होती है। सूर्य और चंद्र द्वारा जिस प्रकार काल की गणना होती है, उसी प्रकार इड़ा और पिंगला नाड़ी जीव के काल को प्रकट करती है। सुषुम्ना नाड़ी, इड़ा और पिंगला नाड़ी के मध्य मेरूदण्ड में स्थित है। सुषुम्ना नाड़ियो का उद्भव स्थान मूलाधार है, जिसे 'युक्त त्रिवेणी' कहा गया है। आज्ञा चक्र में इड़ा, पिंगला का सुषुम्ना, इन तीनों प्रमुख नाड़ियों का समागन होता है जिसे योगी गोरखनाथ 'मुक्त त्रिवेणी' कहते है।

योगही गोरक्षनाथ की प्रमुख रचनाओं में सिद्धसिद्धान्तपद्धिति, हठयोग प्रदीपिका, गोरक्ष शतक, योग बीज, अमनस्क योग, गोरख बानी, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह प्रमुख है। योगी गोरक्षनाथ की लगभग सभी रचनाओं में कुण्डलिनी साधना का विधिवत वर्णन है। उनकी सम्पूर्ण साधना सिद्ध गुरू की देख–रेख में चलती है। इसमें सारे रहस्यो को सुलझाकर इसका क्रम निश्चित किया गया है, जिससे साधक को कठिनाई नही होती है। इसमें चक्रो की स्थिति, चक्रों के स्वरूप, उनके आधार, लक्षण, नाड़ी, बन्ध, म्रुदा इत्यादि का वर्णन है। साधना का उदे्श्य परमशिव की प्रप्ति है। महायोगी गोरक्षनाथ के शक्ति की उपासना का प्रधान साधना पिण्ड को स्वीकार किया है। मानव शरीर में अनेक दिव्य शक्तियों का भण्डार है। कुण्डलिनी एक व्यापक चेतन शक्ति है। यह मानव पिण्ड के मूलाधार चक्र में है, जो 'व्यक्ति सत्ता' का विश्व सत्ता' के साथ जोड़ता है, सर्वव्यापक होते हुए कुण्डलिनी शक्ति की अभिव्यक्ति मानव शरीर में ही होती है। महायोगी गोरक्षनाथ ने पुस्तक 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में कुण्डलिनी जागरण और इसके महत्व पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। मानव शरीर में कुण्डलिनी सुप्त अवस्था में विद्यमान है। मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी जब तक योग साधना या गुरू कृपा के द्वारा जाग्रत नहीं की जाती, तब तक यह शोक, मोह, चिन्ता आदि के द्वारा बन्धनकारिणी है। जब तक कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में सुसुप्त और अधोमुखी है, तब तक यह प्राणियों को जन्म, मरण के फल से प्रभावित करती है। कुण्डलिनी जब मूलाधार से सहस्रार चक्र का भेदन कर सहस्त्रार स्थिति शिव में अर्न्तलीन हो जाती है, तब वह प्राणी के जन्म–मरण के फलों के प्रभाव और मन के विकारो को नष्ट करने में समर्थ होती है। समस्त सांसारिक बंधन, अविद्या, रोग–शोक प्रवृद्ध–कुण्डलिनी के ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करने पर समाप्त हो जाता है। इसके प्रभाव से साधक शिव स्वरूप हो जाता है।

मानव पिण्ड में शिव सहस्त्रार और शक्ति केन्द्र मूलाधार चक्र को बताया गया है। इन्हे परस्पर जोड़ने वाली शक्ति ही 'कुण्डलिनी' है। जीवसत्ता का केन्द्र जननेन्द्रिय मूल में है तथा ब्रह्मसत्ता का ब्रहारन्ध्र में कुण्डलिनी साधना की समस्त गतिविधियां प्रायः इसी क्षेत्र को परिष्कृत करना है। योगी गोरखनाथ की पुस्तक 'गोरक्षपद्धति' में जहां सामान्य रूप से योग सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, वही पर सूक्ष्म रूप से षट्चक्रो ाक सांकेतिक वर्णन उपलबध है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में नौ चक्रो का वर्णन है। 'विवेकतार्तण्ड' में आधार चक्र, स्वाधिश्ठान चक्र, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि आज्ञा और ब्रह्मरन्ध्र, इन सात चक्रो को बताया गया है। यह सभी चक्र कुण्डलिनी के ऊर्ध्वारोहण के समय ऊर्जा केन्द्र का कार्य करते है। कुण्डलिनी शक्ति का एक के बाद–एक क्रमशः उन चक्रों में पहूँचना आत्म साक्षात्कार की

दिशा में साधक द्वारा एक पग आगे बढ़ने का संकेत देता है। ज्यों–ज्यों प्राण सुषुम्ना मार्ग द्वारा इन चक्रों में पहूँचता है, त्यों–त्यों इन चक्रो के उद्घाटित होने के साथ–साथ साधक को चक्रों की शक्तियों पर उसका अधिकार भी प्राप्त होता है। कुण्डलिनी शक्ति के सहस्रार चक्र में पहूँचते ही साधक प्राण और मन के साथ एकत्व की अनुभूति करता है।

जब कुण्डलिनी षक्ति मूलाधार में सुप्त अवस्था में रहती है अधःशक्ति। जब यह मणिपूरक चक्र मे ंप्रवेश करती है मध्य शक्ति और ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होने पर ऊर्ध्वशक्ति कही जाती है। इसी तरह स्थूल एवं सूक्ष्म कुण्डलिनी का निवास स्थान मूलाधार चक्र है। मूलाधार चक्र की स्थिति रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले छोर में बतायी जाती है। यह गुदा स्थल से दो अंगुल ऊपर और लिंग से दो अंगुल नीचे, चार अंगुल चौड़ा चतुर्दल आधारपद्म में है। उसके माध्य त्रिकोणाकार योनि है, इसे कामपीठ या कामाक्ष्या पीठ भी कहते है। इसमे सुशुम्ना द्वार के सम्मुख स्वयंभू महालिंग है। इस स्वयंभू लिंग के साढ़े तीन कुण्डल मारकर कुण्डलनी शक्ति सोई पड़ी है। इस सुषुप्तावस्था में भी वह शरीर– धारण का कार्य करती है। स्वभाव से चेतन होते हुए भी यह अप्रबुद्ध (सुशुप्त) और अधोमुखी कुण्डलिनी संसारी पुरूषो के लिए शोक–मोह, रोगदि प्रपंचो का कारण है। वही शक्ति जाग्रत एवं ऊर्ध्वमुखी होने पर साधक अद्वितीय व्यक्तित्व–क्षमता अपने में उत्पन्न करने में समक्ष होता है। वह समस्त दुखों को दूर करने में समर्थ होता है।

शरीर के भीतर स्थित ब्रह्मग्रंथि, विष्णु का भेदन होने पर जीवात्मा, ब्रह्मग्रंथि में परमतत्व का बोध पाता है। कुण्डलिनी जाग्रत होकर सुषुम्ना नाड़ी के भीतर प्रवेश करने पर ब्रह्मग्रंथि का भेदन होता है और कुण्डलिनी विद्युत रेखा के समान सुषुम्ना नाड़ी में ऊपर की ओर चढ़ने लगती है, वह एक–एक चक्रो को जाग्रत करती हुई अनाहत चक्र में पहूँचकर विष्णु ग्रंथि और आज्ञाचक्र में प्रवेश कर रूद्रग्रंथि का भेदन करती है। इस प्रकार ब्रह्मग्रंथि में पहूँचकर शक्ति, शिव में मिल जाती है। ऐसा होने पर ही उसे परमात्म–दर्शन होता है। ब्रह्मग्रंथि में जीवात्मा योगी–शिव का साक्षात्कार करता है। इस त्रिकुटी में इड़ा, पिंगला और सुशुम्ना के संगम स्थल है।

योगी गोरक्षनाथ के समय के पहले तक भारतीय आध्यात्म में वामाचार का समावेष हो गया था। इस काल में सात्विक वृत्ति औरा शुद्ध जीवन समाप्त हो रहा था। मूल भारतीय संस्कृति समाप्त हो रही थी। ऐसे विषम समय में गोरखनाथ ने निमर्म हथौड़े की चोट से कुरीतियों को समाप्त किया। वस्तुतः योगी गोरक्षनाथ की साधना में सिद्धान्त के अपेक्षा व्यवहारिक पक्ष अधिक है उन्होने अपने सिद्धान्त में ब्रह्मचर्यख वाकसंयम , शरीरिक शौच, मानसिक शुद्धता, ज्ञान–निष्टा को महत्व दिया और व्राह्य आडम्बर, अनादर, मद्य–मांसादि के पूर्ण बहिष्कार पर बल दिया। उन्होने हठयोग साधना को जनसामान्य तक पहुँचाया। योगी गोरखनाथ के अनुसार हठयोग साधक को अपने शरीर (पिण्ड) का ज्ञान होना चाहिए। कुण्डलिनी शक्ति इसी पिण्ड में सुप्तावस्था में मूलाधार में निहित है। इसको जागृत करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। गोरक्षमत का प्रथम सिद्धान्त यह है कि जो कि कुछ ब्राह्मम्ण्ड में है वह सभी पिण्ड में स्थित है। पिण्ड ब्रह्मण्ड का संक्षिप्त संस्करण है।

कुण्डलिनी साधना का पहला मार्ग इन्द्रिय–निग्रह है। दूसरा साधना और तीसरा–मनन साधना है पहला मार्ग सबसे प्रमुख है, इसके संयम के बिना कुण्डलिनी जाग्रत नही हो सकती है। ब्रह्मचर्य और प्राणायम के साथ साधक को नाड़ियों को शुद्ध बनाये रखने की विधि भी जाननी चाहिए। नाड़ी शुद्धि के लिए धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कलापभाति करना चाहिए। इसे नाड़ियों शुद्ध होकर सुषम्ना नाड़ी का प्रवाह होता है। इस क्रियाओं के फलस्वरूप ही अप्रबुद्धि कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से जाग्रत होकर सहस्रार चक्र में स्थित शिव के साथ समरसता प्राप्त करती है। यहां योगी अनहद्नाद सुनता है।

अप्रबुद्ध और प्रबुद्ध कुण्डलिनी के स्वरूप का महायोगी गोरखनाथ ने 'गोरक्षनाथशतक में विस्तार से वर्णन किया है। इनका कथन है कि नाभि के ऊपर और नाभि के नीचे सभी नाड़ियों का उत्पत्ति स्थान है। यहां कुण्डलिनी–शक्ति सुषुम्ना में स्थित ब्रह्मरन्ध को अपने मुख से ढकी हुई अवस्था में है। यह जाग्रत होकर मन और प्राण के साथ डोर में बंधी हई अवस्था में है। यह जागृत होकर मन और प्राण के साथ डोर में बंधी सुई के समान ऊपर उठती है। जिस तरह ताबी से ताला बन्द दरवाजा खोला जाता है, इसी तरह कुण्डलिनी शक्ति से योगी मोक्ष के द्वार का भेदन करता है। शक्तिचालन मुद्रा के अभ्यास से कुण्डलिनी का जागरण होता है। गोरखबानी में महायोगी गोरक्षनाथ कुण्डलिनी साधना के लिए प्राणायाम कर विशेष महत्व देते हुए कहते है कि मन बहुत चंचल है। साधक इस मन को इन्द्रिय के विषय–विकार से मोड़कर आत्मचिन्तन में प्रवृत्त करते है। इससे प्राणका स्थिर करने में साधक मृत्यु का ग्रास नही बनता है। प्राण की स्थिरता से मन स्थिर होता है इसकी चंचलता समाप्त होती है मन का चित्त में लय हो जाने से साधक को उन्मनी समाधि की अवस्था प्राप्त होती है और इसके फलस्वरूप मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है (गोरखबानी–265)।

प्राणवायु इड़ा और पिंगला नाड़ी से प्रवाहित होकर सुषुम्ना की मध्य में स्थित बह्मनाड़ी में प्रवेश कर शरीर स्थित चक्रो को खोलती हुई सहस्रार में प्रवेश कर अनाहत नाद में विलीन हो जाती है। यह प्राणवायु सोऽहं में अनुभूति होकर हसमंत्र का रूप धारण कर लेती है। प्राण वायु के स्थित होने पर बिन्दु (वीर्य) ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हो जाता है। इसके फलस्वरूप साधक का शरीर मृत्यु का ग्रास होने से बच जाता है। प्राण को शरीर में स्थिर करने पर मन स्थिर हो जाता है। इस तरह मन ही मारने वाला है और स्वयं अपने मरण का साधन भी है, वह अमनस्क होकर जीवात्मा को मुक्त करता है और स्वयं उन्मन हो जाता है अर्थात तर जाता है। मन के स्थिर होने पर त्रिभुवन तर जाता है, मन ही शिव (आदि) है, मन ही समस्त षटचक्र भेदन आदि साधनाओं को माध्यम है और वही अन्तिम कैवल्य अवस्था, परम मुक्ति प्रदान करने का अमोध साधन है। ब्राह्य विषय विकारों का अन्तःमन को नियंत्रित करने पर ही सम्भव है। मन के नियंत्रण से ही मन का संयम आवश्यक है (गोरखबानी–12)

कुण्डलिनी साधना में गुरू के महत्व का वर्णन विशेष रूप से गोरखबानी में है। जब तक लकड़ी काटकर, सूखने पर भी अपनी उपयोगिता बनाये रहती है तब तब उसमें घुन

नही लगता है पर वही लकड़ी जब सूख जाती है तो सड़ गल जाती है तो उसमें घुन लगकर नष्ट हो जाती है। इसी तरह लोहा यदि सुरक्षित स्थान पर रहता है तो उसकी उपयोगिता बनी रहती है, उसमें जंग नही लगता है, लेकिन वही लोहा जब धूप, शीत और वर्षा में पड़ा रहता है और उपयोगी नही रहता है तो उसमें जंग लग जाता है। इस तरह जो शिष्य गुरू के उपदेश की अपेक्षा कर देता है और अपने पिण्ड (शरीर) की योगाग्नि मे पक्वता और मन की स्थिरता की ओर ध्यान नही देता है, तो उसका मन ब्राह्य विषय विकारों में आसक्त हो जाता है और शरीर शीघ्र ही क्षीण होकर नष्ट हो जाता है। इसलिए गुरू में पूर्ण निष्ठा और विश्वास रखकर उनके उपदेशामृत से जीवन को सार्थक बनाना चाहिए। कुण्डलिनी साधक के लिए आवश्यक है। योगी गोरक्षनाथ में कहते है कि बिना गुरू कृपा और अभिमंत्रित दीक्षा के कुण्डलिनी जागरण सम्भव नही हे। गुरू साक्षात स्वानन्द विग्रह है, उसके सानिध्य में साधक का सम्पूर्ण शरीर चिन्दानन्दायित हो जाता है। चैतन्य स्वरूपायित हो जाता है।

श्री गुरूं परमानन्द बन्दे स्वानन्दविग्रहम्
यम्यः सन्निमध्यमात्रेणचिदानन्दायतेतनुः।।
(गोरक्षशतक)
प्रसादात्स्वगुरोः सम्यक् प्राप्यते परमंपदम।
(सिद्धसिद्धान्त पद्धति 5/65)

गुरू के अनुग्रह से ही कुण्डलिनी जागरण और चैतन्यस्वरूप का अनुभव होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. पंतजेली योगदर्शन
1. स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीः मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, (1994)

31

तांत्रिक, ओझा एवं योग

डॉ0 ममता भट्ट

पश्चिमी जगत के भौतिक वातावरण में तंत्रमंत्र ओझा कार्य एक अजूबा समझा जाता है अथवा पुरोगामी क्रियाएं प्रतीत होती हैं, जबकि पूर्वीय देशों में आज भी इनकी उपादेयता बनी हुई है। आधि–व्याधि और मानसिक समस्याएं उठने पर व्यक्ति प्रायः ओझाओं, तान्त्रिकों व मांत्रिकों का सहारा लेते हैं। योग परम्परा में यह प्रबल धारणा है कि उपासना और ध्यान का सतत् अभ्यास करने से अनेक प्रकार की परामनोशक्तियां स्वतः प्रकट होने लगती हैं। इसके अनेक उदाहरण मिले हैं। परमहंस योगानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द, तैलंग स्वामी, स्वामी मुक्तानन्द, शिरड़ी के साईं बाबा, नीमकरोरी बाबा आदि अनेक संत–सन्यासी हुए हैं। जिन्होंने अनेकों अवसर पर चमत्कारिक परामनोशक्तियों का प्रदर्शन किया है। चोरी गई वस्तु, खोए हुए लापता व्यक्ति, गड़ी हुई वस्तु, भूत–प्रेत प्रकोप आगामी या भूतकाल का संज्ञान आदि बाता पाना इनके लिए सामान्य बात होती है। भारत में प्रत्येक 10 गांव के बीच एक न एक सिद्ध ओझा अवश्य मिल जाता है। आवश्यकता है उनकी परामनोशक्तियों का सही आकलन करना और उनके व्यक्तित्व की विशिषताओं का अध्ययन करना। इसी उददेश्य से मेरा पी0एच0डी0 शोध प्रकरण पूर्ण किया गया था जिसके कुछ अंश मैं इस लेख में प्रस्तुत कर रही हूँ।

परामनोविज्ञान मनोविज्ञान क्षेत्र की एक शाखा है जो परामनोशक्ति, सुदूर संज्ञान, गयात्मक शक्ति, भूत–भविश्य कथन आदि क्षेत्रों पर गवेशणा करती है। टेलीपैथी, प्रीकाग्नीशन, पोस्टकाग्नीशन, साइको काइनेसिस, आल्टर्ड स्टेटस आफ कांषसनेस क्लेयरवायस, पूर्व जन्म का ज्ञान आदि इसके विशेष क्षेत्र हैं। ऐसा समझा जाता है कि कुछ थोड़े से लोगों में यह जन्मजात षक्ति होती है, कुछ लोगों में यह अनायास प्रकट हो जाती है। भारत में ऐसा विष्वास है कि योगाभ्यास अथवा तांत्रिक साधना से इसे प्राप्त किया जा सकता है।

पतंजलि योग दर्शन का तृतीय अध्याय विभूति पाद है जिसमें कि ध्यान द्वारा अनेक अतीन्द्रिय क्षमताएं स्वतः प्रकट हो जाने का वर्णन आता है। संयम की साधना से प्रज्ञा लोक ज्योतित हो उठता है। चिन्तन क्रिया का क्षय हो जाना, पूर्ण एकाग्रता पा लेना संयम प्रारम्भ है। योगसूत्र 2/16 के अनुसार ''परिणामत्रय संयमाद अतीत अनागत ज्ञानम्'' अर्थात पूर्ण ध्यान आ जाने पर तीनों परिणामों में संयम करने से भूत एवं भविष्य का ज्ञान हो जाता है। ऐसे ही अनेक प्रकार के संयम से अश्ठ सिद्धियां प्रकट हो जाती हैं। इन अद्भुत शक्तियों में से कुछ कभी–2 सिद्ध योगी प्रकट कर देते हैं अन्यथा इन्हें सूत्र 3/37 में समाधि दशा के आने में विघ्न स्वरुप माना गया है और योगी उनका उपयोग नही करते हैं। ओझाओं, तांत्रिकों व मंत्र जा की परामनो शक्ति केवल कुछ डामर मंत्रों की साधना करने एवं इतर देवताओं, यक्षों व मष्तात्माओं को सिद्ध कर लेने मात्र से आ जाती है। काली, हनुमान, भैरव, यक्षिणी से भी ऐसी क्षमताएं मिल जाती हैं।

अमेरिका में डॉ मैकडगल ने सर्वप्रथम डयूक विश्वविद्यालय में परामनोविज्ञान प्रयोगशाला प्रारम्भ की, जिसमें उनके शिष्य डॉ जे0बी0राइन ने बहुत काम किया। जे0बी0राइन के उत्तराधिकारी डॉ आर0 के0 राव ने उन प्रयोगों को विस्तार दिया और भारत आने पर आन्ध्र वि0वि0 विशाखापटनम में परामनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित की। जे0बी0राइन की पद्धति पर ही राइन ने जेनर कार्डस के आधार पर ओझाओं, तांत्रिकों परामनोशक्ति का आकलन कर उनमें से 40 व्यक्ति एक्सपेरीमेन्टल ग्रुप (प्रयोगात्मक प्रतिदर्श) लिए गये जिनमें की साई (पी0एस0आई0) क्षमता अधिक पाई गई। इनमें से 19 ऐसे ओझा थे जो जनजातीय वर्ग से थे जिन्हें वैगा कहा जाता है। 40 व्यक्तियों का कन्ट्रोल ग्रुप (सामान्य वर्ग) लिया गया। जिससे कि सांख्यकीय विशुद्ध आकलन किया जा सके। ये व्यक्ति भी उसी सामाजिक वर्ग से थे एवं आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक दशा लगभग समान रुप से रखी गयी। दोनों वर्गो के प्रतिदर्शकों अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों और व्यक्तित्व परीक्षणों से गुजरना पड़ा। अध्ययन की सहजता के लिए 40 परिकल्पनाएं (हाइपोथीसीज) निर्धारित की गई। जिनके आधार पर दोनों प्रतिदर्शो का सांख्यकीय तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। उदाहरणार्थ कुछ परिकल्पनाएं दी जा रही हैं –

1. नियंत्रित समूह (कन्ट्रोल रुम) की तुलना में प्रयोगात्मक ग्रुप में साई (पी0एस0आई0) क्षमता अधिक होगी।
2. सामान्य ओझाओं तांत्रिकी की तुलना में जनजातीय वैगा गुरु में PSI क्षमता अधिक होगी।
3. प्रयोगात्मक समूह की तुलना में नियंत्रित समूह से External Locus of Control अधिक होगा।
4. प्रयोगात्मक समूह में परार्थवाद (आल ट्रइज्म) कन्ट्रोल ग्रुप से अधिक मात्रा में होगा।
5. प्रयोगात्मक समूह में नियंत्रित ग्रुप की तुलना में आत्म वास्तवीकरण (Self Actualization) अधिक होगा।

6. नियंत्रित समूह में प्रयोगात्मक ग्रुप की तुलना में राजसिक व तामसिक गुण (त्रिगुण स्केल पर) अधिक मात्रा में होगा।
7. कैटेल के सिक्सटीन पी0एफ0 स्केल में प्रयोगात्मक ग्रुप में परसोनालिटी फैक्टर I, O,C, F आदि अधिक मात्रा में होंगे।

व्यक्तित्व परीक्षण के लिए कैटेल के सिक्सटीन पी0एफ0 स्केल (ई वर्जन) के एस0डी0 कपूर द्वारा किए गए भारतीयकरण का उपयोग किया गया। उसके साथ अन्य अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षण दिए गए उनमें से लेविन्सन का लोकस आफ कन्ट्रोल टेस्ट, जे0बी0राइन के 'साई' मापक जेनर कार्ड, एस एन राय व सतवन्त सिंह का आल ट्रइज्म परीक्षण, के0एल0 शर्मा का आत्म वास्तवीकरण (Self Actualization) परीक्षण, रीवा वैराग्यता निधरिक परीक्षण, रीवा तनाव मापक रेटिंग स्केल और परसनल इन्वेन्ट्री मुख्य थे। इनके साथ प्रयोगात्मक प्रतिदर्श (ओझा व तांत्रिक) में से वीसा प्रबल ई0एस0वी0 (एक्सट्रा सेन्सोरिल परसेप्शन) स्कोरर की केस हिस्ट्री भी तैयार की गई। ई0एस0वी0 स्कोर हेतु राइन के जेनर कार्ड की मदद से परामनोशक्ति की क्षमता का ज्ञान किया गया था।

सारे परीक्षणों को 40 प्रयोगात्मक वर्ग (ओझा व तांत्रिक) एवं 40 कन्ट्रोल ग्रुप (नियोजित वर्ग) पर किए गए और सारथकीय तुलनात्मक अध्ययन किया गया कि किन तत्वों में दोनों वर्गो के बीच महत्वपूर्ण अन्तर (सिग्नीफोकैन्ट डिफरेन्स) पाया गया है। इसे ज्ञात करने के लिए 'स्टूडेन्ट टी' विधि का प्रयोग किया गया। निर्धारित की गई परिकल्पनाओं के संदर्भ में सारी जॉच की गई। 85 प्रतिशत परिकल्पनाएं सही सिद्ध हुई उनमें से 55 प्रतिशत परिकल्पनाओं में दोनों वर्गो के बीच बड़ा अन्तर पाया गया।

यह निर्धारित किया जा सका कि सफल ओझा, तांत्रिक व मंत्रज्ञों में कौन–कौन से व्यक्तित्व के कारक अथवा तत्व अति प्रबलता से पाये जाते हैं। अन्य विदेशी एवं भारतीय अध्ययनों के संदर्भ में उनका विवेचन किया गया। भारतीय अध्ययन अति सीमित है केवल सुधीर कक्कड़ ने ओझा, सायने और सन्त आदि पर गवेषणा पूर्वक कार्य किया। डॉ मेडर्ड वास की पुस्तक 'साइकिया ट्रिस्ट डिस्ककर्स इण्डिया' और डॉ डी0सी0 प्रैट की पुस्तक ''हिन्दू कल्चर एण्ड परसोलाटी'' में कुछ सामग्री प्राप्त हो जाती है। पाल ब्रन्टन की पुस्तकों में परामनोशक्ति के वर्णन अवश्य मिलते हैं। परन्तु योगियों व सन्तों के व्यक्तित्व की स्पष्ट जानकारी नही मिल पाती। पं0 गोपीराज कविराज एवं एम0एन0 बनर्जी की अनेक पुस्तकों में योगियों की परामनोशक्तियों के विवरण हैं उनके व्यक्तित्व पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। परन्तु व्यक्तित्व का स्पष्ट निरुपण कही पर भी नही हो पाया है। कुलदानन्द ब्रह्मचारी की श्री सद्गुरु प्रसंग नामक तीन भागों में प्रकाशित पुस्तक में योगियों के जीवन क्रम व व्यक्तित्व सम्बन्धी बहुत सामग्री है। परन्तु वर्णनात्मक अधिक है। डेविड ए0 क्लेर की पुस्तक ''द साइकिल वर्ड आफ कैलीफोर्नीया'' (1972) में उस क्षेत्र के सैकडों मिस्टिक व आकल्टिस्ट का वर्णन है उनके व्यक्तित्व की भी झलक मिलती है। परन्तु इस विषद अध्ययन में भी व्यक्तित्व परीक्षण का प्रयास नही किया। यद्यपि रहस्यमय शक्तियों वाले ओझाओं और

उपचारकों के विचित्र व्यक्तित्व के अवश्य दर्शन होते हैं। भारत ऐसा देश है जिसमें अपार परामनामशक्ति सम्पन्न योगी, महात्मा व औघड़ होते रहे है और आज भी हैं परन्तु उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं का विधिवत अध्ययन नही किया गया है। मनोवैज्ञानिकों का कर्तव्य बनता है कि ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों विशेषकर योगियों पर वैज्ञानिक अध्ययन करें। जिनमें अपार परामनोशक्तियां हों। योगीजन यद्यपि ऐसी शक्तियों गुप्त रखते हैं फिर भी जनहिताय अनेक अवसरों पर इनका प्रकटीकरण हो जाता है। ओझाओं, मंत्रज्ञों की परामनोशक्तियां सीमित होती हैं और पूरे समय तक नही रहती हैं। जबकि सतत् ध्यान में रत योगी इतनी प्रबल एकाग्रता प्राप्त कर लेते हैं कि इच्छा मात्र से परामनोशक्तियां प्रकट कर देते हैं केवल वायु भक्षण पर जीवित रहना, वायु में क्षणों में दूर गमन, क्षण में रोगमुक्त करना, मृतक को जीवित कर देना, इच्छा मात्र से कोई वस्तु प्रकट कर देना उनके लिए सहज क्रियांए होती हैं। ऐसे व्यक्तित्व में क्या विशेष परिवर्तन हो जाते हैं यह वैज्ञानिक गवेषणा का दुरुह विषय है।

प्रस्तुत अध्ययन कुछ सीमित परामनोशक्ति सम्पन्न ओझाओं, तांत्रिकों व मंत्रज्ञों पर किया गया था। परन्तु इसके द्वारा भी विशिष्ट व्यक्तित्व स्वरुप का कुछ ज्ञान हो पाया है। जो अब तब उपलब्ध नही था। सामान्य जगद्व्यवहार से अपने को घण्टो तक दूर कर लेना, मंत्र जप या साधना में पूर्ण तल्लीनता, गुरु अथवा इष्टशक्ति पर अगाध विश्वास, बढ़ी हुई एकाग्रता, मन की सरलता, भूख प्यास को भूल जाना (दैहिक आवश्यकताओं व इन्द्रिय प्रभावों को मन में न उठने देना) घर परिवार के प्रति चिन्ताहीनता अपना कष्ट भूलकर दूसरों की सहायता हेतु तत्परता आदि गुण उनकी केस स्टैण्डर्ड के द्वारा प्राप्त हुए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से ज्ञात व्यक्तित्व स्वरुप के प्रमुख अंश निम्न विवरण में मिल जायेंगे।

प्रयोगात्मक समूह में परार्थभाव (आल्ट्रइज्म) अथवा दूसरों के प्रति गहरी संवेदना एवं उन्हें सहायता करने की इच्छा पाई गई। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध फ्रांसीसी दर्शनिक आगस्ट काम्पटे ने किया था। हार्वड वि0वि0 के रुसी प्रो0 पित्रिम सोरोकिन ने इस तत्व की महत्ता बताई और मानवीय विकास व प्रोन्नति हेतु आवष्यक गुण माना था। समन्वयवादी भारतीय दृष्टिकोण से भी इसे बहुत महत्व दिया गया। योगियों और सन्त महात्माओं में भी यह चारित्रिक गुण अधिकता से मिलता है। एब्राहम मैज्लो ने मनोभावों के क्रमिक विकास में आल्ट्रइज्म और सेल्फ एक्चुवलाइजेशन को उच्चतम स्तर पर स्थापित किया।

इसी प्रकार दूसरे परीक्षण प्रकट हुआ कि ओझाओं, तांत्रिकों व मंत्रज्ञों में आत्मवास्तवीकरण की प्रवृति अधिक उभरकर आई। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आलपोर्ट, कार्ल राजरस और हेडले कैन्ट्रिल ने भी वही सेल्फ एक्चुवलाइजेशन को उच्चतम मानव विकास की स्थिति माना है। जो कि कम लोगों में पाई जाती है। इस प्रकृति में वास्तविकता का कुशल ज्ञान दूसरों के साथ सहजता से हिल–मिल जाना, वही तत्परता व सहयोग भाव, समस्या केन्द्रित विचरणा, स्वायत्ता, रहस्यमयी अनुभवों की अधिकता आदि तत्व मिलते हैं।

तीसरे परीक्षण से ज्ञात हुआ कि ओझाओं, तांत्रिको आदि में जगत व्यवहार से वैराग्यता अथवा दूर हटे रहने की प्रवृति अधिक पाई गयी। योगियों सन्त महात्माओं में भी योग साधना हेतु वैराग्य भाव अति आवश्यक तत्व माना गया है। उसके बिना साधना की प्रगति संभव नही। आज के युग में योग में अभ्यास का प्रचलन अधिक है। परन्तु यम–नियम के बंधन और संसार क्रम में विरक्ति भाव की अति न्यूनता देखी गई। जिसके कारण योग साधना प्रगति न पाकर केवल 'फिटनेस प्रकल्प' बनकर रह गई है।

अन्य परीक्षण त्रिगुण मापक था। जिसमें सात्विक, राजसिक व तामसिक गुणों की मात्रा का मापन किया गया है। त्रिगुण व्यक्ति की जन्मजात प्रवृत्ति मानी गई है। जिसमें की अधिक परिवर्तन कर पाना सम्भव नही होता है। श्रीमद्भागवत गीता में भी त्रिगुण के आधार पर व्यक्तित्व का विश्लेषण किया गया है। प्रयोगात्मक ग्रुप में सात्विक व राजसिक तत्व अधिक पाये गये परन्तु सांख्यकीय विश्लेषण में स्टैण्डर्ड डेविएशन की मात्रा अधिक मिली जो स्पष्ट करता है कि ओझाओं तांत्रिकों में इन गुणों का विचलन अथवा विस्तार अधिक है। इसलिए स्पश्ट निर्णय ले पाना सम्भव नही।

संत्रास (बढ़ा मानसिक तनाव) परीक्षण 10 विभिन्न क्षेत्रों में किया गया था। प्रायोगिक वर्ग में परिवारगत तनाव, आर्थिक दृष्टि से तनाव और व्यावसायिक तनाव न्यूनतम मात्रा में पाये गये। संभवतः वैराग्य भाव की अधिकता के कारण ये समूह उक्त परेशानियों से बहुत कम प्रभावित होते हैं। कैटेल द्वारा निर्मित व्यक्तित्व कारकों का परीक्षण मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे अधिक मान्य है। इस स्केल का 'ई' वर्जन कम पढ़े–लिखे लोगों अथवा सुदूर देहात के अपढ़ क्षेत्रों में किया जाता है। कुछ जनजातीय वैगा ऐसे थे जो कि निरक्षर थे। उन्हें प्रश्न पढ़कर सुना दिये गये और उनके उत्तर प्राप्त कर लिए गए। इसके अतिरिक्त गणना द्वारा कुछ सेकेण्ड आर्डर फैक्टर भी प्राप्त किए जा सकते हैं। इस प्रयोग में केवल 2 सेकेण्ड आर्डर फैक्टर प्राप्त किए गए। ये थे मन्निश्चिन्ता की मात्रा और सांवेगिक संतुलन की मात्रा। प्रयोगात्मक वर्ग में मन्निश्चिन्ता की मात्रा कम और सांवेगिक संतुलन अधिक विकसित पाया गया।

सोलह व्यक्तित्व कारको में से फैक्टर आई, फैक्टर ओ, फैक्टर सी, फैक्टर एफ व फैक्टर क्यू3 सबसे अधिक मात्रा में मिले। जो स्पष्ट करता है कि कठोर स्वभाव (टफ माइण्डेडनेस) प्रबल आत्म विश्वास (अनट्रवुल्ड एडीकीप्सी) आत्मनिर्भरता व दृढ़ता (स्टेविलिटी) अति गम्भीर प्रकृति (डीसरजेन्सी) व आस्था एवं उच्च स्तरीय मनो समायोजन (इन्ट्रग्रोटिव कैपासिटी) भी पाया गया।

उच्चतम स्तर के बाद जो तत्व कुछ अधिक मात्रा में मिले वे थे – ओझाकर्म के समय तनाव भरी दशा, पुरातनवादी दृष्टिकोण (फैक्टर क्यू1), विश्वास पूर्णता (फैक्टर एल), भाव प्रवणता (फैक्टर एन) आदि। जो व्यक्तित्व कारक दोनों वर्गों में लगभग अप्रभावी रहे वे थे फैक्टर ''ए'' ''बी'' ''जी'' ''एच'' ''एम'' एवं फैक्टर ई।

इस प्रकार ज्ञात हुआ कि ओझा और तांत्रिकों का व्यक्तित्व सामान्य व्यक्ति के स्वरुप से कुछ हटकर होता है। उनमें और योगियों के व्यक्तित्व में अधिक साम्य मिल पाना सहज सम्भव है। ओझाओं को भी गहरी एकाग्रता बनानी पड़ती है। उनमें आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, विरागभाव (संसार से अलग हटकर चलना) परार्थभाव, गहरी आस्था, दृढ़ता आदि मिलती है। जो कि प्राणायाम, ध्यान व समाधि में रत योगी बिना प्रयास सहज रुप में प्राप्त कर लेते हैं।

आवश्यकता है कि सिद्ध योगियों के विशिष्ट व्यक्तित्व व उनकी दैहिक आन्तरिम क्रियाओं की वैज्ञानिक ढ़ंग से जॉच की जाय जिससे वे तत्व प्रकट हो पायेगें। जो योग साधना में सफलता दे पाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. जे0बी0राइन– एक्सट्रा सेन्सरी परसेप्सन (1973)
2. बी0बी0उल्मैन–हैन्ड बुक आफ पैरासाइकोजी (1985)
3. डी0वारटेल–प्रोसोराल विहैवियर (1976)
4. जे0एल0रेन्डाल– पैरासाइकोलोजी एण्ड नेचर (1976) हार्पर
5. सुधीर कक्कड़–ओझे सयाने सन्त साधु और वैद्य (198) एम0डी0थीसिस आगरा।
6. मर्फी एण्ड मर्फी–एशिया साइकोलोजी (1962)
7. मेडर्ड वास–ए0 साइक्याट्रिस्ट डिस्कवरस इण्डिया (1968)

32

भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में योग का विकास एवं विस्तार

डॉ. हरित कुमार मीना

योग तत्वतरू बहुत सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित एक आध्यात्मिक विषय है जो मन एवं शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करने पर ध्यान देता है। यह स्वस्थ जीवन – यापन की कला एवं विज्ञान है। योग शब्द संस्कृत की युज धातु से बना है जिसका अर्थ जुड़ना या एकजुट होना या शामिल होना है। योग से जुड़े ग्रंथों के अनुसार योग करने से व्यक्ति की चेतना ब्रह्मांड की चेतना से जुड़ जाती है जो मन एवं शरीर, मानव एवं प्रकृति के बीच परिपूर्ण सामंजस्य का द्योतक है।

श्यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति।।

(ऋक्संहिता, मंडल–1, सूक्त–18, मंत्र–7)

अर्थात– योग के बिना विद्वान का भी कोई यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता। वह योग क्या है? योग चित्तवषत्तियों का निरोध है, वह कर्तव्य कर्ममात्र में व्याप्त है।

स घा नो योग आभुवत् स राये स पुरं ध्याम। गमद् वाजेभिरा स नरू।।

अर्थात वही परमात्मा हमारी समाधि के निमित्त अभिमुख हो, उसकी दया से समाधि, विवेक, ख्याति तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा का हमें लाभ हो, अपितु वही परमात्मा अणिमा आदि सिद्धियों के सहित हमारी ओर आगमन करे।

उपनिषद में इसके पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। कठोपनिषद में इसके लक्षण को बताया गया है– श्तां योगमित्तिमन्यन्ते स्थिरोमिन्द्रिय धारणम्श। 'योग' शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'योग' शब्द का अर्थ है समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध। वैसे 'योग' शब्द 'युजिर योग' तथा 'युज संयमने' धातु से भी निश्पन्न होता है, किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः

योगफल, जोड़ तथा नियमन होगा। आगे योग में हम देखेंगे कि आत्मा और परमात्मा के विषय में भी योग कहा गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है श्योगरू कर्मसु कौशलम्य (योग से कर्मो में कुषलता आती हैं)। स्पष्ट है कि यह वाक्य योग की परिभाषा नहीं है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि जीवात्मा और परमात्मा के मिल जाने को योग कहते हैं। इस बात को स्वीकार करने में यह बड़ी आपत्ति खड़ी होती है कि बौद्धमतावलंबी भी, जो परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते, योग शब्द का व्यवहार करते और योग का समर्थन करते हैं। यही बात सांख्यवादियों के लिए भी कही जा सकती है जो ईश्वर की सत्ता को असिद्ध मानते हैं। पंतजलि ने योगदर्शन में, जो परिभाषा दी है श्योगश्चित्तवृत्तिनिरोधःश, चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैंरू चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था का नाम योग है या इस अवस्था को लाने के उपाय को योग कहते हैं।

योग की प्रमुख परिभाशाएं एवं विषेशताएं

1) पतंजलि योग दर्शन के अनुसार– योगश्चित्तवश्त्त निरोधः (1є2) अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।
2) सांख्य दर्शन के अनुसार– पुरुषप्रकृत्योर्वियोगेपि योगइत्यमिधीयते अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरुष का स्व स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है।
3) विष्णुपुराण के अनुसार– योगः संयोग इत्युक्तः जीवात्म परमात्मने अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा का पूर्णतया मिलन ही योग है।
4) भगवद्गीता के अनुसार– सिद्धासिद्धयो समोभूत्वा समत्वं योग उच्चते (2є48) अर्थात् दुःख–सुख, लाभ–अलाभ, शत्रु–मित्र, शीत और उशण आदि द्वन्दों में सर्वत्र समभाव रखना योग है।
5) भगवद्गीता के अनुसार– तस्माद्दयोगाययुज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् अर्थात् कर्तव्य कर्म बन्धक न हो, इसलिए निष्काम भावना से अनुप्रेरित होकर कर्तव्य करने का कौशल योग है।
6) आचार्य हरिभद्र के अनुसार– मोक्खेण जोयणाओ सव्वो वि धम्म ववहारो जोगो अर्थात् मोक्ष से जोड़ने वाले सभी व्यवहार योग है।
7) बौद्ध धर्म के अनुसार– कुशल चितैकग्गता योगः अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता योग है।

योग का उपदेश सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ने सनकादिकों को, पश्चात विवस्वान (सूर्य) को दिया। बाद में यह दो शाखाओं में विभक्त हो गया। एक ब्रह्मयोग और दूसरा कर्मयोग। ब्रह्मयोग की परम्परा सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि,वोढु और पच्चंशिख नारद–शुकादिकों ने शुरू की थी। यह ब्रह्मयोग लोगों के बीच में ज्ञान, अध्यात्म और सांख्य

योग नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरी कर्मयोग की परम्परा विवस्वान की है। विवस्वान ने मनु को, मनु ने इक्ष्वाकु को, इक्ष्वाकु ने राजर्षियों एवं प्रजाओं को योग का उपदेश दिया। उक्त सभी बातों का वेद और पुराणों में उल्लेख मिलता है। वेद को संसार की प्रथम पुस्तक माना जाता है, जिसका उत्पत्ति काल लगभग 10000 वर्ष पूर्व का माना जाता है। पुरातत्ववेत्ताओं अनुसार योग की उत्पत्ति 5000 ईपू में हुई। गुरु–शिष्य परम्परा के द्वारा योग का ज्ञान परम्परागत तौर पर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलता रहा।

भारतीय योग जानकारों के अनुसार योग की उत्पत्ति भारत में लगभग 5000 वर्ष से भी अधिक समय पहले हुई थी। योग की सबसे आश्चर्यजनक खोज 1920 के शुरुआत में हुई। 1920 में पुरातत्व वैज्ञानिकों ने सिन्धु सरस्वती सभ्यताश् को खोजा था जिसमें प्राचीन हिंदू धर्म और योग की परंपरा होने के सबूत मिलते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता को 3300–1700 बी.सी.ई. पुराना माना जाता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार ब्रह्मांड की हर चीज उसी परिमाण नभ की अभिव्यक्ति मात्र है। जो भी अस्तित्व की इस एकता को महसूस कर लेता है उसे योग में स्थित कहा जाता है और उसे योगी के रूप में पुकारा जाता है जिसने मुक्त अवस्था प्राप्त कर ली है जिसे मुक्ति, निर्वाण या मोक्ष कहा जाता है। इस प्रकार, योग का लक्ष्य आत्म–अनुभूति, सभी प्रकार के कष्टों से निजात पाना है जिससे मोक्ष की अवस्था या कैवल्य की अवस्था प्राप्त होती है। जीवन के हर क्षेत्र में आजादी के साथ जीवन–यापन करना, स्वास्थ्य एवं सामंजस्य योग करने के प्रमुख उद्देश्य होंगे। योग का अभिप्राय एक आंतरिक विज्ञान से भी है जिसमें कई तरह की विधियां शामिल होती हैं जिनके माध्यम से मानव इस एकता को साकार कर सकता है और अपनी नियति को अपने वश में कर सकता है।

चूंकि योग को बड़े पैमाने पर सिंधु घाटी सभ्यता, जिसका इतिहास 2700 ईसा पूर्व से है, के अमर सांस्कृतिक परिणाम के रूप में बड़े पैमाने पर माना जाता है, इसलिए इसने साबित किया है कि यह मानवता के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तरह के उत्थान को संभव बनाता है। बुनियादी मानवीय मूल्य योग साधना की पहचान हैं। ऐसा माना जाता है कि जब से सभ्यता शुरू हुई है तभी से योग किया जा रहा है। योग के विज्ञान की उत्पत्ति हजारों साल पहले हुई थी, पहले धर्मों या आस्था के जन्म लेने से काफी पहले हुई थी। योग विद्या में शिव को पहले योगी या आदि योगी तथा पहले गुरू या आदि गुरू के रूप में माना जाता है। कई हजार वर्ष पहले, हिमालय में कांति सरोवर झील के तटों पर आदि योगी ने अपने प्रबुद्ध ज्ञान को अपने प्रसिद्ध सप्तऋषि को प्रदान किया था। सत्पत्रऋषियों ने योग के इस ताकतवर विज्ञान को एशिया, मध्य पूर्व, उत्तरी अफ्रीका एवं दक्षिण अमरीका सहित विश्व के भिन्न–भिन्न भागों में पहुंचाया। रोचक बात यह है कि आधुनिक विद्वानों ने पूरी दुनिया में प्राचीन संस्कृतियों के बीच पाए गए घनिष्ठ समानांतर को नोट किया है। तथापि, भारत में ही योग ने अपनी सबसे पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त की। अगस्त नामक सप्तऋषि, जिन्होंने पूरे भारतीय उप महाद्वीप का दौरा किया, ने यौगिक तरीके से जीवन जीने के इर्द–गिर्द इस संस्कृति को गढ़ा।

योगाभ्यास का प्रामाणिक चित्रण लगभग 3000 ई.पू. सिन्धु घाटी सभ्यता के समय की मोहरों और मूर्तियों में मिलता है। योग करते हुए सिंधु घाटी सभ्यता के अनेक जीवाश्म अवशेष एवं मुहरें भारत में योग की मौजूदगी का संकेत देती हैं। देवी मां की मूर्तियों की मुहरें, लैंगिक प्रतीक तंत्र योग का सुझाव देते हैं।

योग का प्रामाणिक ग्रंथ ष्योगसूत्रष् 200 ई.पू. योग पर लिखा गया पहला सुव्यवस्थित ग्रंथ है। हिंदू, जैन और बौद्ध धर्म में योग का अलग–अलग तरीके से वर्गीकरण किया गया है। इन सबका मूल वेद और उपनिशद ही रहा है।

वैदिक काल में यज्ञ और योग का बहुत महत्व था। इसके लिए उन्होंने चार आश्रमों की व्यवस्था निर्मित की थी। ब्रह्मचर्य आश्रम में वेदों की शिक्षा के साथ ही शस्त्र और योग की शिक्षा भी दी जाती थी। ऋग्वेद को 1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. के बीच लिखा गया माना जाता है। इससे पूर्व वेदों को कंठस्थ कराकर हजारों वर्षों तक स्मृति के आधार पर संरक्षित रखा गया।

भारतीय दर्शन के मान्यता के अनुसार वेदों को अपौरुषेय माना गया है अर्थात वेद परमात्मा की वाणी हैं तथा इन्हें करीब दो अरब वर्ष पुराना माना गया है। इनकी प्राचीनता के बारे में अन्य मत भी हैं। ओशो रजनीश ऋग्वेद को करीब 90 हजार वर्ष पुराना मानते हैं। 563 से 200 ई.पू. योग के तीन अंग तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान का प्रचलन था। इसे क्रिया योग कहा जाता है।

जैन और बौद्ध जागरण और उत्थान काल के दौर में यम और नियम के अंगों पर जोर दिया जाने लगा। यम और नियम अर्थात अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, शौच, संतोश, तप और स्वाध्याय का प्रचलन ही अधिक रहा। यहाँ तक योग को सुव्यवस्थित रूप नहीं दिया गया था। पहली दफा 200 ई.पू. पतंजलि ने वेद में बिखरी योग विद्या का सही–सही रूप में वर्गीकरण किया। पतंजलि के बाद योग का प्रचलन बढ़ा और यौगिक संस्थानों, पीठों तथा आश्रमों का निर्माण होने लगा, जिसमें सिर्फ राजयोग की षिक्षा–दीक्षा दी जाती थी। भगवान शंकर के बाद वैदिक ऋषि–मुनियों से ही योग का प्रारम्भ माना जाता है। बाद में कृष्ण, महावीर और बुद्ध ने इसे अपनी तरह से विस्तार दिया। इसके पष्चात पातंजलि ने इसे सुव्यवस्थित रूप दिया। इस रूप को ही आगे चलकर सिद्धपंथ, षैवपंथ, नाथपंथ वैष्णव और शाक्त पंथियों ने अपने–अपने तरीके से विस्तार दिया।

लोक परंपराओं, सिंधु घाटी सभ्यता, वैदिक एवं उपनिशद की विरासत, बौद्ध एवं जैन परंपराओं, दर्शनों, महाभारत एवं रामायण नामक महाकाव्यों, शैवों, वैष्णवों की आस्तिक परंपराओं एवं तांत्रिक परंपराओं में योग की मौजूदगी है। इसके अलावा, एक आदि या षुद्ध योग था जो दक्षिण एशिया की रहस्यवादी परंपराओं में अभिव्यक्त हुआ है। यह समय ऐसा था जब योग गुरू के सीधे मार्गदर्शन में किया जाता था तथा इसके आध्यात्मिक मूल्य को विशेष महत्व दिया जाता था। यह उपासना का अंग था तथा योग साधना उनके संस्कारों में रचा–बसा था। वैदिक काल के दौरान सूर्य को सबसे अधिक महत्व दिया गया। हो

सकता है कि इस प्रभाव की वजह से आगे चलकर सूर्य नमस्कारश् की प्रथा का आविष्कार किया गया हो। प्राणायाम दैनिक संस्कार का हिस्सा था तथा यह समर्पण के लिए किया जाता था। हालांकि पूर्व वैदिक काल में योग किया जाता था, महान संत महर्शि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों के माध्यम से उस समय विद्यमान योग की प्रथाओं, इसके आशय एवं इससे संबंधित ज्ञान को व्यवस्थित एवं कूटबद्ध किया। पतंजलि के बाद, अनेक ऋशियों एवं योगाचार्यों ने अच्छी तरह प्रलेखित अपनी प्रथाओं एवं साहित्य के माध्यम से योग के परिरक्षण एवं विकास में काफी योगदान दिया।

पूर्व वैदिक काल (2700 ईसा पूर्व) में एवं इसके बाद पतंजलि काल तक योग की मौजूदगी के ऐतिहासिक साक्ष्य देखे गए। मुख्य स्रोत, जिनसे हम इस अवधि के दौरान योग की प्रथाओं तथा संबंधित साहित्य के बारे में सूचना प्राप्त करते हैं, वेदों (4), उपनिशदों (18), स्मृतियों, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, पाणिनी, महाकाव्यों (2) के उपदेशों, पुराणों (18) आदि में उपलब्ध हैं।

अंतिम रूप से 500 ईसा पूर्व – 800 ईस्वी सन के बीच की अवधि को श्रेश्ठ अवधि के रूप में माना जाता है जिसे योग के इतिहास एवं विकास में सबसे उर्वर एवं महत्वपूर्ण अवधि के रूप में भी माना जाता है। इस अवधि के दौरान, योग सूत्रों एवं भागवद्गीता आदि पर व्यास के टीकाएं अस्तित्व में आईं। इस अवधि को मुख्य रूप से भारत के दो महान धार्मिक उपदेशकों महावीर एवं बुद्ध को समर्पित किया जा सकता है। महावीर द्वारा पांच महान व्रतों – पंच महाव्रतों एवं बुद्ध द्वारा अश्ठ मग्गा या आठ पथ की संकल्पना को योग साधना की शुरूआती प्रकृति के रूप में माना जा सकता है। हमें भागवद्गीता में इसका अधिक स्पश्ट स्पष्टीकरण प्राप्त होता है जिसमें ज्ञान योग, भक्ति योग और कर्म योग की संकल्पना को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। तीन प्रकार के ये योग आज भी मानव की बुद्धिमत्ता के सर्वोच्च उदाहरण हैं तथा आज भी गीता में प्रदर्शित विधियों का अनुसरण करके लागों को शांति मिलती है। पतंजलि के योग सूत्र में न केवल योग के विभिन्न घटक हैं, अपितु मुख्य रूप से इसकी पहचान योग के आठ मार्गों से होती है। व्यास द्वारा योग सूत्र पर बहुत महत्वपूर्ण टीका भी लिखी गई। इसी अवधि के दौरान मन को महत्व दिया गया तथा योग साधना के माध्यम से स्पष्ट से बताया गया कि समभाव का अनुभव करने के लिए मन एवं षरीर दोनों को नियंत्रित किया जा सकता है। 800–1700 ईसवी के बीच की अवधि को उत्कृष्ट अवधि के बाद की अवधि के रूप में माना जाता है जिसमें महन आचार्यत्रयों आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और माधवाचार्य – के उपदेश इस अवधि के दौरान प्रमुख थे। इस अवधि के दौरान सुदर्शन, तुलसी दास, पुरंदर दास, मीराबाई के उपदेषों ने महान योगदान दिया। हठयोग परंपरा के नाथ योगी जैसे कि मत्स्येंद्र नाथ, गोरख नाथ, गौरांगी नाथ, स्वात्माराम सूरी, घेरांड, श्रीनिवास भट्ट ऐसी कुछ महान हस्तियां हैं जिन्होंने इस अवधि के दौरान हठ योग की परंपरा को लोकप्रिय बनाया।

1700–1900 ईसवी के बीच की अवधि को आधुनिक काल के रूप में माना जाता है जिसमें महान योगाचार्यों– रमन महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, परमहंस योगानंद, विवेकानंद आदि ने राज योग के विकास में योगदान दिया है। यह ऐसी अवधि है जिसमें वेदांत, भक्ति योग, नाथ योग या हठ योग फला–फूला। शादंगा–गोरक्ष शतकम का योग, चतुरंगा–हठयोग प्रदीपिका का योग, सप्तंगा–घेरांडा संहिता का योग–हठ योग के मुख्य जड़सूत्र थे। सवामी विवेकानंद, श्री टी कृष्णमचार्य, स्वामी कुवालयनंदा, श्री योगेंद्र, स्वामी राम, श्री अरविंदो, महर्षि महेष योगी, आचार्य रजनीश, पट्टाभिजोइस, बी के एस आयंगर, स्वामी सत्यानंद सरस्वती आदि जैसी महान हस्तियों के उपदेशों से आज योग पूरी दुनिया में फैल गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. विद्यालंकार, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृ. 303–8.
2. पाण्डेय, गोविन्दचन्द, बौद्ध–धर्म के इतिहास का विकास, लखनऊ, 1978.
3. पाण्डेय, राजबली, भारत का इतिहास दिल्ली
4. वाजपेयी, कृष्णदत्त तथा अन्य :ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, (जयपुर 1972)
5. शास्त्री, अजयमित्र, एन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, 1965
6. दुबे, सीताराम, सम्पादक बौद्ध युगीन भारत, प्रतिभा–प्रकाषन, दिल्ली, 1996,
7. पद्मभूषण, ईश्वरी प्रसाद एवं शैलेन्द्र वर्मा, भारतीय इतिहास मीनू पब्लिकेशन, इलाहाबाद (1990)।
8. श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र तथा श्रीवास्तव, एम., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद 1991.

33

ध्यान साधना और मानव जीवन

डॉ. मनीषा शर्मा

ध्यान हिन्दु धर्म,भारत की सांस्कृतिक चेतना, प्राचीन परम्परा एवं शैली तथा विद्या के सन्दर्भ में महर्षि पंतंजलि द्वारा सचित योग सूत्र में वर्णित अष्टाग योग का एक अंग है। ये आठ अंग यम नियम, आसन प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि है। योग में ध्यान का अत्याधिक महत्व है। ध्यान के द्वारा ऊर्जा के केन्द्रित होने के फलस्वरुप मन और शरीर में शक्ति का संचय बढता है। जिससे कि लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता मिलती है तथा सुखद मानव जीवन व्यतीत करने में मदद मिलती है। योग के विद्वानों ने ध्यान को योग की आत्मा माना है। जपान भाषा का शब्द झेन और चीन का च्यान यह दोनों शब्द घ्यान के अपभ्रश है। अग्रेजी में इसे मेडीटेशन कहा जाता है लेकिन अवेयरनेश इसके सबसे ज्यादा करीव है। हिन्दी का बोध शब्द इसके ओर भी नजदीक है। ध्यान शब्द का मूल अर्थ है जाकरुकता, होस,साक्षी भाव एवं दृष्टा भाव। यह एक ऐसा तत्व है जिसके साधने पर सभी अन्य स्वतः ही सधने लगते है। योग सूत्र में कहा गया कि तंन्त्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। अर्थत जहॉ चित्त को एक जगह लाना या ठहराना है लेकिन ध्यान आ अर्थात है जहॉ चित्त ळइरा हुआ है उसमें वृत्ति का एक तार चलना ध्यान है। उसमें जागृत रहना ध्यान है। ध्यान चित्त की विक्षुब्ध तरंगों के ठहरने या पूर्णतयः शान्त हो जाने का नाम है। इस अवस्था में मन हर प्रकार के विचारों से रहित हो जाता है। ध्यान का अर्थ मन को रिक्त या शून्य बना लेना है। यह मन एक बार शून्य हो गया तो हमारे अंन्दर वैश्विक ऊर्जा के माघ्यम से चारों ओर व्याप्त सूचनाओं को ग्रहण करने की क्षमता बढ जाती है। बुद्ध कहते है सॉय के साथ सजग होकर रहो, आपके भीतर जाकरुकता का केन्द्र बन जाएगा। तब अपका शरीर ही ब्रह्माण्ड बन जायेगा। ध्यान की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने जीवन को नई दिशा दे सकता है। यह जीवन साधना का पथ है। जिस पर चलकर व्यक्ति अपने मन को सत्रास, भय, घुटन व तनाव से मुक्ति दिला सकता है। ओशों कहते है ध्यान क्या है? ध्यान है पर्दा हटाने की

कला। यह पर्दा बाहर नही है। यह पर्दा तुम्हारे भीतर पडा है।, तुम्हारे अन्तःस्थल पर पडा है। ध्यान है पर्दा हटाना। पर्दा बुना है विचारों से। विचारों के ताने बानों से पर्दा बुना है। अच्छे विचार बुरे विचार इनके ताने बाने से पर्दा बुना है। जैसे तुम विचारें के पार झाकने लगों या विखरों को ठहराने में सफल हो जाओं या विचारों को हटाने में सफल हो जाओं वैसे ही ध्यान हठ जायेगा। निर्विचार दशा का नाम ध्यान है। ध्यान का अर्थ है ऐसी कोई संन्धि भीतर जब तुम तो हो, जगत तो है और दोनो के बीच विचार का पर्दा नही है। भीतर से जाग जाना ध्यान है। सदा निर्विचार की दशा में रहना ही ध्यान है।

हमारे मन में एक साथ असख्य कल्पनाएॅ विचार चलते है जो मस्तिष्क में सदैव विचारों का जम घट लगा रहता है। एक होलाहल सा बना रहता है। यह सोच यह विचार हमें निरन्तर अंन्दर से कमजोर करते चले जाते है। ध्यान इन्ही अनावश्यक कल्पनाओं और विचारों को मन से हटाकर शुद्ध और निर्मल मौन में चले जाना है जहॉ केवल शून्य है जहॉ केवल शान्ति है। जैसे जैसे हम ध्यान में डूबते जाते है। वैसे वैसे हमारा मन साक्षी भाव में स्थित होने लगता है और उस पर किसी भी भाव, क्ल्पना और विचारों का प्रभाव नही पडता। ध्यन रेस्ट है। विश्राम है। यह विचार रहित होने की प्रक्रिया है। यह शान्त होने की प्रक्रिया है। ध्यान एक बीज की तरह है। बीज को जितने प्यार से विकसित करते है। उतना ही यह पलवित होता है। इसके लिए नियमित अभ्यास जरुरी है। इसे यदि दैनिक दिनचार्य में शमिल कर लिया जाये तो यह जीवन का महत्वपूर्ण उन्नतिदायक अंश बन जायेगा। ध्यान हमारे मस्तिष्क की तंरगों को अल्फा स्तर पर ले जाता है। जिससे मस्तिष्क को स्वस्थ्य पोषण प्राप्त होता है। आंतरिक स्तर पर मस्तिष्क नवीन एवं उन्नत बनता है। ध्यान से मानसिक अस्थिरता, व्याग्रता रचनात्मकता तथा भावनात्मकता में वृद्धि होती है एवं सहज बोध ा का विकास होता है। इससे एकग्रता बढती है तथा मन मस्तिष्क का कायाकल्प होता है।

ध्यान करने से शरीर सकी आंतरिक क्रियिाओं में विशेष परिवर्तन होते है। जिससे शरीर प्रत्येक कोशिका ऊर्जा संचार से भर जाती है। कोशिकाओं के स्वस्थ्य हो जाने से शरीर में शान्ति, प्रसन्नता, नई उमंग उत्साह का स्तर बढ जाता है। भाव दशा एवं व्यवहार को अच्छा बनाने बाले सेरोटोनिन हार्मोन का अधिक उत्पादन हमारे शरीर में होने लगता है। ध्यान करने से ऊर्जा के आन्तरिक स्तर में वृद्धि के फलस्वरुप बेहतर स्वास्थ्य तथा केद्रिन्त व स्पष्ट मन बनता है। इस प्रकार ध्यान हमें अनगित लाभ प्रदान करता है। अतः मानव जीवन में योग की आत्मा ध्यान को अपनाकर समस्त मानव जीवन के क्रियाकलापों को उन्नत बनाया जा सकता है। ध्यान से व्यक्ति अपनी ऊर्जा के स्तर को बढाकर स्पष्ट केद्रिन्त मन तथा स्पष्ट विचार रख सकता है। ऊर्जा के स्तर में वृद्धि होने से व्यक्ति के मानसिक विकास के साथ साथ आत्मविश्वास व आन्तरिक शक्ति में वृद्धि होती है। जीवन में बेहतर गतिशीलता आती है। ध्यान के माध्यम से संयमित जीवनचर्या के साथ काम क्रोध, आलस्य, नकारात्मता, हीनता इत्यादि पर विजय पायी जा सकती है। ध्यान से याददास्त तथा ज्ञान के स्तर में काफी सुधार होता है। वाक संयम, वाक पटुता, रचनात्मकता में वृद्धि होती है। ध्यान से

भावनात्मकता, स्थिरता, कुशाग्रता में वृद्धि होती है। ध्यान सें मानव जीवन में गतिशीलता, निरन्तरता, एकाग्रता, विन्रमता, एकता, उच्चकोटि के सुविचार, सहयोगात्मक भाव आने लगते है। ध्यान से विचारधारा, चिन्तन मनन के तरीको में परिवर्तन आता है। ध्यान से साधारण मनुष्य स्वयं को दिव्य व्यक्ति में परिवर्तित कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः—

1. परमहंस हरिहरान्द, रुपान्तरण,प्रज्ञान मिशन, जगतपुर, कटक उडीसा, 2008
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीः स्वर योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुगेर बिहार,2003,
3. परमहंस हरिहरान्द, क्रिया योग, प्रज्ञान मिशन, जगतपुर, कटक उडीसा, 2014
4. स्वामी शिवानन्द सरस्वती : योगाभ्यास का मूलाधार दिव्य जीवन संघ ट्रस्ट ऋशिकेष उत्तरांचल, (2001),